URBANISATION AND URBAN LIFE AS DEPICTED IN THE EARLY BUDDHIST ART

[In Hindi]

THESIS

Submitted for the D. Phil Degree

of

University of Allahabad

By

Arvind Kumar Rai

Under the Supervision of

Dr. Anamika Roy

Department of Ancient History
Culture and Archaeology
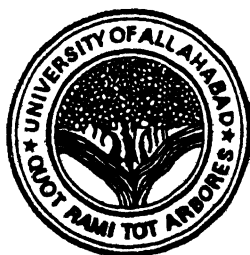
UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD
2002
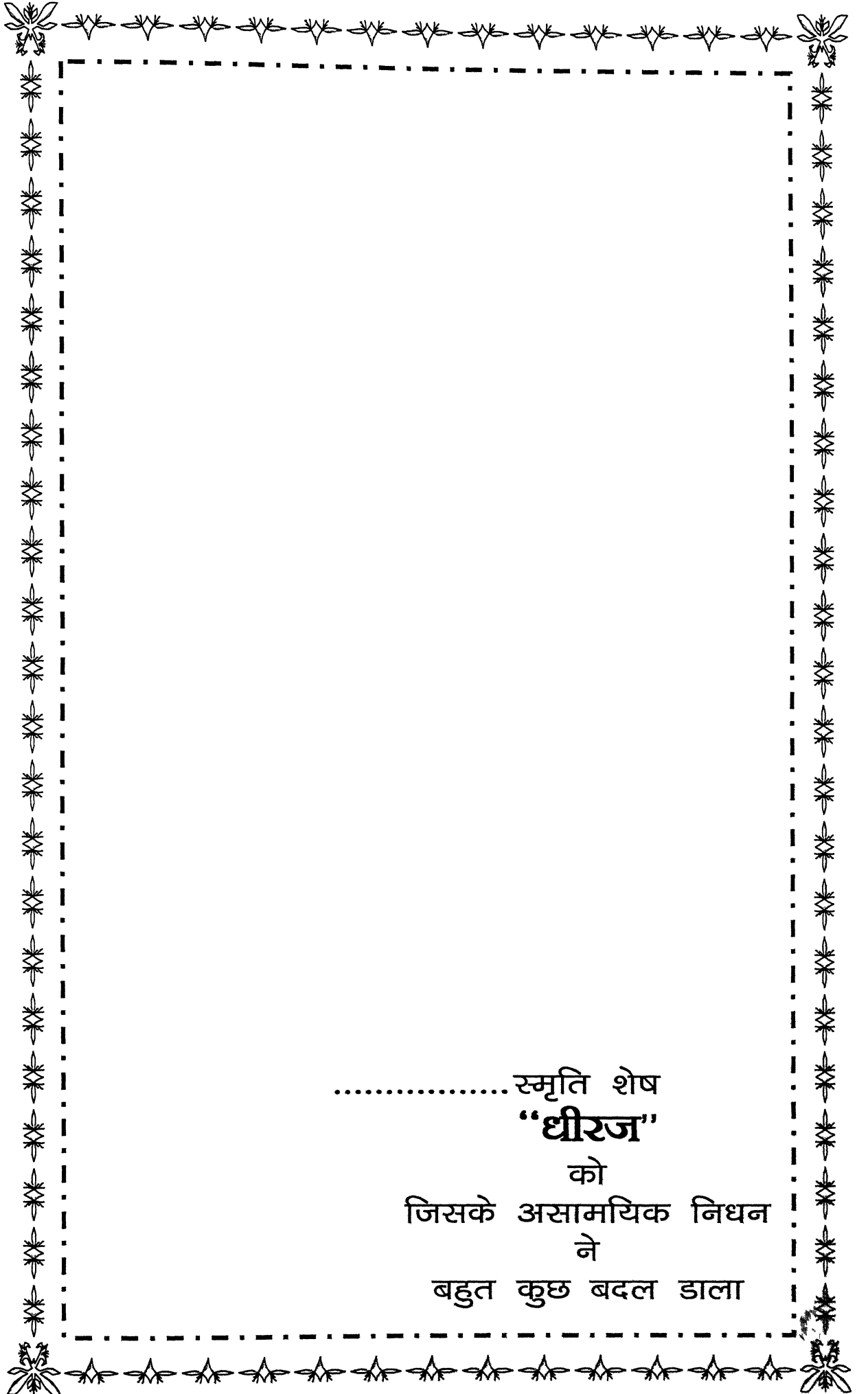
.................स्मृति शेष

"धीरज"

को

जिसके असामयिक निधन

ने

बहुत कुछ बदल डाला

प्राक्कथन

भारतीय धर्म परिधि की अतिशय विशालता ने जिस प्राचीन भारतीय अध्यात्मिक प्रवृत्ति तद्प्रेरित कलात्मक अभिरूचि को प्रोत्साहित किया था, उसकी अभिव्यक्ति देश के विभिन्न अचलो में विखरे कलात्मक वास्तु अवशेषों तथा शिलाकित दृश्यो मे आज भी हमे सर्वत्र देखने को मिलता है, बौद्ध कला के जीवन्त कलात्मक अवशेष आज भी इस तथ्य के सक्षम साक्षी है। यद्यपि बौद्ध कला के उद्गम एव प्रेरणा के पीछे मुख्यतया बौद्ध धर्म तथा उससे सम्बन्धित सिद्धान्तो, कथनो एव दृष्टातो का प्रचार–प्रसार ही परिलक्षित होता है, तथापि इसकी उद्देश्य सीमा सिर्फ धार्मिक रेखा के साथ ही आबद्ध न रह सकी और यह अपने एकागी आवरण को तोडकर धार्मिक विषयो के साथ–साथ अन्य विविध धर्मेत्तर विषयो के सहज समावेश के साथ उन्मुक्त रूप मे हमारे सामने आयी।

यद्यपि प्रारम्भिक बौद्ध कला के समस्त अवयवो के रूप सम्पादन में, शिल्पियो की ' मौलिक सूझ, भिक्षुओ उपासको और उपासिकाओ की गम्भीर धार्मिक भावना, दृढ भक्ति तथा अनन्य श्रद्धा एव तद्प्रेरित कलात्मक अभिरूचि का ही परिणाम था। समुद्र की उतग तरगो की भॉति इन सबके मन मे एक कला और धर्म की जो नई हिलोरे उठ रही थी, उन्ही की उतग तरंगों ने स्तूपो चैत्यो एवं बिहारो के कलेवर की साज–सज्जा एवं रूप सम्पादन मे विभिन्न अलंकरण अभिप्रायो, बुद्ध से सम्बन्धित विभिन्न कथानको, दृष्टातों एव मनोरजन के विविध प्रकारो तथा विभन्नि ऐतिहासिक प्रकरणों के रूपाकन से बौद्ध कला के विभिन्न अवयवों को सराबोर कर डाला था।

इसी क्रम मे भरहुत, सॉची, अमरावती, नागार्जुनकोण्ड, बौद्ध कलात्मक वैभव के प्रतीक इन स्तूपो बिहारों तथा चैत्यों के अलंकरण मे बुद्ध जीवन से सम्बन्धित कथानकों, जातक कथाओ, ऐतिहासिक दृश्यो तथा अन्य लौकिक दृश्यों के दृश्यांकन के साथ प्रसग वश अथवा स्वतन्त्र रूप से विभिन्न नगरों तथा नगर–जीवन के दृश्य शिल्पियों के हस्त कौशल के साक्षी बने।

दृश्यो में अधिकाशत. घटनाये कपिलवस्तु, बोधगया, वाराणसी, कुशीनगर, राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली, जेतुत्तर नगर, कौशाम्बी जैसे नगरो से सबधित और उन्हीके परिप्रेक्ष्य मे निरूपित है। इनसे तत्कालीन नगर–स्थापत्य की एक झलक उभरती है। इनमे परिखा, प्राकार, नगर–द्वार, द्वार–कोष्ठक, बुर्ज, इन्द्रकोश तथा भवन निर्माण सम्बन्धी विस्तृत बातो, राजभवन तथा अन्य नागरिक शालाओ, भीतरी हिस्सो, आलिन्द, गावाक्ष इत्यादि के अतिरिक्त तत्कालीन नागरको के वेश–भूषा, केश–विन्यास के विभिन्न शैलियो, विविध आभूषण तथा नागरिक जीवन के जीवन्तता को प्रदर्शित करनेवाले आमोद–प्रमोद के विभिन्न साधनो के साथ राजा तथा प्रजा दोनो के ही जीवन के विविध क्रिया–कलापो को प्रदर्शित करने के लिए जिस जटिल संरचना की सृष्टि की गयी उसके सफल निरूपण और तकनीकी कौशल के लिए विषय की विलक्षण पकड अपेक्षित थी।। ये शिलाकित दृश्य कलाकारो, शिल्पकारों एव शिल्पाचार्यों के कल्पना मात्र न थे अपितु तत्कालीन नगरो तथा नगर–जीवन के यथेष्ठ प्रति चित्रण थे, इन्ही नगर, नगर स्थापत्य एव नगर जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षो के अनेक सामग्रियॉ, मनोमुग्ध झाकियॉ, प्रारम्भिक बौद्ध कला में यत्र–तत्र बिखरी हुई है, इन्ही बिखरे तिनको को सजोकर प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे मैने नगर तथा नगर जीवन के नीड को बनाने का प्रयास किया है।

यद्यपि प्राचीन भारत के नगर तथा नगर जीवन से सम्बन्धित अनेंक पक्षो का अध्ययन के0टी0एस0सराव, वी0के0ठाकुर, अमिता रे, बी0बी0दत्त, ए0घोष, एच0सरकार प्रभृति विद्वानों ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध मे प्रो0 उदय नारायण राय जी का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है, ग्रन्थ "प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन" मुख्यत साहित्यिक साक्ष्यों पर अवलम्बित होने के कारण इस ग्रथ मे प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगर तथा नगर–जीवन पर प्रकाश डालने वाले शिलाकित दृश्यो का विशेष तथा विस्तृत रूप से अध्ययन नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध मे ए0के0कुमारस्वामी, एलेक्जेडर कनिघम, बेनी माधव बरूआ, जॉन मारर्शल, ए0एच0लौगहर्स्ट, सी0शिवराममूर्ति, रोजने स्टोन, एलिजाबेथ आदि विद्वानो ने स्तूपो पर उत्टकित कलाकृतियों का प्रशसनीय अध्ययन किया है जिससे तत्तकालीन नगरो तथा नागरिक जीवन के कुछ पक्ष मुखारित हुए है। परन्तु इन विद्वानो की कृतियों मे

सम्बन्धित स्तूप कलाओ का विस्तृत अध्ययन किया गया है, न कि नगर तथा नगर जीवन के साक्ष्यो का।

अस्तु प्रस्तुत शोध–प्रबध मे हमारा प्रयास प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर–जीवन से सम्बन्धित साक्ष्यो की प्रारम्भिक बौद्ध कला के आलोक मे तुलनात्मक रूप मे प्रस्तुत करना है। वस्तुत सभ्यताओ की उद्भव की कहानी ऐसे साक्ष्यो पर गढी जाती है जिनके विवरण के कुछ ऐसे आयाम सदैव छूट जाया करते है, जिनकी नवीन व्याख्या सदैव सम्भव हुआ करती है। प्रस्तुत शोध–प्रबध ऐसे ही साक्ष्यो का तर्कसगत सश्लेषण करके प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगर तथा नगरीय जीवन के विविध पक्षो का सही चित्र प्रस्तुत करने का यथाशक्ति एक प्रयास है। अध्ययन तथा अनुशीलन की सुगमता एव क्रमबद्धता को ध्यान मे रखकर और अपने गवेषणात्मक विवेचन के व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत करने के उद्देश्य से शोध–प्रबंध पॉच अध्यायों में विभक्त है।

प्रस्तुत शोध प्रबध के प्रथम अध्याय को दो उपभागो मे विभाजित कर इस पर विचार किया गया है। पहले भाग मे नगर के लक्षण पर विचार करते समय सर्वप्रथम विभिन्न विद्वानो द्वारा सुझाये गये लक्षण, प्रमुख रूप से के बस्ती विस्तृत आकार, घनी आबादी, गैर कृषको की बस्ती, तथा शिल्प, उद्योग, बाजार, तथा मुद्रा सम्बन्धी गतिविधियो पर ध्यान दिया गया है। इसके लिए विदेशी यात्रियो के विवरण, साहित्यिक साक्ष्यो तथा इन्हे और अधिक पुष्टि बनाने के लिए प्राचीन भारत के विभिन्न नगरो के पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त सामग्रियो को उपर्युक्त सन्दर्भ मे विमर्श का विषय बनाया गया है, तथा उनसे अनुपूरक तथ्यो का सग्रहकर उन्हें उचित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे ग्रथित करने का प्रयास किया गया है।

इस अध्याय के दूसरे उपभाग मे नगर तथा ग्राम को विभाजित करने वाली रेखा को भौतिक चिन्हो के आधार पर टटोलने का प्रयास किया गया है, इसके अन्तर्गत, बस्ती का विस्तृत आकार, सन्निवेश के प्रकार, अर्थव्यवस्था कि भिन्नता आदि के अन्तर के आधार पर नगर तथा ग्राम के मध्य विभाजक रेखा को देखने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त नगर तथा ग्राम के मध्य स्वभाव संस्कार,

सामाजिक मूल्यो और आदर्शों की प्रतिष्ठा, शिष्टाचार एवं विदग्ध व्यवहार का परिक्षरण साकेतिक रूप से प्राप्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् गाथाशप्तशती, मालविकाग्निमित्रम् इत्यादि मे उल्लिखित विभिन्न दृष्टातो के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे सर्वप्रथम कैम्बे की खाडी से समुन्तरित एव समुद्र के गहरे जल मे अन्तर्निहित नगर तथा नगर–जीवन के साक्ष्यो को सन्दर्भित करते हुए सैन्धव नगरो के पतन मे आर्यो की भूमिका को टटोलने का प्रयास किया गया है, इसके पश्चात् प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर–जीवन के प्रारम्भ होने के साक्ष्यो का गहन गवेषणा के तहत विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्यिक साक्ष्यो मे सन्दर्भित नगर तथा नगर–जीवन के साक्ष्यो का अवलोकन तथा अद्यतन पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्डो, यथा काले तथा लाल मृद्भाण्ड, गेरूवर्णीय मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काली चमकीली (एन0बी0पी0) मृद्भाण्ड तथा इसके समस्तरो से प्राप्त अन्य पुरावशेषो, स्थायी निवास के साक्ष्यो एव उनके द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सामग्रियो का एक क्रमवार विवेचन किया गया है।

इस अध्याय के दूसरे भाग मे गगाघाटी मे नगरीकरण को प्रोत्साहन करने वाले आर्थिक कारकों का गहन सर्वेक्षण के तहत् ऋग्वेद से लेकर उत्तर वैदिक एवं वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में पशुपालन, कृषि एवं व्यापार तथा साथ ही विविध शिल्प एव औद्योगिक विकास के गहन गवेषणा के तहत इसके विकास क्रम तथा समय–समय पर हुए परिवर्तनो तथा परिवर्द्धनो को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

नगरीकरण मे कृषि तथा कृषि अधिशेष की महत्ता एव इनको प्रोत्साहित करने वाले लौह तकनीक, जनपद तथा महाजनपदो की भूमिका एव नगरीकरण के प्रोत्साहन मे व्यापार के योगदान की सभावनाओ को टटोलने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय मे प्रारम्भिक बौद्ध कला मे नगरीकरण एव नगर–जीवन पर प्रकाश डालने वाले प्रमुख स्रोतो का अध्ययन एव आकलन प्रस्तुत किया गया है। इसके तहत् भरहुत, सॉची, अमरावती, तथा नागार्जुनकोण्डा के कलात्मक विषयो को विमर्श का विषय बनाया गया है। यद्यपि इन समस्त प्रारम्भिक बौद्ध कलाओ का उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार एव प्रसार ही था, तथापि यहॉ उत्कीर्ण ओजस्वी एव प्रखर शिल्प राशि में तद्युगीन समाज अपनी समस्त पार्थिव आकाक्षाओ, आकषर्ण, भव्यता एव वर्णनात्मक ऐतिहासिकता के साथ पूर्णवेग से अभिव्यक्त हुआ है।

जहॉ भरहुत की कला मे नगरीय जीवन के वेश–विन्यास, केश–विन्यास, विशेष वस्त्र एव विविध आभूषणो के बहुप्रकार बहुलता की भरमार दिखाई देती है। वही सॉची की कला उन सबके साथ विशेषतया नगरो तथा नगर दृश्यो, उनके विविध वास्तु अंगो, सुरक्षा के विभिन्न साधनों से सयुक्त हो कर हमारे समाने उपस्थिति होती है। सॉची की कला मे राजगृह, बैशाली, बोधगया, श्रावस्ती, कुशीनगर, जेत्तुतर नगर, कपिलवस्तु तथा कौशाम्बी जैसे विभिन्न नगर अपने विविध आयामो के साथ यहॉ रूपायित है

जहॉ तक अमरावती एव नागार्जुनकोण्डा की कला का सम्बन्ध है, यहॉ की कला मे विशेषतया नगरो को न दिखाकर नगरीय जीवन के हलचल एव कौतुहल को दिखाने का प्रयास किया गया है। यहॉ कि कला मे राजप्रासाद तथा अन्य नागरिक शालाओं के अकन तथा इसके भीतरी कक्षो के दृश्य बहुतायत मे उपलब्ध है।

चौथे अध्याय में प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक पुरावशेषो मे उत्टकित विभिन्न नगरो तथा नगर–जीवन को सन्दर्भित करने वाले साक्ष्यों को पॉच उप शीर्षको मे विभाजित कर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है; इनमें (क) नगर–स्थापत्य (ख) विविध वस्तु एवं परिधान (ग) विविध आभूषण (घ) केश–विन्यास (ङ) मनोरंजन एव आमोद–प्रमोद । इनकी तुलना यथास्थान प्राचीन भारतीय साहित्यिक साक्ष्यो तथा उत्खनन से प्रकाश में आये नगर–स्थापत्य के विभिन्न वास्तु अगों से की गई है।

पाचवॉ अध्याय उपसहार के रूप मे प्रस्तुत है।

यह शोध–प्रबन्ध मेरे सतत् अनुशीलन एव अनवरत् अध्यवसाय का परिणाम है। इसे अधिकाधिक प्रामाणिक एव सर्वागीण बनाने के हेतु नाना कलात्मक साक्ष्यो के अतिरिक्त मूलभूत सस्कृत, पालि एव प्राकृत ग्रन्थो, पुरातात्विक साधनो तथा विदेशी यात्रियो के विवरण को उपयोग मे लाने की यथा शक्ति चेष्टा की गयी है, और स्थान–स्थान पर उनका निर्देश भी किया गया है। इसके अतिक्ति प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे नवीन शोधात्मक विधाओ तथा वैज्ञानिक पद्धतियो के माध्यम से अद्यतन उपलब्ध साक्ष्यो के तर्क सगत संश्लेषण कर समसामयिक नगरों एव नगर–जीवन के विविध पक्षो का सही चित्र प्रस्तुत करने का यथा शक्ति प्रयास किया गया है।

फिर भी मै यह दावा नही करता कि इस प्रयास में मै पूर्णत सफल हूँ तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सर्वथा दोष मुक्त है, क्योकि कविवर कालिदास के शब्दो मे "विधाता की प्रवृत्ति ही ऐसी कि वह समस्त गुणों को एक ही स्थान मे नही रखना चाहता"–

"वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारे दुनोति निर्गन्धतयास्म चेत.।

प्रायेण सामग्रयविधौ गुणाना पराड्मुखी विश्वसृज प्रवृत्ति·।।"

वक्तव्य की समाप्ति के पूर्व सर्वप्रथम मै अपनी निर्देशिका डा0अनामिका राय के प्रति सहृदय कृतज्ञ हूँ, जिनके सरक्षण व निर्देशन मे मेरे शोध कार्य का उन्नयन हुआ उनके सहज–सरल व्यक्तित्व, सक्रिय सहायता, शुभकामना तथा प्रचार से दूर रहकर अपने अध्यवसाय मे तल्लीन रहने की प्रवृत्ति जैसे प्रेरणास्पद उदाहरणों से मुझे इस शोध यात्रा के कठिन एव निराशा के क्षणों में भी निरन्तर कार्यरत रहने का

सम्बल प्राप्त हुआ। अपने विषय की अधिकारी मूर्धन्य विदूषी डा0 अनामिका राय के प्रति मै अपने शब्दो के तुच्छता को स्वीकार करते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धा की सहज अभिव्यक्ति मे बाल्मीकीय रामायण का वह श्लोक ही अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए सर्वथा उपयुक्त समझता हूँ, जिसमे कहा गया है कि 'ज्ञान, नित्य, शकररूपी गुरू की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।'

"वन्दे बोधमय नित्य गुरू शकर रूपिणम्।
यामाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र सर्वत्र वन्द्यते।।"

अश्विन शुक्ल
विजयदशमी संवत् 2059
तदनुसार, 15 अक्टूबर, 2002
इलाहाबाद

विनयावत्
(अरविन्द कुमार राय)
(अरविन्द कुमार राय)
प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आभार

गुरूओ के प्रति शिष्य का श्रद्धा ज्ञापन हृदयगता याचना की भॉति अन्तर्गत होते हुए भी सर्वदा अन्तिकस्थ रहा है, विशेषत आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डेय एव आचार्य उदय नरायण राय की अविच्छिन्न सारस्वत–साधना का व्यक्तिगत आदर्श तथा प्राच्यविद्या के क्षेत्र मे गवेषणा की नव दिशाओ का समय–समय पर समुन्मीलन मुझे उत्साह वर्धक एव प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुए है।

पूज्यपाद गुरूवर्य इतिहास पुरोधा प्रो0एस0एन0राय का मै विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके पास मै साधिकार बैठकर उनके अमूल्य समय को नष्ट करके उनसे अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थियो को सुलझाने का प्रयास क़िया है, और आपके प्रकाण्ड्य पाण्डित्य से उसका सद्य निवारण हो गया, इस महती अनुकम्पा को सिर्फ अनुभव किया जा सकता है शब्दो मे कृतज्ञता ज्ञापित करना सम्भव नही है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग के प्रो0 जे0एस0नेगी, प्रो0वी0एन0एस0यादव, प्रो0एस0सी0भट्टाचार्य, प्रो0वी0डी0मिश्र, प्रो0गीता देवी के अतिरिक्त डा0बी0बी0मिश्र, आदि विद्वानो के विद्वतापूर्ण सुझाव मुझे समय–समय पर मिलते रहे है, एतदर्थ मै अपने इन गुरूजनो का कृतज्ञ है।

गुरूवर्य प्रो० ओमप्रकाश, डा० आर० पी० त्रिपाठी, डा० जी० के० राय, डा० जे० एन० पाण्डेय, डा० रजना बाजपेई, डा० ओ० पी० श्रीवास्तव, डा० एच० एन० दूबे, डा० जे० एन० पाल, डा० पुष्पा तिवारी, डा० प्रकाश सिन्हा, डा० हर्ष कुमार, डा० शशिकान्त राय जैसे विभाग के अध्यापको का सहयोग हमे स्नातक कक्षा से ही मिलता रहा है इन विद्वानो के आत्मीयता ने मुझे जागरूक बनाये रखा।

ईश्वर शरण डिग्री कालेज, इलाहाबाद के गुरूवर्य डा० एस० सी० राय के प्रति मै विशेष आभार प्रकट करता हूँ, आपने मुझे विषय दृष्टि प्रदान की है। डा० लक्ष्मण राय का० हि० वि० वि०, वाराणसी तथा डा० आनन्द शंकर सिह के सतत्

प्रोत्साहन के बिना शोध प्रबन्ध पूरा न हो पाता, अत मै आप सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

शोध प्रबन्ध हेतु अपेक्षित सामग्रियो के सकलन मे केन्द्रिय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, भारत कला भवन का० हि० वि० वि०, वाराणसी, अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, पुस्तकालय गुडगॉव, के अतिरिक्त इलाहाबाद सग्रहालय मे स्थित पुस्तकालय उपयोगी रहे है।

इलाहाबाद सग्रहालय के निदेशक उदय शकर तिवारी ने इस सग्रहाल मे सग्रहित पुरावशेषो के उपयोग करने की अनुज्ञा एव सम्बन्धित चित्रो की पूर्ति करके मुझे कृतज्ञ किया, इसके अतिरिक्त अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव हरियाणा के निदेशक आर० पी० मेहदिरत्ता का मै विशेष आभारी हूँ, जिन्होने आवश्यक चित्रो की पूर्ति कर मुझे कृतज्ञ किया। आभारी हूँ मै निदेशक, इण्डियन म्यूजियम, कोलकता, का जिन्होने सम्बन्धित कलादीर्घा मे सग्रहित कलात्मक पुरावशेषो के उपयोग एव उनकी छायाप्रति खीचने की अनुमति प्रदान की। शोध–सामग्री सकलन मे हमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सहयोग अपने विभागीय ग्रथागार के अध्यक्ष, बडे भाई श्री सतीश चन्द्र राय एव उनके सहकर्मी श्री प्रकाश जी का मिला जिन्होने सम्बन्धित पुस्तको को उपलब्ध कराकर इस शोध यात्रा मे महत्वपूर्ण योगदान किया, इन लोगो के द्वारा प्राप्त सहयोग के लिए मै अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

मै विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का विशेष आभारी हूँ जिसके द्वारा दो वर्षो तक जे० आर० एफ० तथा तीन वर्षों तक एस० आर० एफ० के रूप मे मुझे महत्वपूर्ण आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, इस सहायता के अभाव मे शायद यह शोध–प्रबन्ध कलेवर नही ग्रहण कर सकता था।

शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने मे मेरे मित्रो का अविस्मरणीय योगदान रहा है। डा० अजय मिश्र, ओम प्रकाश राय, रविन्द्र राय, देवेन्द्र प्रसाद राय, शरद कुमार पाण्डेय, मिथिलेश राय, कृष्ण कान्त राय विशेषत. अरूण शंकर राय एव दीपक

कुमार राय का जिनका पूर्ण सहयोग अद्योपान्त रहा, इन सबके प्रति मै अपना स्नेह व्यक्त करता हूँ।

मै अपने विभाग की शोध छात्रा अशू गोयल तथा अमृता श्रीवास्तव का उल्लेख मात्र औपचारिक नही है, शोध कार्य जल्द पूरा कर लेने का निरन्तर आग्रह हमे जागरूक बनाये रखा। फिर रामदुलार, अवनीश रीना, प्रफुल्ल तथा तन्या, आशीष, सचिन, मोनिका एव श्वेता का उल्लेख न करना तो ज्यादती होगी, छोटी उम्र मे इन लोगो ने जितना सहयोग किया इसके लिए इन सबके प्रति मै अपना स्नेह व्यक्त करता हूँ।

शोध–प्रबन्ध को मूर्त रूप देने मे अनुज रमेश राय, ध्रुव नारायण राय एव विपुल कुमार का विपुल योगदान इस शोध यात्रा मे अद्योपान्त रहा। शोध जैसे श्रमसाध्य कार्य मे इन लोगो ने जिस तन्मयता, लगन एव श्रद्धा के साथ सहयोग किया यह सिर्फ इन्ही लोगो के वश की बात थी, खैर छोटा भाई होने के कारण इनका यह कर्तव्य भी तो था। हॉ इन लोगो के इस सशक्त कर्तव्यबोध के लिए, इन सब के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करता हूँ।

मै अपने माता–पिता एव बडे भ्राता एव भाभी के प्रति अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा एव हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। जिनके स्नेहपूर्ण सरक्षण, प्रोत्साहन एव असीम धैर्य के अभाव मे मेरा शोध कार्य करना असम्भव ही था इस ऋण के प्रति शब्दो मे आभार व्यक्त करना असम्भव है।

अपनी पुत्री निकिता एव पुत्र अवनीश का विशेष आभारी हूँ जिनकी शिशु सुलभ समझदारी ने मुझे शोध–कार्य शीघ्रता–शीघ्र पूर्ण करने की प्रेरणा प्रदान की। मै अपनी पत्नी मजू को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिसकी अगाध कर्तव्यबोध एव असीम सहनशक्ति के बिना मुझे यह धन्यवाद ज्ञापन लिखने का अवसर ही नही प्राप्त हुआ होता।

आज अनेक अनुशासनो एव विधाओं के आचार्यों व विशेषज्ञो के सहयोग एव आशीर्वाद से सम्पन्न इस सुदीर्घ किन्तु रूचिकर शोध–प्रबन्ध को प्रस्तुत करते हुए

और प्रकाशन पर अपने गुरूजनो, सहयोगियो, मित्रो, शुभचिन्तको एव स्वजनो के प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। कृतज्ञता–ज्ञापन के ये भाव–पुष्प मात्र औपचारिकता नही है, किन्तु इन सबकी अनुकम्पा के प्रति कृतज्ञता एव श्रद्धा की सहज अभिव्यक्ति है।

अरविन्द कुमार राय

(अरविन्द कुमार राय)

प्राचीन इतिहास सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शब्द संक्षेप-सूची

ए० आई० स०	ऐशेण्ट इण्डिया, सख्या।
ए० एस० आर०	आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट।
आई० ए० आर०	इण्डियन अर्कियोलॉजिकल ए रिव्यू।
एन० बी० पी०	नादर्न ब्लैक पालिस्ड वेयर
एन० आई० ओ० टी०	नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑव ओशन टेक्नालॉजी।

चित्र फलक सूची

13 भरहुत स्तूप, नृत्य एव वादन का दृश्य, © अमेरिकन इस्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

14 भरहुत स्तूप की मुडेर (कोपिग) पर अकित जातक दृश्य (इलाहाबाद सग्रहालय, पुरावशेष स० 46)

15 भरहुत स्तूप के उष्णीष पर अकित दृश्य (इलाहाबाद सग्रहालय पुरावशेष स०44)

16 सॉची स्तूप, शालभजिका, (कोलकाता सग्रहालय)

17 सॉची स्तूप सख्या–1, दक्षिणी तोरण द्वार तथा मन्दिर स०–18 © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

18. सॉची स्तूप सख्या–1, दक्षिणी तोरण, निचली बडेरी पृष्ठतल, कुशीनगर का धतु युद्ध दृश्याकन © अमेरिका इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

19 सॉची स्तूप सख्या–1 दक्षिणी तोरण, निचली बडेरी पृष्ठतल कुशीनगर का वर्हिमुख, धातु युद्ध © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

20 सॉची स्तूप सख्या–1 उत्तरी तोरण, द्वार, पृष्ठभाग मध्यवर्ती बडेरी वामपार्श्व जतुत्तर नगर का अकन © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

21 सॉची स्तूप सख्या–1 उत्तरी तोरण द्वार, मुख्य भाग पूर्वी स्तम्भ © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

22 सॉची स्तूप सख्या–1 उत्तरी तोरण, मुख्य भाग पश्चिम स्तम्भ कपिलवस्तु का वर्हिमुख © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

23 सॉची स्तूप सख्या–1 पूर्वी तोरण द्वार, उत्तरी स्तम्भ दक्षिणी भाग कपिलवस्तु का अकन © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

24 साँची स्तूप सख्या–1 पूर्वी तोरण द्वार, उत्तरी स्तम्भ दक्षिणी भाग सबसे ऊपर माया देवी का स्वप्न, नीचे कपिलवस्तु नगर का वर्हिमुख।

25 साँची स्तूप सख्या–1 उरवेला गॉव, पूर्वी तोरण द्वार, दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ का उत्तरी भाग © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

26 साँची स्तूप सख्या–1 पश्चिमी तोरण द्वार, पृष्ठतल मध्यवर्ती बडेरी कुशीनगर का धातु युद्ध © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

27 नृत्य तथा वाद्य दृश्य, अमरावती, (कोलकाता सगहालय)

28 मायादेवी का स्वप्न, अमरावती, (कोलकाता सगहालय)

29 तुषित स्वर्ग मे बैठे बुद्ध, नृत्य एव वाद्य का दृश्य तथा मायादेवी का स्वप्न, (कोलकाता सगहालय)

30 नलगिरि हास्ति दमन दृश्य, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

31 बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

32 प्रासाद का चित्रण, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुडगॉव।

अनुक्रम

अध्याय एक

नगर के लक्षण एवं नगर तथा ग्राम की विभाजक रेखा

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे नगरीकरण एव नगर जीवन सम्बन्धी साक्ष्यो के अध्ययन के क्रम मे सर्वप्रथम हमे नगरो की उन मूलभूत विशेषताओ का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है, जिसके आधार पर नगरो की पहचान सुनिश्चित की जा सके, इसके लिए क्या मापदण्ड हो सकते है? इसकी समीक्षा आवश्यक है।

विद्वान वी० गॉर्डन चाइल्ड ने नगरीय क्रान्ति की विशेषताओ मे विशाल इमारत एव घनी आबादी वाली बडी–बडी बस्तियो का होना आवश्यक बताया है। इसके अतिरिक्त खाद्योत्पादन से अलग रहने वाले (शासक, शिल्पी, सौदागर इत्यादि) की उपस्थिति कास्य युगीन नगरीय क्राति के लक्षण माने गये है।[1] अनाज अनुत्पादक वर्ग को पोसने वाले शिल्प–विशेषज्ञो की उपस्थिति और उत्पादको से कर के रूप मे प्राप्त अधिशेष के महत्व पर चाइल्ड ने बहुत बल दिया है। रॉबर्ट मैक एडम्स के अनुसार बस्ती का विस्तृत आकार और घनी आबादी नगरीकरण के निर्णायक कारक है और प्राथमिक नगरीय आवश्यकताओ मे विशिष्ट शिल्पो का योगदान नगण्य होता है।[2]

बस्ती के विस्तृत आकार एव घनी आबादी के सन्दर्भ मे चाइल्ड एव एडम्स के मतो की पुष्टि अनेक प्राचीन भारतीय साहित्य मे सन्दर्भित नगर तथा नगर जीवन सम्बन्धी विवरण एव भ्रमणकारी विदेशी यात्रियो के भारत सम्बन्धी यात्रा विवरण प्रसगो से भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त पुरावशेष भी इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराते है।

बस्ती के विस्तृत आकार के सम्बन्ध मे विदेशी यात्रियो ने उल्लेख किया है। मेगस्थनीज, पाटलिपुत्र नगर के विस्तृत आकार का उल्लेख करते हुए लिखा है कि

---

1 चाइल्ड, बी० गार्डन, 'द अर्बन रिवॉल्यूशन, 1950, गेगरी एल0 पॉस्सेल (स०) ऐशेयण्ट सिटीज ऑव द इडस, दिल्ली, (1979) पृ० 12–17।

2 एडम्स, रॉबर्ट मैक, 'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव अर्बनिज्म, 1968, ग्रेगरी, एल0 पॉस्सेल (स०) ऐशेण्ट सिटीज ऑव

नगर के परकोटे का घेरा नौ मील तथा उसकी चौडाई डेढ मील थी।[3] चीनी यात्री फाह्यान ने मगध की चर्चा करते हुए लिखा है कि मध्यभारत के सभी राज्यो मे इस देश के नगर अपेक्षाकृत विशाल है।[4] ह्वेनसाग के यात्रा विवरण प्रसगो के अवलोकन से प्रतीत होता है कि ईसा की सातवी शताब्दी मे भी पाटलिपुत्र नगर के खण्डहर बारह से चौदह मील की परिधि मे फैले हुए थे।[5] इसने पुराने महल के उत्तर मे गगा के किनारे लगभग एक हजार मकानो वाले छोटे शहर की चर्चा की है।[6] कदाचित यह आबादी पुराने पाटलिपुत्र का एक अश मात्र रही होगी।

ह्वेनसाग के यात्रा विवरण से भरुकच्छ राज्य की राजधानी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जिससे उसके विस्तृत आकार का पता चलता है। वह लिखता है कि नगर बीस ली अथवा चार मील की परिधि मे फैला हुआ है यद्यपि इसके द्वारा उल्लिखित नगर का सामान्य क्षेत्रफल तीस ली है।[7] ह्वेनसाग ने कान्यकुब्ज नगरी को तीन मील लम्बा तथा एक मील चौडा बताया है।[8] निश्चय ही इन नगरो की जनसख्या इनके विस्तार के अनुरूप बहुत अधिक रही होगी।

जहॉ तक नगरो की जनसख्या का प्रश्न है इस सम्बन्ध मे हमे कोई प्रत्यक्षत प्रमाण उपलब्ध नही होता किन्तु, फिर भी अनेक भारतीय साहित्यो मे सन्दर्भित नगर सम्बन्धी विवरणो एव विदेशी यात्रियो के भारत सम्बन्धी यात्रा विवरण प्रसगो से तत्कालीन भारतीय नगरो मे जनाकीर्ण की पुष्टि होती है।

अर्थशास्त्र से अभिज्ञात होता है कि राजमहल के निवासी, पार्षद, पुरोहित और गुरू, सेनानायक और सबसे बढकर सेना के चारो विभाग जिसमे हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेना के सैनिक शामिल थे, किलेबन्द नगर में रहते थे।[9] निश्चय ही इनकी सख्या बहुत अधिक रही होगी। मिलिन्दपह्नो से भी अनेक प्रकार के योद्धा

---

3 अग्रवाल, वी एस 'भारतीय कला' वाराणसी, 1977, द्वि० स० (पु० भु०) 1995 (स० डॉ० अग्रवाल, पी के) पृ० 99
4 सी यू–की, 1 4
5 द्र० वाडेल, एल ए रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशस ऐट पाटलिपुत्र,
6 सी–यू–की, ८ पृ0 86
7 वही, पृ० 259
8 वाटर्स ऑन श्वान्च्वाग, 1905, 341
9 अर्थशास्त्र (आर पी कागले सस्करण) द्वितीय , 4

एव सैनिक अधिकारियो के साथ चतुरग सेना के नगर की आबादी का बडा हिस्सा होने का पता चलता है।[10]

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् से भी हस्तिनापुर मे जनाकीर्ण की पुष्टि होती है। जब शार्ङ्गव हस्तिनापुर पहुचता है, उस समय वह जनरव से घबडा कर अपने मित्र से कहता है कि मित्र शारद्वत! बहुत दिनो से निर्जन स्थान मे रहने की आदत पड जाने के कारण यह जनाकीर्ण नगर मुझे वैसे ही लगता है, जैसे मनुष्य को अग्नि की ज्वाला से अवेष्ठित घर दृष्टिगोचर होता है।[11] कुमारपालचरित मे अणहिलपत्तन नगर के सम्बन्ध मे कहा गया है कि इस नगर के नागरिको की सख्या को गिनना वैसे ही असम्भव है, जैसे समुद्र की बूदो की गणना।[12] इस कथन मे अतिश्योक्ति हो सकती है किन्तु इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निश्चय ही इस नगर की जनसख्या बहुत अधिक रही होगी। एरियन ने तक्षशिला को जनाकीर्ण नगर बताया है।[13]

बडे नगरो मे जनसख्या का विवरण सुरक्षित रहता था।[14] कौटिल्य ने न सिर्फ जनसख्या– कार्यालय का उल्लेख किया है, अपितु उसने गोप तथा स्थानिक जैसे दो पदाधिकारियो का भी उल्लेख किया है जो जनगणना करते थे। गोप नगर के दस, बीस अथवा चालीस कुलो के सदस्यो की गणना करता था।[15] वह अपने अधिकार क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के पुरुष एव स्त्रियो की जाति, गोत्र, नाम एव उनके द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय का ब्यौरा अपने खाते मे दर्ज करता था। 'स्थानिक' गोप से बडा पदाधिकारी था। इसके खाते मे नगर के चारो भागो के निवासियो के नाम दर्ज रहते थे।[16] वे सर्वथा इस बात के लिए सतर्क रहते थे कि जन्म या मृत्यु का कोई लेखा सरकारी खाते मे छूटने न पाये[17]।

---

10 टी डब्लू रीज डेविड (अनु0) द क्वेश्चस ऑव किग मिलिन्द, एस बी ई 36 भाग पॉच पृ0 209–11।

11 तथापिद शाश्वत् परिचित विविक्तेन मनसा। जनकीर्ण मन्ये हुतवहपरीत गृहमिव।। कालिदास ग्रथावली, स0 रेवा प्रसाद द्विवेदी (वाराणसी 1976) अभिज्ञानशाकुन्तलम् अक 5, श्लोक 10, पृ० 499 ग्रथावली।

12 ए एस अल्टेकर, ऐशेण्ट टाउन्स एण्ड सिटीज इन गुजरात एण्ड काठियावाड, पृ० 12।

13 कनिघम, एशेण्ट ज्याग्राफी, पृ0 105।

14 मेक्रिण्डिल, ऐशेण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइण्ड बाइ मेगस्थनीज एण्ड एरियन खण्ड 27।

15 अर्थशास्त्र (यौली सस्करण) प्रकरण 56।

16 वही, प्रकरण 56।

नागरिको को भी अतिथियो की सूचना उन्हे देनी होती थी। मेगस्थनीज ने भी पाटलिपुत्र मे प्रजा के जीवन–मरण का ब्यौरा प्रस्तुत करने वाली पदाधिकारियो के होने का उल्लेख किया है।[18]

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखाो से इतना तो स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय प्रशासन–तन्त्र नगर जनसख्या विवरण के सम्बन्ध मे काफी सचेष्ट था, किन्तु फिर भी दुर्भाग्य से तत्कालीन जनसख्या का प्रत्यक्ष उल्लेख न तो हमे भारतीय साक्ष्यो और न ही विदेशी यात्रियो के यात्रा विवरण से प्राप्त होता है। तथापि कुछ विद्वानो ने भारतीय साक्ष्यो एव यूनानी लेखको के आधार पर एक मोटा अनुमान लगाने का प्रयास किया है। उनका विचार है कि इस काल मे भारत जनसख्या बाहुल्य देश था।[19]

किन्तु कला एवं पुरातत्व मे आकार एव आबादी के आकलन की अपनी अलग कठिनाई है। यह ठीक है कि पुरातात्विक तथ्यो के आधार पर यदि एक टीले अथवा एक दूसरे से सटे हुए अनेक टीले, जो माप मे एक वर्ग मील अथवा इससे बडे हो, बडी आबादी के सकेतक साक्ष्य माने जा सकते है। इसी प्रकार मकानो की सघनता से भी घनी आबादी का सकेत मिलता है, यदि नगर किसी नदी के किनारे बसा है तो, नदी के जल से एक बडी आबादी को जल की आपूर्ति की जा सकती है और यदि नगर नदी के किनारे नही बसा है तो, नगर मे स्थित तालाबो एव छल्लेदार कूपो की अधिकता से यह सकेत मिलता है कि, किसी बडी आबादी को उनकी जल की जरूरत पडती थी। घरो से निकलने वाली नालियो अथवा सोख्त गड्ढो के रूप मे प्रयुक्त छल्लेदार कूपो से घनी आबादी के सकेत प्राप्त होते है। कहना न होगा कि पुरातात्विक उत्खनन मे इस प्रकार के छल्लेदार कुएँ (रिगवेल्स) अनेक प्राचीन भारतीय नगरो से प्राप्त हुए है। ऐसे कुओ के लिए हस्तिनापुर,[20] नई दिल्ली,[21] रोपड,[22] उज्जैन,[23] मथुरा,[24] नासिक,[25] कौशाम्बी,[26]

---

18 मेक्रिण्डिल खण्ड 27।

19 दे0, के0 एम0 शेम्बवनेकर 'द पापुलेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया', 'एनल्स ऑव द भण्डारकर ओरियन्ट रिसर्च इन्सटीट्यूट,' जिल्द 33, 1952, पृ० 90, जी० सी० पाण्डेय, पापुलेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, 'जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसायटी (अल्टेकर मेमोरियल वाल्यूम, जि० 45, भाग I –4 पृष्ट० 383–386)।

20 ऐशेण्ट इडिण्या, स0 10–11,16।

21 इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954–55, पृ० 14।

अयोध्या,[27] राजघाट,[28] चम्पा,[29] बाणगढ,[30] अरिकामेडु,[31] लौरियानन्दनगढ,[32] इत्यादि नगरो का उल्लेख किया जा सकता है। हस्तिनापुर से प्राप्त छल्लेदार कूप मे चकरियो की सख्या पच्चीस तथा दूसरे मे सैतालिस है।[33] इसी प्रकार कौशाम्बी के उत्खनन से जो वलय कूप प्रकाश मे आया है, उसमे चकरियो की सख्या पच्चीस है।[34] जयपुर जिला के अन्तर्गत रेढ नामक स्थल से 115 जितनी बडी सख्या मे छल्लेदार कूप पाए गए है।[35] ऐसे ही कुँए पूर्वी उत्तर–प्रदेश और बिहार के अनेक स्थलो से पाए गये है। इनमे से कुछ कूपो का उपयोग सोख्त गर्तो के रूप मे प्रयोग किये जाते रहे होगे जब कि अन्य का उपयोग एक बडी जनसख्या को जल की आपूर्ति के लिए किया जाता रहा होगा। निश्चित रूप से यह स्थिति ईटो से बने कुओ की थी। ऐसा कुआँ उज्जैन से पाया गया है।[36] मथुरा के मौर्योत्तर कालीन कुछ छल्लेदार कुओ से सम्भवत स्थानीय लोगो को पेय जल मिलता था।[37]

इस प्रकार बडी मात्रा मे प्राप्त ये छल्लेदार कुएँ भी एक बडी आबादी के सकेतक साक्ष्य माने जा सकते है। परन्तु ऐसा लगता है कि आबादी की विशालता मात्र किसी नगर का लक्षण नही है। विशाल भवनो, अराधना के स्थलो आदि के साथ भी इसको जोडना गलत है। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था से भिन्न एक ऐसी गुणात्मक छलाग है, जिसके साथ उक्त तत्व तो पाये ही जाते है, साथ ही दूसरे

---

22 वही, पृ० 7।
23 वही, 1955–56 पृ० 19।
24 वही, 1954–55, पृ० 16।
25 सकालिया एच० डी०, रिपोर्ट ऑन दि एक्सकेवेशन्स ऐट नासिक ऐड जॉर्वे, 1950–51।
26 शर्मा, जी० आर०, पूर्वोक्त, 1949–50, एम० ए० एस० आई० सख्या – 74।
27 आई०ए०आर० 1979–80 पृ० 77।
28 सिह बी० पी०, लाइफ इन एन्शेन्ट वाराणसी एन एकाउन्ट बेस्ड आन आर्कियोलाजिकल एविडेस, 1985, दिल्ली, पृ० 26–27।
29 आइ०ए०आर०, 1970–71, पृ० 5।
30 पुरी, के०एन० एक्सकेवेशन्स ऐट रैढ ड्यूरिंग सवत् इयर्स, 1995 एण्ड 1996 (1938–39 एड 1939–40 ए. डी) पृ० 58–61।
31 शर्मा, वाई० डी० 'रिमेस ऑव अर्ली हिस्टारिकल सिटीज, आर्कियोलाजिकल रिमेस मान्यूमेट्स एड म्यूजियम, भाग–1) पृ० 83–84।
32 ए०एस०आर० 1935–36 पृ० 66।
33 ऐशेन्ट इण्डिया, सख्या 10–11, पृ० 25।
34 राय उदयनारायन, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन (द्वितीय स० परिवर्द्धित सस्करण) 1998 इलाहाबाद, पृ० 285, चि०फ०स० 39 चि० स० 1।
35 पुरी के०एन० एक्सकेवेशस ऐट रैढ ड्यूरिंग सवत् इयर्स 1995 एड 1996 (1938–39 एड 1939–40 ए डी) पृ० 58–61।
36 इण्डियन आर्कियोलाजी ए रिव्यू 1956–57, पृ० 27।
37 इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू, 1954–55 पृ० 16।

अन्य लक्षण, जैसे व्यवसायो का विशेषीकरण, उत्पादन मे दक्षता, नये तकनीकि आविष्कार, प्रतीक द्रव्यों का चलन, बस्ती की सुव्यवस्थित योजना, प्रशासनिक तन्त्र का विकास इत्यादि लक्षण पाये जाते है।

रामशरण शर्मा के अनुसार नगर की वास्तविक पहचान केवल आकार और आबादी से नही होती, बल्कि भौतिक जीवन की गुणवत्ता और व्यवसायो के स्वरूप से होती है। यद्यपि पृष्ठप्रदेश से प्राप्त अधिशेष किसी शहर के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है, फिर भी केवल गैर–कृषको की बस्तियो को शहरी केन्द्र नही माना जा सकता। शिल्पो का सकेद्रण और मुद्रा–आधारित विनिमय का प्रचलन शहरी जीवन की उतनी ही महत्वपूर्ण विशेषताए है।[38] प्रो० शर्मा के अनुसार किसी जगह के निवासी जिन शिल्पोपकरणो और अन्य वस्तुओ का प्रयोग करते है उनसे उनकी जीवन की गुणवत्ता का पता चलता है और इसका महत्व उस जगह के आकार से अधिक होता है।[39]

गैर कृषको की बहुसख्या शहरी आबादी का विशिष्ट लक्षण है, कृषि उपकरणो की कमी से कृषि की घटती हुई भूमिका का आभाव मिलता है, वही विभिन्न प्रकार के शिल्प उपकरणो, शिल्प उत्पादो, धातु गलाने मे प्रयुक्त भट्टियो के पुरातात्विक प्रमाण के आधार पर शिल्पिय तथा अन्य गतिविधियो का अनुमान किया जा सकता है।

यह ठीक है कि शहर मे ऐसे लोगो का बाहुल्य होता है जो स्वय कृषि नही करते, किन्तु बिना पुष्ट ग्रामीण आधार के शहर का अस्तित्व सम्भव नही हो सकता। नगरो मे निवास करने वाली उन ढेर सारी नगरीय जनसख्या का पोषण समीपवर्ती कृषि अधिशेष पर ही सम्भव है, और यह अधिशेष उत्पाद निश्चय ही इसके उत्पादको को कुछ न कुछ देकर ही प्राप्त किया जा सकता है। अत यह असम्भव नही कि शहर मे निवास करने वाले, ग्रामीण आवश्यकता के अनुरूप शिल्प उत्पाद और कृषि मे प्रयुक्त होने वाले उपकरण, जैसे– फावडा, कुदाल, हॅसिया, हल के

---

38 शर्मा, रामशरण, 'भारत के प्राचीन नगरो का पतन' अनुवाद सीताराम राय, (पृ०स०) 1996, नई दिल्ली, पृ० 18।

39 वही, पृ० 21।

फाल इत्यादि को बनाकर ग्रामीणो को बेचते हो, अत नगरीय स्थलो से इनकी सम्प्राप्ति असम्भव नही है, हॉ जहॉ तक इसके प्रयोग किये जाने का सवाल है निश्चय ही उनका प्रयोग ग्रामीण क्षेत्रो मे ही होता होगा।

जहॉ तक शिल्प एव उद्योग का सम्बन्ध है निश्चय ही आवो, चूल्हो, लौहमलो, भट्टियो, सिक्का एव आभूषण ढालने के सॉचो, मोहरो, मनको इत्यादि की सम्प्राप्ति स्थल को नगरीय चरित्र प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त विलास एव ठाट–बाट मे काम आने वाली वस्तुए, यथा बहुमूल्य पत्थरो के बने हुए मनके, कॉच के सामान, हाथी दॉत की बनी वस्तुए, ताबे अथवा कासे के बने बर्तन, हाथी दॉत अथवा हड्डी के बने कघे, प्रस्तर निर्मित प्रसाधन किश्तियॉ, रोमन बर्तन, सोने चॉदी से निर्मित आभूषण सग्रह इत्यादि की सम्प्राप्ति समृद्ध वर्ग के अस्तित्व एव उनके उच्चतर भौतिक जीवन के सकेत साक्ष्य माने जा सकते है।

उल्लेखनीय है कि ऐसे शिल्पोपकरण एव शिल्प उत्पाद अनेक आरम्भिक नगरीय स्थलो से पुरातात्विक उत्खनन मे प्राप्त हुए है, इनमे कुछ का उल्ल्ेख किया जा सकता है, यथा–तक्षशिला स्थित 'सिरकप' के उत्खनन से शिल्प एव दस्तकारी के पर्याप्त सकेत मिलते है। इनमे बढइयो और धातुकारो के उपकरण, सॉचे, मिट्टी के बर्तन, कपडो के ऊपर छाप लगाने वाले ठप्पे, सिक्को और आभूषणो को ढालने वाले धातु निर्मित ठप्पे सम्मिलित है।[40] प्रसाधन के विभिन्न उपकरणो मे तॉबे अथवा कॉसे के दर्पण, हड्डी और हाथी दॉत के बने कॅघे, पत्थर निर्मित किश्तियॉ शामिल हैं। कम मूल्यवान पत्थरों की अनेक मोहरे और शीशे के बहुसख्यक मनको[41] के अतिरिक्त सोने और चॉदी निर्मित आभूषणो का सॅग्रह[42] यहॉ समृद्ध वर्ग के अस्तित्व के ससूचक है। उत्पादन के उपादानो मे सिक्का ढालने के सॉचे[43], कुठालियॉ[44],

---

40 मार्शल, सर जान टैक्सिला, भाग–1, पृ० 202, 205।
41 वही, भाग एक, 203–204।
42 वही, भाग दो, पृ० 425।
43 वही, भाग एक पृ० 177, भाग दो पृ० 462।
44 वही भाग दो, पृ० 425।

भाथी की नालियॉ[45] और धातुकारो की जहॉ–तहॉ ले जाने वाली भट्टियॉ शामिल है।[46]

वाराणसी के राजघाट के उत्खनन से शिल्प एव उद्योग मे अभूतपूर्व उन्नति के सकेत प्राप्त होते है।[47] यहॉ से लोहे तथा तॉबे से निर्मित बहुसख्यक वस्तुए, लोहे के धातुमल और साथ ही लोहे के गलाने मे प्रयुक्त की जाने वाली वृहदाकार भट्टियॉ पाई गई है।[48] पत्थर और शीशे के मनके तथा इनसे निर्मित कगन प्राप्त हुए है।[49] हाथी दॉत की वस्तुओ का यहॉ प्रमुख निर्माण केन्द्र प्रतीत होता है। साथ ही वस्त्र–उद्योग की समुन्नत स्थिति का पता चलता है।[50]

बलियॉ जिले मे स्थित खैराडीह के उत्खनन से शिल्प एव विभिन्न उपकरणो की प्राप्ति हुई है, जो नगरीय जीवन के सकेत देते है। खैराडीह लोहे के सामान बनाने का महत्वपूर्ण स्थल मालूम पडता है। यहॉ से एक कमरे मे मिट्टी मे खोदी गई भट्टियॉ तथा पच्चीस कि ग्रा धातु मल प्राप्त हुआ है।[51] यहॉ से लौह निर्मित कुल्हाडी तथा छेनी प्राप्त हुई है।[52] नगर के उत्तरी छोर पर लोहार का कारखाना था। ऐसा लगता है कि नगर का सबसे उत्तरी भाग कारखाने के लिए आरक्षित था।[53] अन्य अनेक छोटी–छोटी पुरावस्तुओ मे मृण्मय अगमर्दक, थपका, कुम्हार का ठप्पा, पहिया, खिलौने, शीशे, मिट्टी और पत्थर से निर्मित मनके, तॉबे की चूडियॉ, कगन और कर्णाभूषण, लोहे की कील, छुरी के फाल, बेलचा, बत्ती, ॲगूठी और हॅसिया शामिल है।[54] इन पुरावशेषो की सम्प्राप्ति स्थल को नगरीय चरित्र प्रदान करते है।

---

[45] वही, भाग दो, पृ० 424–25।
[46] वही भाग दो, पृ० 424।
[47] सिह, बी पी लाइफ इन ऐशिएट वाराणसी ऐन एकाउट बेस्ड ऑन आर्क्यिोलाजिकल एविडेस,1985,दिल्ली, पृ० 260–261।
[48] वही, उपर्युक्त, पृ० 260–61।
[49] वही, पृ० 223–32, 261।
[50] वही, पृ० 224।
[51] आईए.आर 1983–84 पृ० 86।
[52] वही, 1982–83 पृ० 94।
[53] वही, 1983–84 पृ० 86।
[54] वही, 1981–82 पृ० 70।

उडीसा के पुरी जिलातर्गत शिशुपालगढ मे बडे पैमाने पर उत्खनन हुआ है।[55] जिसके फलस्वरूप अनेक वस्तुए प्रकाश मे आयी है, जो इस स्थल को स्पष्टत नगरीय चरित्र प्रदान करती है। इनमे कम कीमती पत्थर, शीशे और हाथी दॉत निर्मित चूडियॉ, बहुसख्यक मृण्मय कर्णफूल शामिल है।[56] लौह निर्मित कीले, आरे, कुल्हाडियॉ, हॅसिया, छुरी की फाल, बेधक, कटार, गोखरू बाणाग्र और भालो की नोके शामिल है।[57]

राजस्थान के जयपुर जिलातर्गत रेढ की खुदाई से यह स्थल हस्तशिल्प का प्रमुख केन्द्र प्रतीत होता है। यहॉ लौह निर्मित हथियार और उपकरण बनते थे।[58] स्पष्टत समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रो की जरूरते इन उपकरणो से पूरी की जाती होगी। यहॉ सोने, चॉदी, सीसे तॉबे की वस्तुओ का निर्माण होता था। यहॉ के शिल्पकार शख, हाथीदात, कासे तथा सेलखडी की वस्तुओ के निर्माण मे दक्ष थे।[59]

महाराष्ट्र के अहमदनगर जिलातर्गत नेवासा, शिल्प एव उद्योग का प्रमुख केन्द्र प्रतीत होता है। यहॉ मनका बनाने के उद्योग की दक्षता, यहॉ से प्राप्त शीशे के मनको से दृष्टिगोचर होता है।[60] शीशे के मनके और कम कीमती पत्थरों का प्रचलन था।[61] यहॉ से लोहे की कुल्हाडियॉ, हॅसिया और फाल भी मिले है।[62] इसके अतिरिक्त धातु पिघलाने के लिए बनी छत्तीस खण्डित कुठालियॉ मिली है। ये कुठालियॉ विभिन्न उद्देश्यो के निमित्त बने विभिन्न आकारो में पाई गई है।[63] शंख की चूडियो से इस काल के उन्नतशील कुटीर उद्योग का आभास मिलता है।[64]

---

[55] लाल, बी बी 'शिशुपालगढ 1948 ऐन हिस्टारिकल फोर्ट इन ईस्टर्न इण्डिया, ए आई स० 5 पृ० 62–105।

[56] वही, ए आइ, स० 5 पृ० 62–105।

[57] ए आई स० 5, 61–105।

[58] पुरी, के एन एक्सकेवेशस ऐट रैढ, पृ० 50।

[59] वही, पृ० 50।

[60] सकालिया, एच डी, देव, एस बी एव एहरहार्डस सोफिया, फ्राम हिस्ट्री टू प्री–हिस्ट्री ऐट नेवासा (1954–56) पृ० 369।

[61] आई ए आर 1954–55, पृ० 7।

[62] वही, पृ० 7।

[63] सकालिया, ए डी एव अन्य, फ्राम हिस्ट्री टु प्री–हिस्ट्री ऐट नेवासा (1954–56) पृ० 384–85।

[64] आइ ए आर 1954–55 पृ० 7।

उस्मानाबाद जिला के अतर्गत टेर, जिसका प्रतिनिधित्व तेर्णा नदी के दोनो तटो पर स्थित प्राय नौ टीले करते है।[65] यहॉ उत्खनन से पत्थर के जातो, लोढो, लोहे की अनेक वस्तुओ के अतिरिक्त शख और शीशे की चूडियो और ताबे के सिक्को[66] से टेर का नगरीय चरित्र सिद्ध होता है। यहॉ से कार्नेलियन की बनी मोहरे, मिट्टी के बने लाकेट, दातेदार चक्रित मृदभाण्ड जैसी रोमी वस्तुए मिली है। यहॉ से लाजवर्द का मनका और चीनी मिट्टी की बनी अनेक वस्तुए पाई गई है, यद्यपि इन्हे बनाने का यहॉ कोई भी कच्चा माल उपलब्ध नही था।[67] निश्चय ही उन वस्तुओ का अन्य जगहो से आयात किया गया होगा। 'पेरिप्लस ऑव द एरिथ्रियन सी' मे उल्लिखित है कि अन्य जगहो से पण्य वस्तुए पहले टेर लाई जाती थी, और बाद मे पैठन से गुजरने वाले मार्ग से पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाहो को भेजी जाती थी।[68]

आन्ध्र प्रदेश के मेडक जिलातर्गत 'कोण्डापुर' गॉव से आधे मील की दूरी पर स्थित ढाई एकड क्षेत्र के टीले की आशिक खुदाई हुई है।[69] प्राप्त विविध पुरावशेष से स्पष्ट होता है कि कोण्डापुर, शिल्प–उत्पादन और पण्य पदार्थो के विनिमय का बडा केन्द्र था। यहॉ मनका निर्माण महत्वपूर्ण शिल्प था।[70] कीमती तथा कम कीमती पत्थर के मनको का प्रयोग होता था।[71] यहॉ के राजमिस्त्री अपने शिल्प के द्वारा सादे से लेकर प्रभावोत्पादक स्थापत्य का निर्माण करते थे[72] तथा कुम्हार बौद्ध रूपाकनो से अलकृत एव परिष्कृत मृदभाण्ड बनाते थे।[73] बहुत पतले और बारीक चमकदार पालिश वाले लाल मृण्पात्र का प्रयोग सभवत उच्चवर्गीय घरो मे होता

65 चेपेकर, बी एन, रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशन ऐट टेर (1958), पृ० 11।
66 आइ ए आर 1957–58, पृ० 23–24।
67 चेपेकर, बी एन, रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशन ऐट टेर (1958) पृ० VII 66, 93–98।
68 आइ ए आर 1968–69, पृ० 17।
69 यजदानी, जी, एक्सकेवेशस ऐट कोडापुर ऐन आध्र टाउन (200 बी सी टू ए डी 200) ऐनल्स ऑव द भण्डारकर ओरिएटल, इस्टीट्यूट XXII, पृ० 175।
70 वही, पृ० 181।
71 वही, पृ० 179।
72 वही, पृ० 181।
73 वही, पृ० 176–77।

था।[74] भट्ठी वाली दुकानो और धातु को ठडा करने वाले हौजो की सम्प्राप्ति यहाँ के 'धातुकर्म' के प्रगति के सकेतक साक्ष्य माने जा सकते है।[75]

आन्ध्र प्रदेश मे कृष्णा नदी के किनारे स्थित नागार्जुनकोण्डा, धर्म, राजनीति के साथ–साथ शिल्पियो और सौदागरो का भी केन्द्र था। इसकी अधिकाश आबादी नगर–दुर्ग के बाहर चौराहो और उपवीथियो से युक्त चौडी सडको के किनारे बने मकानो मे रहती थी।[76] एक मकान से सोनार के बिक्री के सारे माल मिले है,[77] जिनमे कुठालियाँ और अनेक प्रकार के साँचे शामिल है।[78] एक दूसरे मकान से सोने के आभूषणो का सचय जिसमे रोमी सिक्के के लटकन से युक्त कण्ठा शामिल है।[79] यहाँ से अनेक शिल्पियो के शिल्प सघो का पता चलता है।[80] नागार्जुनकोण्डा से हाथी दाँत की बनी अनेक चूडियाँ प्राप्त हुई है।[81] मनको में कम कीमती पत्थर एव शीशे के मनके[82] प्राप्त हुए है। ऐसा लगता है कि उनका यहाँ स्थानीय उत्पादन अथवा व्यापार होता था।

इस प्रकार अनेक पुरातात्विक साक्ष्यो मे विभिन्न शिल्पो के सकेन्द्रण स्थल को नागरीय चरित्र प्रदान करते है, किन्तु शिल्पो के सकेन्द्रण के साथ–साथ मुद्रा आधारित विनिमय का प्रचलन भी नगरीय जीवन की उतनी ही महत्वपूर्ण विशेषताएं है।[83] सिक्का शहरी उन्नति का प्रतीक था। सिक्को का ज्ञान भण्डार बताते है कि माल विनिमय मुद्रा के माध्यम से होता था। उल्लेखनीय है कि बहुसंख्यक स्थलो से प्राप्त सिक्के प्राचीन लौहयुगीन आबादी के नगरीकरण के स्पष्ट सकेत देते है। पुरातात्विक उत्खनन मे भी ऐसे अनेक नगरो से विभिन्न कालो के बहुसख्यक सिक्के प्रकाश मे आये है। सिक्को के अतिरिक्त अनेक स्थलो से सिक्का ढालने के साँचे प्राप्त हुए है, जो स्थल को टकसाल नगर होने के साक्ष्य प्रस्तुत करते है। इन

---

74 वही, पृ० 177।
75 वही, पृ० 181।
76 सरकार, एच और मिश्र, बी एन, नागार्जुनकोण्डा (नई दिल्ली, 1972) पृ० 20–21।
77 वही पृ० 21।
78 वही पृ० 58।
79 वही पृ० 21।
80 वही पृ० 22।
81 आई ए आर 1955–56 पृ० 26।
82 आई ए आर 1954–55, पृ० 23।
83 ठाकुर, वी के क्वाइस एण्ड अर्बन सेन्टर, आई एन सी भाग XII पृ० 115–18।

स्थलो में सघोल, सुनेत, घुरम, मोकर्दन, धुलिकट, कोण्डापुर, नागार्जुनकोण्डा इत्यादि स्थलो का उल्लेख किया जा सकता है। सॉची, काशी तथा नालन्दा से भी सिक्का ढालने के सॉचे मिले है।[84] इन स्थलो मे सुनेत से प्राप्त सॉचे महत्वपूर्ण है।

यहॉ से प्राप्त तीस हजार सॉचे बतलाते है कि सुनेत मे केवल टकसाल ही कायम नही था अपितु वह इन सॉचो को बनाने का केन्द्र भी था।

ऐतिहासिक नगरो मे शिल्पियो एव सौदागरो के व्यापारिक गतिविधियो के अस्तित्व का आभास सुपाठ्य मोहरो एव उत्टकित अभिलेखिक साक्ष्यो से भी हो सकता है। ऐसी अनेक मुहरे वैशाली, सारनाथ, राजघाट, कौशाम्बी, श्रावस्ती, कसिया आदि नगरो के उत्खनन से प्राप्त हुई है। इन सिक्को पर श्रेष्ठि, निगम, श्रेष्ठि–सार्थवाह, कुलिक–निगम, कुलिक, प्रथम–कुलिक, सार्थवाह आदि लेख मिलते है। विद्वान आर० एस० शर्मा० का यह विचार कि चाहे शहर का उदय जिस कारण हो, वहॉ बाजार कायम हो कर ही रहता है और कारीगर इकट्ठा हो ही जाते है।[85] कहना न होगा कि कुछ एक नगरो के सुव्यवस्थित उत्खनन के फलस्वरूप बाजार होने का प्रमाण महत्वपूर्ण है, क्योकि विभिन्न स्थलो की उत्खनन रिपोर्टो मे बहुत कम दुकानो का उल्लेख मिलता है। मथुरा जिले के सोख से दुकानो के प्रमाण प्राप्त हुए है। यहॉ एक गली के दोनो तरफ दुकानो की कतारे पाई गई है।[86] तक्षशिला से भी एक गली के दोनो तरफ दुकानो की कतारे प्राप्त हुई हैं, ये दुकाने एक दो कमरे वाली एक मजिली इमारते है।[87] इलाहाबाद के निकट भीटा नामक स्थल से शुगो के समय मे बनी अनेक दुकाने और मकान थे, जो आरम्भिक गुप्त काल अथवा कुषाण युग मे विनष्ट हो गये[88] तथा पुन गुप्त काल मे कुछ मकानों का फिर से निर्माण हुआ और गली के किनारे–किनारे दुकाने बनाई गईं।[89] नागार्जुनकोडा के उत्खनन से स्पष्ट है कि यहॉ की अधिकाश आबादी नगर दुर्ग के

---

84 उपाध्याय, डॉ० वासुदेव, प्राचीन भारीतय मुद्राएँ, पटना, 1971, पृ० 17।

85 शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, (प्रथम स० 1992) द्वितीय स० 1993, दिल्ली,पृ० 181।

86 हरबर्ट हार्टेल, सम रिजल्ड्ट्स ऑव द एक्सकेवेशस एट सोख, जर्मन स्कॉलर्स ऑन इण्डिया II, पृ० 76।

87 मार्शल, सर जॉन टैक्सिला, I, पृ० 140।

88 ए एस आर, 1911–12 पृ० 34–38।

89 वही, पृ० 38।

बाहर चौराहे और उपवीथियों से युक्त चौडी सडको के किनारे बने मकानो मे रहती थी।[90] अनेक मकान दुकानों और शिल्प–केन्द्रो जैसे प्रतीत होते है। एक दुकान मे सोनार के बिक्री के सारे माल मिले है।[91] यहॉ हलवाइयो, पान के पत्तो के विक्रेताओ और उत्पादको के अस्तित्व का पता चलता है।[92]

नगर तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे भौतिक जीवन पद्धतियो तथा उनके द्वारा प्रयोग किए गए विभिन्न उपकरणो के अन्तर के आधार पर भी नगर की पहचान की जा सकती है। निश्चय ही नगरीय लोगो का भौतिक जीवन स्तर ग्रामीणो की अपेक्षा ऊँचा होता है, अतएव उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओ मे भी अन्तर होता है। यह ठीक है कि सामाजिक असमानता ग्राम तथा नगर दोनो मे पायी जाती है इस तरह, चाहे नगर हो अथवा गॉव सबका जीवन स्तर बराबर नही होता, फिर भी कुछ ऐसी वस्तुए हैं, जो कीमती मानी जाती है और उनका प्रयोग नगरो मे रहने वाले धनाढ्य वर्ग के लोग ही कर सकते है, उनका प्रयोग गॉवो मे भी हो सकता है, किन्तु उतने बडे पैमाने पर नही हो सकता जितना नगरो मे। इसी प्रकार कुछ एक साधारण वस्तुओ के उपयोग के प्रमाण नगरो से भी प्राप्त हो सकते है। क्योकि नगरों मे भी कुछ ऐसे वर्ग हो सकते है जिनका जीवन स्तर ग्राफ बहुत ऊँचा नही होता।

इस प्रकार यदि किसी स्थल से बहुसख्यक विभिन्न प्रकार के कीमती पत्थर, पत्थर और शीशे के मनके, कॉच के सामान, हाथीदॉत की बनी वस्तुएं, परिष्कृत मृण्डमय वस्तुए, आभूषण तथा आभूषण बनाने के सॉचे, रोमन बर्तन, पतली दीवालो वाले चमकीले मिट्टी के बर्तन जैसी मूल्यवान प्रतिष्ठापरक अथवा विलासिता की वस्तुओ की प्राप्ति होती है। तो ये वस्तुएं स्थल को नगरीय चरित्र प्रदान करती है।

प्राचीन भारतीय सन्दर्भ मे परिष्कृत प्रकार के मृद्भाण्ड का प्रयोग नगर–वासियों की उच्चतर भौतिक सस्कृति का परिचायक है ज्ञान की वर्तमान स्थिति में हम उतरी काली ओपदार मृद्भाण्ड का उल्लेख कर सकते हैं। यह एक चमकदार उत्पाद था जो अपनी पतली काट एवं सुन्दर बनावट के लिए प्रसिद्ध था।

---

90 सरकार, एच और मिश्र बी एन नागार्जुनकोण्डा, नई दिल्ली– 1972, पृ० 20–1।
91 वही, पृ० 21।
92 वही, पृ० 22।

इसको देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इसका प्रयोग नगरो मे रहने वाले धनाढ्य वर्ग के लोग ही करते रहे होगे।[93]

विद्वान वी गार्डन चाइल्ड ने विशाल इमारतो को शहरी विशेषता के रूप मे माना है।[94] इनके अनुसार विशाल इमारते अधिशेष खपत की प्रतीक होती है, तथा इनसे जनसाधारण पर शासक वर्ग के शक्ति और प्रतिष्ठा का रोब जमता है, लेकिन आश्चर्य की बात है कि ऐसी इमारते आरम्भिक नगरो मे नही पायी गयी है। सम्भवत चाइल्ड का यह मत सैन्धव नगरो के सन्दर्भ मे ठीक हो सकता है। लेकिन जहॉ तक प्राचीन भारतीय आरम्भिक नगरो का प्रश्न है, निश्चय ही उनके निर्माण मे मिट्टी का प्रयोग किया जाता था[95], जो बहुत दिनो तक टिकाऊ नही रह सकती थी। अस्तु नगरों मे बडे ढाचो के सम्बन्ध मे कम से कम प्रारम्भिक भारतीय नगरो के सन्दर्भ मे तत्कालीन तकनीकी उपलब्धता एव जलवायु पर भी ध्यान देना होगा।

जहॉ तक पकाई हुई ईंटो का सम्बन्ध है, ये भारतीय सन्दर्भ मे लगभग 300 वी. सी के आस–पास प्रकाश मे आते है और लगभग एक शताब्दी बाद महत्वपूर्ण हो जाते है, लेकिन नगरो को केवल ईंटों के मकानों के साथ जोडना गलत होगा। मध्य एशिया के अन्तर्गत अफरासियाब मे मिट्टी के मकानो वाला शहर पाया गया हैं। यदि मध्य–गागेय मैदानी इलाको जैसे अनेक कछारी मैदानों के आद्र एव नम जलवायु को ध्यान मे रखा जाय तो अच्छे पैमाने पर पकाई हुई ईंटो के मकान बडे महत्वपूर्ण मालूम पडते है और वे शहरो की विशेषता बन बैठते है। मध्य एशिया की शुष्क जलवायु मे मिट्टी के मकान टिकाऊ हो सकते थे और वहॉ केवल ऐसे मकान ही नगरो का निर्माण कर सकते थे।

पुन ढॉचा विशेष का मूल्याकन प्रयोजन के आधार पर होना चाहिए, न कि मात्र उसके आकार के आधार पर ढॉचा कितना भी बडा क्यो न हो, केवल उसकी उपस्थिति मात्र से नगर होने का सकेत नही मिलता। अति–विशाल इमारते केवल आवासीय प्रयोजन अथवा अधिशेष कृषि उत्पाद को रखने के लिए ही नही होती,

---

93 सौन्दराजन, के० वी० मेकेनिक्स ऑव सिटी एण्ड विलेज इन ऐशेण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1986, पृ0 150।

94 एडम्स, पूर्वाक्त, 'टाउन प्लैनिग रिव्यू' (1950) भाग 21 पृ० 3–17।

95 सौन्दराजन, के वी 'मेकेनिक्स ऑव सिटी एण्ड विलेज इन एन्शेन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1986, पृ0 151।

इनके निर्माण का उद्देश्य धार्मिक प्रयोजन के लिए भी हो सकता है। अतएव बडे–बडे ढॉचो के निर्माण का तात्पर्य परिवेश को देखकर जहॉ ये इमारते स्थित है अथवा जिस प्रयोजन विशेष के लिए इनका निर्माण किया गया हो, को देखकर ही समझा जा सकता है।

बौद्ध संघाराम, मठ, स्तूप इत्यादि के आधार पर भी नगर की पहचान की जा सकती है क्योकि भारत मे नगर एव बौद्ध धर्म के बीच एक बडा निकट का सम्बन्ध रहा है। महात्मा बुद्ध प्राय किसी नगर के आस–पास मे वर्षा ऋतु व्यतीत करते थे अतएव प्रारम्भिक भिक्षुओ के निवास के लिए आदर्श स्थान वह होता था जो न तो नगर के बहुत दूर हो और न बहुत निकट, जहॉ आसानी से लोगो की पहुॅच हो, जो लोगो से अलग (एकान्त मे) हो और ससार निवृत्त जीवन के लिए बिल्कुल उपयुक्त हो।

यह ठीक है कि बौद्ध विचारधारा ससार की क्षणभगुरता और निवृत्तिवाद का पोषण करती है अत इसके लिए नगरीय चकाचौध एव उनके सुख साधन से इस धर्म का कोई खास मतलब नही था। फिर भी भिक्षुओ की रोजमर्रा की जिन्दगी के लिए कुछ वस्तुओ की आवश्यकता पडती थी, जिसकी पूर्ति भिक्षु, नगरों से भिक्षा के द्वारा करते थे। अस्तु, नगरो से बहुत दूर भी इनके लिए रहना उपयुक्त न था। मार्शल का यह कहना ठीक है कि बौद्ध मठ शहर के निकट होता था, जहॉ बौद्ध भिक्षु अपनी जीविका के वास्ते भिक्षाटन के लिए जाते थे। कदाचित् इसीलिए प्रारम्भिक सघाराम अथवा मठ स्तूप इत्यादि नगर के सटे उपनगरो मे पाए जाते है। यह बात तक्षशिला, भीटा, सारनाथ, पिपरहवा, कुशीनगर, वैशाली, सांची, नागार्जुनकोण्डा के मठों और स्तूपों तथा नासिक, कार्ले, जुन्नर इत्यादि की गुफाओ के बारे मे ठीक लगती है।

पुन भारतीय नगरीय लक्षण के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय साहित्य से भी समुचित जानकारी उपलब्ध होती है। विभिन्न साहित्य में नगरों के सन्निवेश का विधान किया गया है, यदि ऐसे विभिन्न अवयव किसी स्थल के साथ उपलब्ध होते है तो उसे नगर माना जा सकता है।

सर्वप्रथम नगर निर्माण से पूर्व उपयुक्त भूमिका का चुनाव किया जाता था। प्राचीन ग्रन्थो में इसके लिए भूमि के विविध लक्षणो का निर्देश दिया गया है। अर्थशास्त्र मे कहा गया है कि भरसक नदियो के सगम पर नगर का निर्माण किया जाए।[96] यदि नदियो का सगम प्राप्त न हो सके, तो पुर निर्माण या तो नदी के तट पर अथवा पर्वत के किनारे किया जाये।[97] अपराजितपृच्छा मे कहा गया है कि नदियो का सगम पुर निर्माण के लिए उपयुक्त है, अथवा गिरि के पास पुर बसाना सम्मत है।[98] शुक्रनीतिसार मे भी नगर को पर्वत के समीप होने का विधान किया गया है।[99] महाभारत के अनुसार नदी तट अथवा पर्वत के उपकण्ठ पर बसे हुए पुर, नागरिको के स्वास्थ्य तथा मगल के कारक सिद्ध होते है।[100]

उपर्युक्त भूमि के चुनाव के पश्चात् नगर को सर्वप्रथम सुरक्षा के साधनो से युक्त किया जाता था। सुरक्षा के साधन दो प्रकार के थे– (1) प्राकृतिक तथा (2) कृत्रिम। कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि नगर या राजधानी का चुनाव उसकी प्राकृतिक या कृत्रिम रक्षा– योग्यता के अनसुार किया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार नदी, जल, पर्वत, प्रस्तर समूह मरुभूमि तथा अरण्य इसकी रक्षा के प्राकृतिक साधन थे।[101] इनमे नदी एव पर्वत का स्थान महत्वपूर्ण था। महाभारत [102] एव मत्स्यपुराण[103] मे गिरिदुर्ग को सबसे श्रेष्ठ दुर्ग कहा गया है। सुरक्षा के कृत्रिम साधनों मे परिखा, प्राकार, नगर द्वार, गोपुरम्, सुरक्षा टावर (बुर्ज) महत्वपूर्ण है।

मनुष्यकृत सुरक्षा के साधनो मे सर्वप्रथम 'परिखेयी भूमि'[104] पर परिखा का निर्माण किया जाता था। परिखा की सख्या एक[105], तीन [106] अथवा कभी–कभी सात[107] तक हुआ करती थी। इन परिखाओ की चौडाई काफी अधिक होती थी,

---

96 वास्तुकप्रशस्ते देशे नदी सगमे– अर्थशास्त्र प्रकरण 21 पृ० 31 (यौली सस्करण)।
97 अर्थशास्त्र, प्रकरण 21, पृ० 31।
98 अपराजितपृच्छा, पृ० 31।
99 नातिदूरे महीधरे I– शुक्रनीतिसार, अध्याय 01, पक्ति 14।
100 महाभारत– शान्तिपर्व, अध्याय 87, पक्ति 8।
101 अर्थशास्त्र, भाग 2, अध्याय 3, पृ० 54 (शास्त्री–अनूदित)।
102 महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 87।
103 सर्वेषामेव दुर्गाण गिरिदुर्गं प्रशस्यते,– भत्स्यपुराण, अध्याय 217, श्लोक 7।
104 द्रष्टव्य, अष्टाध्यायी, 3, 1, 17।
105 मेक्रिण्डल, खण्ड 26, पृ० 68।
106 जातक सख्या, 546, समरागण सूत्रधार, भाग 1, पृ० 40।
107 ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय 72, पक्ति 15।

जैसा कि महाभारत[108], हरिवश[109] एव नवसाहसाकचरित[110], के उल्लेखो से अभिज्ञात होता है। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र की परिखा को 600 फुट चौडी बताया है।[111] अर्थशास्त्र मे परिखा के परिमाण का उल्लखे प्राप्त होता है जिसके अनुसार पहली परिखा चौदह दण्ड, दूसरी बारह दण्ड तथा तीसरी दस दण्ड विस्तीर्ण हो।[112] किन्तु इसकी गहराई, चौडाई की अपेक्षा कम होती थी। अर्थशास्त्र मे इसकी गहराई, चौडाई से चतुर्थांश कम[113] तथा शुक्रनीतिसार मे इसे आधी बताया गया है।[114] परिखा मे दृढता लाने के लिए इसके किनारे–किनारे ईंटो की चिनाई की जाती थी। मेगस्थनीज ने भी पाटलिपुत्र की परिखा मे ईंट लगी होने का उल्लेख किया है।[115] अर्थशास्त्र मे उल्लिखित है कि परिखा के मूल तथा उसकी दीवालो मे समान आकार के तराशी हुई पाषाण–खण्डों की ईंटों से चिनाई की जाए। समरांगणसूत्रधार[116] मे भी ऐसे ही उल्लेख प्राप्त होते है।

परिखा को जल से भर दिया जाता था ऐसे परिखा को कौटिल्य ने 'तोयपूर्ण परिखा' कहा है।[117] जातको मे इसके लिए 'उदक परिखा' शब्द आया है। कभी–कभी परिखा के मुख को नदी से मिला दिया जाता था, जिससे परिखा नदी के जल से भर जाती थी। कौटिल्य ने ऐसे परिखा को 'सपरिवाहा' परिखा कहा है।[118] वायु पुराण मे कहा गया है कि परिखा के मुख को नदी से मिला दिया जाय।[119] शत्रु आक्रमण के समय परिखा को तैर कर पार न कर सके, इसके लिए परिखा में कभी–कभी भयकर जल–जन्तु छोड दिये जाते थे। कौटिल्य ने ऐसे

---

108 सागरप्रतिरूपाभि परिखाभिरलकृताम्।– महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 119 पक्ति 57।

109 गगासिन्धुप्रकाशाभि परिखाभिर्वृतापुरीम्।'– हरिवश पुराण, विष्णु पर्व, अध्याय 98 पक्ति 22।

110 'सशब्द जाम्बूनदमेखलेव'– नवसाहसाकचरितम्, सर्ग 1, पक्ति 36।

111 मेक्रिण्डिल, खण्ड 26 पृ० 64।

112 तस्य परिखास्तिस्त्रो दण्डन्तरा कारयेत् चतुर्दश द्वादश दशेतिदण्डान् विस्तीर्णा–' अर्थशास्त्र, द्वितीय अधिकरण, तृतीय अध्याय, प्रकरण–21 दृर्ग विधानम्, पृ0 36 (काग्ले)।

113 अर्थशास्त्र, भाग 2, अध्याय 3, पृ० 55।

114 शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, श्लोक 240।

115 मेक्रिण्डिल, खण्ड 26, पृ० 67।

116 विधेयमिष्ट काभिर्वा सम्यग्वद्धतल भवेत– समरागण सूत्रधार, पृ० 40।

117 अर्थशास्त्र, पृ० 51 (शास्त्री)।

118 वही, पृ० 51 (शास्त्री)।

119 'स्तोत्रसीसहतद्, द्वार निखातं पुनरेव च।– वायु पुराण, अध्याय 8, पक्ति 209।

परिखा को 'ग्राह्वती' परिखा कहा है।[120] महाभारत मे भी कहा गया है कि परिखा के जल मे घडियाल तथा नाग आदि भयकर जल–जन्तु छोड दिये जाये।[121]

इस प्रकार परिखा का निर्माण नगर सुरक्षा की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण था ही उसके अतिरिक्त इसका निर्माण उपयोगितावादी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण जान पडता है। निश्चय ही इन नगरो मे एक बडी जनसख्या निवास करती थी, जिसको बडी मात्रा मे जल की आवश्यकता पडती होगी। परिखा मे एकत्रित जल से इसकी आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती थी। इस दृष्टि से साची के कला मे उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग की मध्यवर्ती बडेरी पर उत्टकित राजकुमार वेस्सन्तर की राजधानी 'जेतुत्तर' के साथ प्राकार के बाहर जल परिखा का निर्माण महत्वपूर्ण बन बैठता है, जिसमे नगर–द्वार से हाथ मे घडे लेकर पुर–सुन्दरियॉ परिखा से जल भरने के उद्देश्य से बाहर निकली देखी जा सकती है।[122] इसके अतिरिक्त नगर की त्याज्य गन्दगी को भी इन परिखाओ मे गिराया जा सकता था कदाचित इसीलिए वास्तुचार्यों ने एक से अधिक परिखाओ के निर्माण का विधान नगरो के साथ किया था। तमिल ग्रन्थो के अनुसार वजी की परिखा मे परिवाहो की गन्दगी गिराई जाती थी।[123]

परिखा के निर्माण के उपरान्त, परिखा बनाते समय जो मिट्टी खोदी जाती थी, उसका उपयोग वप्र के निर्माण मे किया जाता था, जैसा कि अर्थशास्त्र[124] तथा समरागणसूत्रधार[125] से अभिज्ञात होता है। इसके लिए सर्वप्रथम परिखा से उत्खनित मिट्टी को चौकोर बना कर हाथियो एव बैलो के द्वारा उसे दबाते थे।[126] समरागणसूत्रधार के अनुसार वप्र के ऊपरी सतह को ऐसी क्रिया द्वारा भली–भाति बराबर कर देना बहुत ही आवश्यक है।[127] वप्र के ऊपर कटीली तथा विषैली

---

120 अर्थशास्त्र, पृ० 51 (शास्त्री)।
121 "आपूरयेच्च परिखा स्थनुनक्रझषा कुलाम्।"– महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 69 पक्ति 68।
122 दे० चि० क० स० 20।
123 अय्यर, टाउन प्लैनिग इन ऐशेण्ट डकन, पृ० 34।
124 खातद्वप्रकारयेत्– अर्थशास्त्र पृ0 51 (शास्त्री)।
125 समरांगणसूत्रधार सूत्र धार, पृ० 40।
126 अर्थशास्त्र, पृ० 51 (शास्त्री)।
127 "भूप्रदेशान् पुरानिम्नानापूर्य समता नयेत।"– समरागणसूत्रधार, पृ० 40।

झाडियॉ लगाकर उसे शत्रु के लिए अगम्य बना दिया जाता था।[128] इस प्रकार जो वप्र तैयार होता था, वह कौटिल्य के अनुसार छ दण्ड ऊँचा तथा बारह दण्ड चौडा होता था।[129]

'वप्र' के ऊपर 'प्राकार' का निर्माण किया जाता था। वस्तुत वप्र, प्राकार निर्माण के लिए आधार का काम करता था। सामान्यतया नगर के साथ एक प्राकार बनाया जाता था, किन्तु बडे नगरों के साथ एक से अधिक प्राकार बनाने का भी विधान था। इनकी सख्या तीन[130] से लेकर सात[131] तक हो सकती थी। अर्थशास्त्र मे भी कई प्राकार बनाने का निर्देश किया गया है।[132] जिसमे दो प्राकारो के मध्य की दूरी बारह से लेकर चौबीस हस्त तक दी गई है।[133] अनेक प्राचीन भारतीय नगरो के प्राकार द्वारा परिवेष्ठित होने के उल्लेख प्राप्त होते है। इनमे वाराणसी,[134] चम्पा[135], पाटलिपुत्र[136], शाकल,[137] इन्द्रप्रस्थ,[138] कपिलवस्तु,[139] वैशाली,[140] राजगृह,[141] मिथिला,[142] द्वारका[143] आदि नगरो के प्राकार–परिवेष्ठित होने की सूचना मिलती है।

निर्माण मे प्रयुक्त सामग्री के आधार पर प्राकार तीन प्रकार के होते थे – 1 पासु प्राकार 2 इष्टका प्राकार तथा 3 प्रस्तर प्राकार। पासु प्राकार मिट्टी का बना होता था।[144] इष्टका प्राकार मे ईंटो की चिनाई की जाती थी। अर्थशास्त्र मे ऐसे प्राकार को 'ऐष्टक प्राकार' कहा गया है।[145] तीसरे प्रकार के प्राकार में पत्थर का प्रयोग किया जाता था, जैसा कि तमिल ग्रथो से ज्ञात होता है कि पाण्ड्यो की

---

128 "कटकगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तम्।"– अर्थशास्त्र, पृ० 51 (शास्त्री)।
129 "षड्दण्डोच्छ्रितमवरूद्ध तद्विगुण विषकम्भम्।"– वही, पृ० 52 (शास्त्री)।
130 'तिहि पाकारेहि परिक्खितम्'– जातक, प्रथम 504।
131 ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय 72, पक्ति 15।
132 अर्थशास्त्र, पृ० 52 (शास्त्री)।
133 "द्वादशहस्ताद चतुर्विशति हस्तादिति कारयेत्"– अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शास्त्री)।
134 जातक, प्रथम, 98।
135 जातक, vi 32।
136 पाटलिपुत्रका प्राकारा – महाभाष्य भाग दो, 321 (कीलहर्न)।
137 कनिधम, ऐशेन्ट ज्याग्राफी, पृ0 369।
138 प्रकोरण च सम्पन्न–महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 199 पक्ति 118।
139 सप्तहिपाकारेहि – महावस्तु 2 75।
140 "वेसाली नगरम् गवुतगावन्तुरे तिहि पाकारेहि परिक्खितम् – जातक 1, 504।
141 वाटर्स 2, 153।
142 महाउम्मग जातक, संख्या 546।
143 हरिवश, विष्णुपर्व, अध्याय 58, पंक्ति 105।
144 हरिवश, हरिवश पर्व, अध्याय 54 पक्ति 116।
145 अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शास्त्री)।

राजधानी मदुरा की दीवाल मे प्रस्तर खण्ड चुने गये थे।[146] जहाँ तक इन प्राकारो की ऊँचाई का सम्बन्ध है, निश्चय ही इनकी ऊँचाई अधिक हुआ करती थी। विभिन्न ग्रन्थो मे इसकी ऊँचाई भिन्न–भिन्न दी गयी है, किन्तु इसके निर्माण का मुख्य उद्देश्य नगर सुरक्षा था, अस्तु शुक्रनीति का यह कथन सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है, जिसमे कहा गया है कि नगर–प्राकार इतने ऊँचे बनाये जाये कि शत्रु उन्हे पार न कर सके।[147]

प्राकार मे अन्य सुरक्षा साधन का निर्माण किया जाता था, इनमे गोपुरम्, प्रतोली, बुर्ज (अट्टालक), इन्द्रकोश इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इन्हे प्राकार अवयव कहा गया है।[148] नगर मे प्रवेश के लिए प्राकार मे नगर द्वारो का निर्माण किया जाता था, इन्हे 'गोपुर' कहा जाता था।[149] प्रधान नगर द्वारों की सख्या चार होती थी,[150] जो अलग–अलग चारो दिशाओ मे विद्यमान होते थे।[151] मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र नगर के प्राकार मे 64 द्वार होने का उल्लेख किया है,[152] इनमे चार प्रधान द्वारो के अतिरिक्त शेष गौण द्वार रहे होगे। अर्थशास्त्र मे ऐसे द्वारो को 'प्रतोली' कहा गया है।[153] निश्चय ही गोपुर (प्रधान नगर द्वारो) की चौडाई प्रतोली (गौण द्वारो) से बहुत अधिक हुआ करती थी। अर्थशास्त्र मे कहा गया है कि गोपुर की चौडाई प्रतोली की छह गुनी होनी चाहिए।[154] इन नगर द्वारो मे कपाट लगे होते थे।[155] जो एक निश्चित समय पर खुलते और बन्द होते थे।[156] यदि यात्री रात्रि के समय देर से पहुँचता, तो उन्हे दरवाजो के सामने सबेरा होने तक नगर के भीतर प्रवेश पाने के लिए प्रतीक्षा करनी पडती थी।[157]

---

[146] अय्यर, टाउन प्लैनिग इन ऐशेन्ट डकन, पृ0 37।
[147] शुक्रनीतिसार, अध्याय, 1 पक्ति 744।
[148] द्रष्टव्य, यू0एन0राय, स्टडीज इन ऐशेण्ट इडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 87।
[149] अर्थशास्त्र, पृ0 53 (शास्त्री), पुरद्वार तु गोपुरम्– अमरकोश, पृ0 77।
[150] "चतुदिक्षु चतुर्द्वारम्" – मानसार, अध्याय 10 पृ0 53।
[151] "नगरस्य चतुसु द्वारेसु। – जातक 1, 262।
[152] मेकिण्डिल, मेगस्थनीज एण्ड एरियन, खण्ड 26, पृ0 66।
[153] अर्थशास्त्र पृ0 53 (शास्त्री)।
[154] प्रतोली षट्लान्तर द्वारं कारयेत्। – अर्थशास्त्र, पृ0 53 (शास्त्री)।
[155] "कपाटा सर्वद्वारेषु" – अपराजित पृच्छा, पृ0 173।
[156] मेक्रिण्डिल, मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृ0 66।
[157] जातक स0 155।

जहॉ तक गोपुर के ऊँचाई का सम्बन्ध है इनका निर्माण प्राकार मे किया जाता था। अस्तु इनकी ऊँचाई प्राकार के बराबर होती थी, किन्तु इनके शिखर बहुत ऊँचे तथा भव्य हुआ करते थे। जैसा कि महाभारत मे हस्तिनापुर गोपुर को अतिश्योक्ति पूर्ण ढग से कैलास पर्वत के शिखर के समलकृत बताया गया है।[158] इस सम्बन्ध मे यहॉ जातको मे वर्णित तक्षशिला नगर के प्रधान नगर द्वार के ऊपर निर्मित उस शिखर का उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा जिसके सौन्दर्य के प्रभाव से प्रभावित हो कर वाराणसी के किसी शासक ने तक्षशिला नगर पर आक्रमण की अपनी भावना छोड दी थी।[159] रक्षा के निमित्त इन पुर द्वारो के समीप गार्ड रूम बने होते थे, जिनमें सशस्त्र सैनिको की नियुक्ति की जाती थी।

प्राकार मे गोपुर के अतिरिक्त बुर्जों का निर्माण किया जाता था। प्राचीन ग्रथो मे इसे अट्टालक कहा गया है। इनका निर्माण नगर प्राकार के चारो दिशाओ मे एक निश्चित दूरी पर किया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार दो अट्टालको के बीच 30 दण्ड की दूरी होती थी।[160] बुर्ज के ऊपर पहुॅचने के लिए सोपान बने होते थे। जिसकी ऊँचाई बुर्ज की ऊँचाई के बराबर होती थी।[161] बुर्ज की चोटी पर विभिन्न आयुधो से युक्त सैनिक नियुक्त किये जाते थे। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के प्राकार मे 570 बुर्जों के निर्माण का उल्लेख किया है।[162] इसके अतिरिक्त दो बुर्जों के बीच इन्द्रकोश का निर्माण किया जाता था, जैसा कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अभिज्ञात होता है। यह एक प्रकार का कमरा होता था, जिसमे तीन धनुषधारी पहरेदारो के बैठने के लिए आसन बने होते थे।[163]

प्राचीन भारतीय नगरो का अनियन्त्रित विकास नही हुआ था, अपितु ये एक सुनियोजित योजना के परिणाम थे जिसमे विभिन्न सुरक्षा के साधनो के साथ ही इनके आकार–प्रकार पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्य का सम्यक् अध्ययन नगरो के साथ प्रमाणित आकार के बारे में सूचना देते

---

[158] कैलाश शिखर कारैर्गोपुररै समलकृताम्। महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 96, पक्ति 112।
[159] बेनीप्रसाद, स्टेट इन ऐशेण्ट इण्डिया, पृ0 123।
[160] "त्रिशद्दण्डान्तर च द्वयोरट्टलकयोर्मध्ये"। – अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शास्त्री)।
[161] "अट्टालक मुत्सेध . सोपान कारयेत। वही, पृ0 52 (शास्त्री)।
[162] मेक्रिण्डिल, मेगस्थनीज एण्ड एरियन, खण्ड 26, पृ0 68।
[163] "त्रिधानुण्काधिष्ठान . इन्दकोश कारयेत्"। – अर्थशास्त्र, प्रकरण 21, पृ0 33 (यौली)।

है इनमे – 1 चौकोर[164] 2 आयताकार[165] 3 वृत्ताकार[166] 4 समनान्तर चतुर्भुजाकार[167] 5 अर्धचन्द्राकार[168] 6 भुजगाकार[169] 7 त्रिभुजाकार[170]।

नगर के आकार निर्धारण के साथ ही नगर मे राजमार्गों के निर्माण की क्रिया प्रारम्भ होती थी। इनकी सख्या नगर के विस्तार के अनुरूप होती थी जैसा कि शुक्रनीतिसार मे कहा गया है कि पुर के परिमाण को देखकर ही नृप राजमार्गों की कल्पना करे।[171] राजमार्गों को पर्याप्त रूप से चौडा बनाया जाता था जिससे यातायात मे कोई कठिनाई न हो। ये राजमार्ग एक दूसरे को समकोण पर काटते थे, इस स्थल को चत्वर, चतुष्पथ, शृगडट्टक, नगर चत्वर इत्यादि कहा गया है। कभी–कभी इन राजमार्गों के किनारे दोनो ओर नाले बनाये जाते थे, जिनके माध्यम से नगर की गन्दगी बहाई जा सके।[172] राजमार्गों के बीच का हिस्सा उथला बनाया जाता था जिसके कारण राजमार्ग के ऊपर जल सचय नही हो सकता था। शुक्रनीतिसार मे राजमार्ग का मध्य भाग कछुए की पीठ की भाति ऊपर उठा हुआ होना बताया गया है।[173]

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यो के आधार पर नगर की पहचान सुनिश्चित की जा सकती है। उपर्युक्त साहित्यिक लक्षण प्रारम्भिक बौद्ध कला में उच्चित्रित नगर तथा नगर जीवन के साक्ष्यों को पहचानने मे अतीत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है कहना न होगा कि प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित नगर दृश्य इन साहित्यिक मापदण्डो का अक्षरश. पालन करते हुए प्रतीत होते है। पुरातात्विक दृष्टि से भी इनके आधार पर अनेक नगरीय स्थलो की पहचान सुनिश्चित की गयी है।

---

[164] मत्स्यपुराण, अध्याय 217, पक्ति 24।
[165] मत्स्यपुराण, पूर्वोक्त, पक्ति 24, महाभारत, समापर्व अध्याय 57, रामायण बालकाण्ड, सर्ग 5, 7।
[166] मत्स्यपुराण, पूर्वोक्त, पक्ति 24, मयमत, अध्याय 10, श्लोक 13।
[167] मेक्रिण्डिल, खण्ड 26, मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृ0 67।
[168] मत्सपुराण, अध्याय 217 पक्ति–27 अग्निपुराण अध्याय 108 पक्ति 9, 10 समरागण सूत्रधार, पृ0 44 पंक्ति 122।
[169] समरागण सूत्रधार पृ0 44, अय्यर, टाउन प्लैनिग इन ऐशेण्ट डकन, पृ0 33।
[170] युक्तिकल्पतरु, पृ0 23 विश्वकर्माप्रकाश, अध्याय 11, पक्ति 39।
[171] पुरं दृष्ट्वा राजमार्गान, सुबहून कल्पयेन्नृप– शुक्रनीति सार अध्याय 1।
[172] कुर्या–मार्गान पार्श्वखातान्निर्गमार्थं जलस्यच।" –शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, पक्ति 32।
[173] "कुर्यार्मपृष्ठामार्गभूमिः।"–शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, पक्ति 54।

नगर तथा ग्राम की विभाजक रेखा

वास्तव मे नगर तथा ग्राम के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखा खीचना थोडा कठिन प्रतीत होता है। स्पष्टत यह बताना मुश्किल है कि कहा से ग्राम की सीमा समाप्त होती है और किस सीमा से नगर का आरम्भ होता है। फिर भी जो भिन्नताए प्रतीत होती है। उनका परीक्षण और समीक्षण आवश्यक है। इनके बीच जनसख्या और क्षेत्रफल के आधार पर भेद किया जाता है, किन्तु गॉव और नगर के निर्धारण में जनसख्या और क्षेत्रफल को कोई निश्चित कसौटी नही माना जा सकता।[174] जहॉ तक सन्निवेश भेद का प्रश्न है निश्चय ही नगर एक सुनियोजित योजना के परिणाम थे, इनका अनियत्रित विकास नहीं हुआ था। सस्कृत एव पालि ग्रथों से अभिज्ञात होता है कि नगर ऊँची सुरक्षा दीवाल, गहरी खाई, चौडी गलियो, बडे प्रवेश–द्वार, गगन चुम्बी प्रासाद, व्यस्त बाजार, पार्क तथा तालाब से युक्त हुआ करते थे।[175]

उल्लेखनीय है कि नगर के लिए किसी स्थल का उपजाऊ होना कत्तई जरूरी नही है। यदि विनिमय और वितरण के लिए अनुकूल स्थितियॉ मौजूद है। तो नगर किसी ऊसर, वंजर, चट्टानी पहाडी पर भी बनाये जा सकते हैं। इसकी उपयुक्तता अपनी गतिविधियो के केन्द्र के रूप में परिवहन की दृष्टि से सुविधा जनक होने के कारण इस बात पर निर्भर करती है कि इसके माध्यम से एक बडे क्षेत्र से सम्पर्क रखा जा सके। विशाल नदियो और समुद्र तट के कुछ विशेष स्थल इस दृष्टि से सबसे उपयुक्त रहे है जहॉ नौका तथा जलमार्गों से आसानी से पहुचा जा सके किन्तु ऐसे क्षेत्र जहॉ नदियो का अभाव रहा है या जलमार्ग से पहुॅचना सम्भव नही था, स्थल–मार्ग में पडने वाले ऐसे स्थल नगरीय केन्द्र के रूप मे विकसित हुए जहॉ से अनेक दिशाओ में अधिक सुकरता से पहुॅचा जा सकता था।

इसके विपरीत ग्राम का सन्निवेश साधारण ढग से होता था। गॉव के बस्ती के भाग में कुटियों घरो का जमघट रहता था। जो एक दूसरे से सटा कर बनाए जाते थे, मिलिन्दपन्हों में कहा गया है कि एक छप्पर में लगी आग सारे गॉव में

---

174 साराव, के० टी० एस०, 'अर्बन सेन्टर एण्ड अर्बनाईजेशन रिक्लेक्टेड इन द पालि विनय एण्ड सुन्त पिटक्स, दिल्ली, 1990, पृ० 19।'
175 घोष, ए द सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इण्डिया (1973) पृ० 49–50।

फैल सकती थी।[176] घरो के बाहर एक दीवार या लट्ठो का बॉडा होता था जिसमे एक तरफ ग्राम–द्वार होता था।[177] ग्रामीण–जनो का मुख्य व्यवसाय मुख्यत कृषि तथा पशुपालन था। कृषि के लिए ग्राम के बाहर कृषको की कृषि–भूमि तथा उनकी व्यक्तिगत भू–पट्टियॉ होती थी, जिनको एक–दूसरे से अलग करने के लिए बीच–बीच मे सिचाई की नालियॉ बनाई जाती थी, जिसका प्रयोग मिल कर किया जाता था।[178] इनमे कुछ कृषको के पास अत्यन्त कम भूमि होती थी[179] जबकि कुछ के पास बहुत ज्यादा भूमि होती थी।[180]

कृषि क्षेत्र के बाद सार्वजनिक 'गोचर' भूमि होती थी।[181] जिसमे गॉव के पशु चरा करते थे। पशुओं की निगरानी के लिए एक पशुपालक रखा जाता था जो रात के समय पशु–यूथो को बाडे मे बन्द कर देता था अथवा गिनती करके उसे उनके स्वामियो के घर पहुचा देता था।[182] यह गोचर भूमि कुछ दिनो बाद बदल दी जाती थी।[183]

जहॉ तक आकार और जनसख्या का प्रश्न है इतना तो निश्चित है कि गॉव प्राय अपेक्षाकृत छोटे और कम जनसख्या वाले होते थे। यहॉ की आवासीय इकाइयॉ छोटी–छोटी झोपडियो तथा मकानो के समूह की बस्ती होती है जिसमे तीस से लेकर पचास लोगो का समुदाय रहता है। किन्तु दूसरी ओर मध्य एव बडे आकार के गॉवो का समूह भी पाये गये है। जिसमें कई सौ से लेकर कई हजार तक लोग बसते थे। अग्नि पुराण[184] में उल्लिखित है कि पॉच घर गृहपति के साथ एक गाव के अन्तर्गत आ सकते है, मेघातिथि ने एक गॉव को बहुत से घरो का समूह बताया है। कौटिल्य[185] के अनुसार एक गॉव में सौ से लेकर पॉच सौ परिवार होने चाहिए। जातकों मे एक गॉव के अन्तर्गत पॉच हजार परिवारो का समूह होना बताया गया

[176] मिलिदपन्हो, पृ० 47।
[177] जातक I–239, II –76, 135, III–9।
[178] जातक I–336, IV–167, V–412, धम्मपद, श्लोक 80, श्लोक 145।
[179] जातक, – I–277, III–162, IV–167।
[180] जातक, III–293, II–165, 300, सुन्तनिपात I–4।
[181] जातक, I–388।
[182] जातक, I–388, III-149।
[183] अगुत्तरनिकाम I–205।
[184] अग्नि पुराण (एसिटिक सोसाटी आफ बंगाल एडीसन) 165, 11।
[185] अर्थशास्त्र, 21।

है।[186] मयमत् एव मानसार जैसे ग्रथो ने आकार के आधार पर गॉवो का निर्धारण किया है इनके अनुसार गॉव पॉच सौ से लेकर बीस हजार 'दण्ड' तक हो सकता है।[187] इस प्रकार हम देखते है कि आबादी और आकार के सम्बन्ध मे विभिन्न ग्रथो मे कोई एक निश्चित मापदण्ड नही है।

जैसा कि के० टी० एस० सराव का विचार है कि नगर और गॉव को विभाजित करने के लिए उनका आकार बहुत सही और अच्छा कारण नही है, यह प्रथम स्तर के नगरों के लिए तो सही हो सकता है किन्तु द्वितीय स्तर के नगरीय केन्द्रो के लिए सही नही है, ये बहुत छोटे आकार के भी हो सकते है।[188] ब्रुशट्रिगर का कथन है कि वास्तव मे नगर की परिभाषा मानविकी विशेषज्ञो एव भूगोल वेत्ताओ को मिलकर देना चाहिए, उनकी मान्यता है कि जनसख्या घनत्व के आधार पर नगरो की जो परिभाषा दी जाती है। वह पूर्णरूपेण मान्य नही है।[189]

अर्थव्यवस्था की दृष्टि से नगरीय एव ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विशेषताओं मे भिन्नता पाई जाती है। ग्रामीण लोग अपनी व्यवसाय सरचना, जीवन–पद्धति, आर्थिक वर्गों की प्रकृति विचारो तथा सासारिक दृष्टिकोण मे नगर के लोगो से भिन्न होते हैं। वस्तुत. ग्रामीण जीवन अत्यन्त सरल एव सादा होता है, यहॉ के लोग प्राय प्राथमिक व्यवसाय ही करते हैं, जिसमे कृषि सबसे महत्वपूर्ण है, साथ ही पशुपालन भी किया जाता है। आर्थिक साधन बहुत कम होने के कारण ग्रामीण जीवन मे आर्थिक असमानता बहुत कम होती है, इनके बीच सामाजिक सम्बन्ध घनिष्ठ होते है। अधिकतर ग्रामवासी अपनी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता ही पूरी कर पाते थे। वे भौतिक जीवन के प्रति उतने आकृष्ट नहीं थे, जितने मर्यादा और आदर्श परायणता के प्रति, इसलिए वे शस्त्रोक्त जीवन मूल्य से आबद्ध थे। वे अपने प्राकृतिक जीवन मे ही आनन्दानुभूति करते थे।

---

[186] कावेल, ई० वी०, द जातकाज, III–281।

[187] द्र0 यादव, बी एन एस 'सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेलफ्थ सेन्चुरी (इलाहाबाद) 1973 पृ० 236।

[188] सराव के० टी० एस०, अर्बन सेन्टर्स एण्ड अर्बनाइजेशन ऐज रीफ्लेक्टड इन द पॉलि विनय एण्ड सुत्तपिटकाज, 1990 (प्रथम सस्करण) दिल्ली, पृ० 19।

[189] ब्रुशट्रिगर, डिटरमिनेन्टस ऑव अरबन ग्रोथ इन प्री इन्डस्ट्रियल सोयसायटी, उदघृत, डॉ० प्रसाद, ओम प्रकाश, डीके एण्ड रीवाइवल ऑव अरबन सेन्टर्स इन मीडिवल साउथ इण्डिया, पृ० 6, प्रथम सस्करण, 1989, जानकी प्रकाशन पटना, पृ० 7।

इसके विपरीत नागरिक समाज मे विविधता और जटिलता अधिक होती है। मूल ग्रामो के विपरीत नगर मे ऐसे लोगो का बाहुल्य होता है जो खेतिहर नही होते तथा वे अपने पडोस के ग्रामीण इलाके से उत्पन्न कृषि अधिशेष पर आश्रित होते है। ग्राम के विपरीत नगरीय अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत व्यापारिक होती है यहाॅ शिल्प एव व्यापार का बाहुल्य होता है। कदाचित् इसीलिए 'मानसार' जैसे ग्रथ नगर को वस्तुओ का क्रय–विक्रय करने वालो से परिपूर्ण[190] तथा कारीगरी का केन्द्र बताया है।[191] मयमत् मे भी इसे क्रय–विक्रय करने वाले वणिको का निवास स्थान कहा गया है।[192] महावस्तु मे राजगृह मे रहने वाले छत्तीस तरह के कामगारों की सूचना दी गयी है।[193] इसी प्रकार मिलिन्दपन्हो मे पचहत्तर व्यवसायो की गणना की गयी है, जिनमे प्राय साठ विविध प्रकार के शिल्प से जुडे हुए थे।[194] नगर मे विविध प्रकार के आर्थिक साधन होने के कारण यहाॅ के लोग एक समान आर्थिक स्थिति मे नही होते, अस्तु नागरिक समाज मे विविधता और जटिलता अधिक होती है। नगरो मे आर्थिक आधार पर व्यक्ति कुछ छोटे–बडे वर्गों मे विभाजित होते है। यहाॅ सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार व्यक्ति की आर्थिक स्थिति होती है। यहाॅ सामाजिक सम्बन्ध औपचारिक होते है।

किन्तु, चाहे नगर हो अथवा ग्राम सबका जीवन स्तर एक समान नही होता, सामाजिक असमानता नगर तथा ग्राम दोनो मे पाई जाती है ग्राम मे रहने वाले भी कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी होती है, वे गाॅव मे रहकर भी नगरीय सुविधा का उपयोग कर सकते है। ठीक इसी प्रकार नगरो मे भी कुछ लोग निम्न आर्थिक स्थिति मे हो सकते हैं, जिनका जीवनस्तर ग्राफ बहुत ऊॅचा नही होता। अतः नगरो की कुछ विशेषताएॅ ग्राम में तथा ग्राम की कुछ विशेषताएॅ नगर मे प्राप्त हो सकती है।

जहाॅ तक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का प्रश्न है यह केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ही प्रतीक नही है क्योंकि नगरीय क्षेत्रों मे रहने वाले भी कुछ ऐसे

---

[190] जनै परिवृत क्रयविक्रयकादिभि· –मानसार, अध्याय–9।
[191] कर्म्मकारै समन्वितम्– वही, अध्याय–9।
[192] क्रयविक्रयैर्युक्तम्–मयमत, अध्याय–10।
[193] महावस्तु, 3 पृ० 442–43।

लोग थे जो अपनी आर्थिक अधिशेष कृषि से प्राप्त करते थे। पालि साहित्य मे श्रेष्ठी और 'गहपति' का उल्लेख मिलता है, जो गॉव के भू-धारक थे और कर इकट्ठा करने के लिए गॉव जाते थे, जबकि रहते थे नगर मे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे जो दूर्गीकृत नगर का उल्लेख किया है उसमे राजा के लिए यह विधान किया गया है कि 'कुटुम्बिको' के लिए बागीचा और उनके धन को इकट्ठा करने हेतु जगह की व्यवस्था की जाय।[195] प्रशासनिक अधिकारियो को भी जमीन दी जाती थी, किन्तु सभी उस गॉव मे नही रहते थे, जहॉ उन्हे जमीन दी गयी थी।[196] ठीक इसी प्रकार गॉव मे भी व्यापारिक लगाव जीवन का एक पहलू था। उस समय जब व्यापार अपने स्फीतिक दौर से गुजर रहा था, व्यापारिक वर्ग भी ग्रामीण जनसख्या के एक अंग माने जाते थे। शुद्र, कृषक, ब्राह्मण, व्यापारी और शिल्पी ग्रामीणों के चित्र में स्पष्ट दिखाई देते है।।[197]

यह ठीक है कि व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र मे नगरीय केन्द्र, ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा महत्वपूर्ण है लेकिन जहा तक उद्योग का सम्बन्ध है इसके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। यदि कपडे के उद्योग को हम देखे (जो प्राचीन) भारत मे एक महत्वपूर्ण उद्योग था, तो यह अभिज्ञात होता है कि यह पूर्णतः अनुवाशिक बुनकरो पर निर्भर था, जो नगरो की अपेक्षा ग्रामो मे रहते थे। इस प्रकार यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे इनकी भूमिका को देखा जाय तो नगरों के साथ ही गॉवो की भी स्थिति महत्वपूर्ण बन बैठती है। ऐसे बहुत से गॉव थे जहॉ लकडी के काम करने वाले, बर्तन बनाने वाले, धातुकर्मी तथा बुनकर इत्यादि रहते थे।[198] कभी-कभी विशेष शिल्पों मे लगे हुए लोगो के अलग गॉव बस जाते थे, यथा कुम्भकार-ग्राम[199], वड्ढकि-ग्राम[200] या कम्भार-ग्राम[201]। ये सारे जनपद को उस्तरे, हल, फावडे, चाबुक, खुई आदि आवश्यक वस्तुएं तैयार करके देते थे। अधिकाश गॉवों में बढई,

---

194 मिलिन्दपन्हो, पृ० 331।
195 अर्थशास्त्र, 2 4 पृ० 24-28।
196 भट्टाचार्या, एस 'लैण्ड सिस्टम एज रिफ्लेक्टेड इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र 'द इण्डियन इकोनामिक एण्ड शोसल हिस्ट्री रिव्यू, भाग 16' न० 1 (1979) पृ० 87।
197 यादव वी एन. एस पूर्वोक्त, पृ० 236-237।
198 मनुस्मृति VIII, पृ० 219।
199 जातक III /376।
200 जातक II / 18, 405 ,IV / 159, 207।
201 जातक III / 281।

लौहकार, बर्तन बनाने वाले, नाई तथा धोबी रहते थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए ये पॉच कलाकार कहे जा सकते है, जो ग्रामीण जीवन की एक सामान्य विशेषता है।[202] यदि समग्र रूप से देखा जाय तो प्रारम्भिक भारत मे उद्योगो का सान्द्रण सिर्फ नगरो मे ही केन्द्रित नही था, अत हमे ऐसा लगता है कि उद्योगो के सान्द्रण के आधार पर प्राचीन भारत के गॉव और नगर के बीच के विभिन्नता को स्पष्ट नही किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि गॉव और नगर के बीच की विभाजक रेखा बहुत स्पष्ट नही है। इस तथ्य को प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'गालपिन (Galpin) ने अपनी पुस्तक 'रूरल लाइफ' (1918) मे किया है इनके अनुसार ग्राम और नगर मे भेद सुविधा की दृष्टि से ही किया जाता है, वास्तव मे ग्रामीण अवस्था का विकसित रूप ही नगरीय है। यही कारण है कि हमे अनेक क्षेत्रो मे ऐसे स्थान देखने को मिलते है जहॉ ग्राम और नगर दोनो की विशेषताऍ निश्चित रूप से परिलक्षित होती है। सामाजिक क्रिया की दृष्टि से गॉव और नगर में भिन्नता दर्शायी जाती है, किन्तु ग्रामवासी और नगरवासी सदैव परस्पर अन्त. क्रिया करते रहते है फलस्वरूप गॉव मे नगरीकरण की विशेषताऍ और नगरो मे ग्राम्यीकरण की विशेषताऍ विकसित हो जाती है।

वास्तव मे ग्रामीण और नगरीय जीवन मानवीय सभ्यता से सम्बन्धित दो रूप है और एक दूसरे के पूरक भी। ग्रामवासियो को अन्य उपयोगी वस्तुओ के लिए नगर समुदाय पर निर्भर रहना पडता है और इसी प्रकार नगर समुदाय को कच्चे माल, अनाज आदि के लिए ग्रामो पर आश्रित रहना पडता है। इसलिए दोनो में भेद दोनो के सामान्य विशेषताओ को व्यक्त करता है, लेकिन ऐसा नहीं है कि ये एक–दूसरे के पूर्णत पृथक है। ये दोनो ही रूप, ग्राम व नगर एक–दूसरे से अन्त. सम्बन्धित रहते हुए सदियों से मानवीय सभ्यता की आवश्यकताओं को सम्मिलित रूप से पूर्ति करते आएं हैं।

---

[202] यादव, वी. एन एस पूर्वोक्त, पृ० 267।

अत हम यहॉ यह निष्कर्षित रूप से कह सकते है कि गॉव और नगर के बीच की विभाजक रेखा को सिर्फ भौतिक चिन्हो द्वारा स्पष्ट नही किया जा सकता, बल्कि इसके अलावा कुछ चीजे ऐसी भी है जो स्थाई और जीवित है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि नगर और गॉव को विभाजित करने वाले जो भौतिक चिन्ह है बहुत ही अस्पष्ट है। इस आलोक मे पातजलि का यह निष्कर्ष कि गॉव और नगर मे बहुत अधिक भिन्नता नही है[203], उचित प्रतीत होता है। यह 'सस्कृति' एव लोकाचार है, जो गॉव और नगर मे और कारको की अपेक्षा भिन्नता को अधिक स्पष्ट करता है।

ग्रामीणो एव नागरिको के बीच स्वभाव एव व्यवहार के आधार पर अन्तर किया जा सकता है। नगर मे रहने वाले स्वभावत चतुर और सुसस्कृत माने जाते थे। इनके वार्तालाप का ढंग तथा व्यवहार ग्रामवासियो से अधिक शिष्ट तथा अवसर के अनुकूल होता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम्' मे कालिदास ने 'नागरिकवृत्ति' का उल्लेख किया है राजा नाटक के पचम अक मे विदूषक से कहता है कि हे सखे। तुम हस पादिका (जो मुझसे रुष्ट है) को 'नागरिकवृत्ति' के द्वारा प्रसन्न करो।[204] यहॉ पर 'नागरिक वृत्ति' का अर्थ नगर मे रहने वालो के विदग्ध व्यवहार तथा उनकी वाक्पटुता से है।

हाल की गाथाशप्तशती से भी जिसमे नगर के सभी व्याघातो को अभिभूत करके ग्रामीण तत्वो को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है। एक स्थल पर लाक्षणिक रूप से नगर की अपेक्षा ग्रामीण मूल भावना को व्यक्त करते हुए एक स्थल पर एक स्त्री कहती है – ''गवार हूँ, गॉव मे रहती हूँ, नगर की रीति नही जानती, अब जो हूँ सो हूँ, पर नगरवालियो के पतियो का मन हर लेती हूँ, इतना जानती हूँ।[205] यहॉ नगर की रीति का अर्थ नगर मे रहने वाले के व्यवहार एवं उनके वाक्पटुता से है, जिसकी अपेक्षा गॉव मे रहने के कारण अपने को यहॉ उक्त व्यवहार से रहित 'गवार' कहा गया है।

---

203 महाभाष्य IV 2 109।

204 सखे। गच्छ, नागरिक वृत्या सज्ञापय एनाम्– कालिदास ग्रन्थावली (स० रेवा प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, 1976, अभिज्ञानशाकुन्तम्, अक 5, पृ० 496)।

205 गामारुहम्हि, गामे वसमि, णअरट्ठिईण अणामि। णाअरिआण पइणो परेमि, जा होमि सा होमि।।– गाथासप्तशती–।

इस अर्थ मे कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् से ग्राम तथा नगर के भेद के सन्दर्भ मे एक बडा महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त होता है। इस ग्रथ के प्रथम अक मे अभिनय के दो आचार्यों, हरदत्त और गणदास एक दूसरे को हराने की ठान राज दरबार मे आते है और वे सम्राट से कहते है कि हम दोनो के काल ज्ञान की परीक्षा आप स्वय करने का कष्ट करे। इसी समय महारानी धरिणी परिव्रजिका कैशिकी के साथ वहॉ उपस्थित होती है सम्राट परिव्रजिका का अभिवादन करते हुए उन्हे बैठाते है और उनसे निवेदन करते है कि इन दोनो आचार्यों मे कौन अधिक योग्य है, इसका निर्णय आप ही कर दे। इसं पर परिव्रजिका कहती है– ठिठोली मत कीजिए महाराज! भला नगर के होते हुए भी रत्न की परख कही गॉव मे की जाती है।[206] इस सन्दर्भ मे स्पष्ट है कि कला, ज्ञान, विदग्ध व्यवहार, वाक्पटुता की दृष्टि से नगर का महत्व गॉव से अधिक हुआ करता था।

निष्कर्ष :

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखो से यह निष्कर्षित है कि जब हम भौतिक आधार पर ग्राम तथा नगर के मध्य विभाजक रेखा को देखने का प्रयास करते है तो निश्चय ही यह रेखा अस्पष्ट एव धुधली प्रतीत होती है, किन्तु जहॉ तक उनके निवासियों के स्वभाव, सस्कार,, सामाजिक मूल्यो और आदर्शों की प्रतिष्ठा, शिष्टाचार एव विदग्ध व्यवहार का सम्बन्ध है, निश्चय ही ग्राम तथा नगरो के मध्य एक गुणात्मक अन्तर दिखाई देता है और यही अन्तर ग्राम एवं नगर को एक दूसरे से अलग करता हुआ प्रतीत होता है।

इस प्रकार जब हम नगरो के लक्षण तथा नगर एव ग्राम की विभाजक, रेखा पर विचार करते है, तो यह स्पष्ट होता है कि जहॉ तक प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगरीकरण तथा नगर–जीवन के साक्ष्यो का अध्ययन करने की दृष्टि से निर्धारित होने वाले विभिन्न लक्षणो का सम्बन्ध है, इनमे विभिन्न विद्वानों द्वारा सुझाए

[206] राजा–भगवती। अत भवतोर्हरदत्त गणदासयो परस्पर विज्ञान सघषिणोर्भगवत्या प्राश्निकपद मध्यासितव्यम्। परिवजिका– (सस्मितम्) अलमुपालम्भेन। फ्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा। कालिदास ग्रथावली, वही, मालविकाग्निमित्रम, अंक–1, पृ० 267।

गये लक्षणो की अपेक्षा प्राचीन भारतीय साहित्य मे सन्दर्भित विभिन्न मानदण्ड ही पर्याप्त रूप से सहायक होते है। नगरो के आकार, आन्तरिक–निर्माण तथा उनकी सुरक्षा हेतु सुझाये गए विभिन्न अवयव, यथा परीखा, प्राकार, नगर–द्वार, द्वारकोष्ठक, बुर्ज, इन्द्रकोश इत्यादि का उल्लेख महत्वपूर्ण है, जिसका रूपाकन प्रारम्भिक बौद्ध कला के अन्त साक्ष्यो मे प्रचुरता से उपलब्ध है।

OOO

अध्याय दो
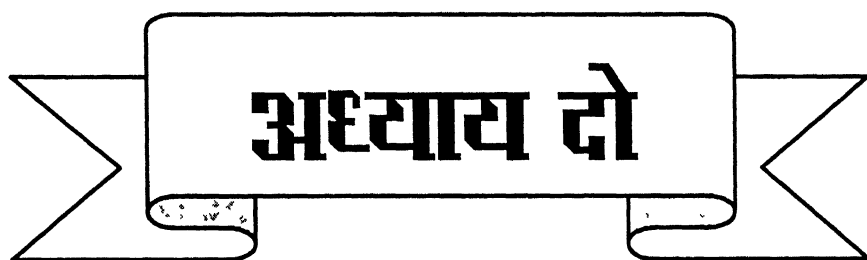
प्राचीन भारत में नगरीय जीवन का प्रारम्भ एवं नगरीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारकों का सर्वेक्षण

जब हम प्राचीन भारत मे नगर तथा नगरीय जीवन की सरचना पर विचार प्रारम्भ करते है, तो जो प्रमाण उपलब्ध है, उनके आधार पर यह आश्चर्यजनक उपलब्धि होती है कि प्राचीन भारतीय सस्कृति की पहली रेखा नगरीय सभ्यता से प्रारम्भ हुई थी। हाल ही मे गुजरात तट से 30 किमी0 की दूरी पर खम्भात की खाडी मे समुद्र तल से 40 मी0 नीचे दबे नगर–सभ्यता की खोज ने इस तथ्य को और पुष्ट किया है।[1]

चेन्नई के राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी सस्थान (एन०आइ०ओ०टी०) के समुद्र विज्ञानियो ने समुद्र के गहरे जल मे अन्तर्निहित एक प्राचीन नदी के किनारे नौ किमी० के दायरे मे फैले नगरीय सभ्यता के पुरावशेषो को खोज निकाला है। इनमे नदी के किनारे बॉध, तरण–ताल, अन्नभण्डार जैसा ढांचा, घरो के अवशेष, नालियॉ तथा मिट्टी की सडके उल्लेखनीय है। यहॉ से प्राप्त विभिन्न शिल्पाकृतियो मे पत्थर के तराशे औजार, गहने, मिट्टी के टूटे–फूटे बर्तन, जवाहरात, हाथी दॉत और मनुष्य के जबडे तथा दॉत के पुरावशेष शामिल है,[2] जो समुन्नत नगरीय सभ्यता के संकेतक साक्ष्य माने जा सकते हैं।

यहॉ से प्राप्त एक लकडी के टुकडे का काल निर्धारण इस सभ्यता को 5500 ई०पू० से 7500 ई०पू० तक ले जाती है।[3] यदि ये काल गणनाएं सही है तो यह नगरीय सभ्यता न सिर्फ भारत की अपितु विश्व की भी सबसे प्राचीनतम् नगरीय सभ्यता होने का हकदार बन बैठती है।[4]

---

1 इडिया टुडे, (प्र०एव स०) प्रभु चावला, वर्ष 16, अक 16, 7–13 फरवरी, 2002 पृ० 17–22।

2 इडिया टुडे, पूर्वोक्त, पृ० 18।

3 इडिया टुडे, पूर्वोक्त, पृ० 18।

4 किन्तु इसकी तिथि के सम्बन्ध मे अमेरिका के पेसिल्वेनिया वि०वि० के पुरातत्वविद् ग्रेगरी पॉसेल कहते है – "यह यकीन करने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि जीवाश्म बने लकड़ी के टुकड़ो का जो ई०पू० 7,500 वर्ष पुराने माने गए हैं, समुद्रतल के अवशेषों से कोई सम्बन्ध है। इस क्षेत्र मे समुद्र की लहरो की गति को देखते यह सम्भव है कि ये कहीं से वह कर आए हो।" – इडिया टुडे, पूर्वोक्त, पृ०–21।

सिन्धु की उपत्यका से समुत्तरित विभिन्न पुरावशेष इस बात के सक्षम साक्षी है कि तत्कालीन समय मे भी नगर तथा नगर–जीवन का विकास त्वरित गति से हुआ था। तत्कालीन नगरो मे निवास करने वाले नागरिक भी अत्यधिक सुख–सुविधा से जीवन यापन कर रहे थे। वस्तुत सिन्धु–घाटी की सभ्यता नगरीय जीवन की सभ्यता थी, जिसमे न सिर्फ सुनियोजित और सुव्यवस्थित नगरो का निर्माण किया गया था अपितु जीवन के भौतिक सुख, यथा–शक्य उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया था।

किन्तु नगरीय जीवन की यह धारा अविच्छिन्न नही रह पाती। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे अनार्यों के प्रवेश के साथ ही सघर्ष का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ, जिसमे अन्ततोगत्वा यायावरी[5] (?) आर्यों की विजय हुई, सैन्धव नागरिकता आर्यों की ग्रामीणता मे विलुप्त हो गयी, जिसका एक बार पुन उदय मध्य गगा–घाटी मे छठी–पॉचवी शताब्दी ई०पू० मे हुआ, भारतीय इतिहास मे यह द्वितीय नगरीय क्रान्ति के नाम से जानी गयी।

यद्यपि आर्य आक्रमण के फलस्वरूप सैन्धव नगरो के विनाश को मान लेने का हमे कोई एक सक्षम अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नही होता। इस सम्बन्ध में ऋग्देव मे उल्लिखित कुछ मन्त्रो एव दृष्टांतो तथा हडप्पा तथा मोहनजोदडो से प्राप्त कुछ नर–ककालो को विमर्श का विषय बनाया गया है।

जैसा कि सिन्धु जैसी समृद्ध और उत्कर्षित सस्कृति के लिए कहा गया है कि इसका विनाश सम्भवत. आर्यों के तूफानी आक्रमण से हुआ। इस सम्बन्ध मे जान मार्शल[6] तथा जे०एच०मैकाय[7] आदि ने हडप्पा और मोहनजोदडो में अस्वाभाविक परिस्थितियों मे हुई कुछ मौतो का उल्लेख किया है और इन मौतो को एक सूत्र मे

5 'आर्य यायावरी थे' इस सम्बन्ध भगवान सिह ने पाणिनी एव प्राचीन भारतीय साहित्यिक साक्ष्यो के आधार पर इस मत को खण्डित करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार अपने नये रूप मे आर्य यायावर, पुशपालक, खेती से नाममात्र के परिचित न रह कर उन्नत आर्थिक तन्त्र से जुड़े हुए व्यक्ति सिद्ध होते हैं। –सिह, भगवान, हड़प्पा सम्भ्यता और वैदिक साहित्य, (तृतीय सस्करण) दिल्ली 1997, पृ० 36।

6 मार्शल, जे०, मोहनजोदड़ो एण्ड इण्डस वैली सिविलाइजेशन 1931, लन्दन, भाग–1 पृ० 624 ।

7 मैकाय, जे०एच०, अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन (स०) डी० मैकाय, 1948 लन्दन, पृ० 94।

जोडते हुए मार्टीमर ह्वीलर ने इसे एक हत्याकाण्ड के रूप मे देखा और इसके पीछे आर्य आक्रमण का हाथ माना था।[8]

आर्य आक्रमण के परिणाम स्वरूप सैन्धव नागरिकता के विघटन के क्रम मे आर्यों के देव इन्द्र को जिन्हे ऋग्वेद मे पुरन्दर (पुरविनाशक) कहा गया है[9], को विमर्श का विषय बनाया गया है, जो आर्यों की अवधारणा के अनुसार वे दुर्गों के सहार की विलक्षण प्रतिभा से युक्त थे । ऋग्वेद मे उन अयसी[10] (धातु निर्मित) अश्ममयी[11] (पत्थर का) लम्बे चौडे विस्तृत अनेक पुरो और दुर्गों का उल्लेख प्राप्त होता है।[12] ऐसे ही शतभुजी[13] (सौ खम्भो वाले) और शरदी[14] दुर्गों का उल्लेख है, अन्यत्र इन्द्र को पुरन्दर तथा कृष्ण–योनि दासों की सेना का नाश करने वाला[15] एव पचास सहस्र कृष्ण वर्ण दासो को युद्ध–भूमि मे मारने का और पुरो के नाश का उल्लेख हुआ है।[16]

एक जगह वगृद नामक अनार्य राजा के सौ पुरो का ऋजिश्वा के द्वारा भेदन करने का वर्णन आया है।[17] अनेक मन्त्रो मे पर्वत–निवासी दासो के सेनापति शबर के दुर्गों को ध्वश करने का उल्लेख है, जिनकी सख्या नब्बे[18], निन्यानबे[19] और सौ[20] कही गई है। इसी सहिता मे एक स्थान पर इन्द्र और अग्नि से दासो के नगरो को प्रकम्पित करने की प्रार्थना की गई है, क्योकि आर्यों की अवधारणा के अनुसार ये नगरों को नष्ट करने मे समर्थ है।[21] इसी सहिता मे अन्यत्र भी दास–नगरो का उल्लेख हुआ है।[22] इन पुरो अथवा दुर्गों के सम्बन्ध मे ह्वीलर का विचार है कि ये सिन्धु सभ्यता के नगर है जिनका भेदन इन्द्र ने किया था। इनके अनुसार "परिस्थितियॉ इस बात की गवाह हैं कि इस हत्याकाण्ड का दोष इन्द्र पर

---

8 ह्वीलर, मर्टीमर, सिविलाइजेन आफ द इण्डस वैली एण्ड वियाण्ड, 1953, लन्दन, पृ० 90–92।
9 ऋग्वेद, ५–1033 ।
10 वही, II–588 ।
11 वही, IV–3020 ।
12 वही, I–413 ।
13 वही, I–168 ।
14 वही, VII–1514 ।
15 वही, XX–67 ।
16 वही, IV–163 ।
17 वही, I–438 ।
18 वही, I- 1307 ।
19 वही, II–196 ।
20 वही, II–146 ।
21 वही, IV–3210 ।

आता है। क्योंकि इसे अमान्य कर दिया जाय तो हम हडप्पा को छोडकर वे किले वगैरह कहॉ से लायेगे जिन्हे इन्द्र ने ध्वस्त किया था।[23]

ऋग्वेद मे उल्लिखित दुर्गों के विनाश के सम्बन्ध मे पीगट का विचार है कि इन्द्र के ऋग्वेद मे वर्णित गुण सिन्धु उपत्यका मे उपस्थित दुर्गों के सहार की ओर सकेत करते है। उनके निवासियो के साथ आर्यों का गहरा सघर्ष हुआ होगा तथा इन दुर्गों को जीतने मे उन्हे जटिलताओ का अनुभव हुआ होगा, अतएव ऋग्वेद मे उल्लिखित दुर्ग–विनाश से वास्तविक तात्पर्य हडप्पा एव मोहनजोदडो के विनाश से लगता है।[24] इन्द्र द्वारा दुर्गों को आग से जलाने का उल्लेख भी ऋग्वेद मे बहुश: प्राप्त है, सम्भव है कि आर्यों ने इन केन्द्रो के किलो को जलाने का प्रयास किया हो।[25]

यहॉ यह प्रश्न गम्भीरता के साथ विचारणीय हो जाता है कि क्या वास्तव मे ऋग्वेद मे वर्णित पुर–विनाश के प्रसग के तार सैन्धव नगरो से ही जुडे हुए थे? क्या सैन्धव नगर एव उत्तर वैदिक नगर दो भिन्न जातियो (आर्य–अनार्य) द्वारा विकसित किये गये नगर थे, जो एक–दूसरे द्वारा विकसित सभ्यता के मानकों एव उपकरणो को अपनाने के लिए तैयार न थे? क्यो आर्यों ने समुन्नत सैधव नगरीय सभ्यता को अपनाने की अपेक्षा यायावरी एव ग्रामीण सभ्यता को अपनाया? सैन्धव उपत्यका मे स्थित विभिन्न नगरो की विशालता को देखकर उसमे निवास करने वाली एक विशाल जनसख्या का अनुमान होता है, तो क्या अपने विजय क्रम में आर्यों ने सम्पूर्ण जनसंख्या का बध कर डाला था, और लगभग एक सहस्राब्दी के काल सम्पुट मे पुष्पित–पल्लवित एव विस्तृत भू–क्षेत्र में प्रसरित समुन्नत एव समृद्ध सभ्यता का विनाश कर डाला था?

वस्तुतः आर्य जाति की परिकल्पना के पीछे यह तथ्य रहा है कि ऋग्वेद मे आर्यों और दासों का उल्लेख बार–बार आता है और इन उल्लेखो से यह प्रकट होता है कि इनके बीच सम्बन्ध तनावपूर्ण थे। इसी आधार पर 'आर्य–आक्रमण' को

---

22 वही, I–103 3 ।
23 ह्वीलर, मर्टीमर, पूर्वोक्त, पृ० 90।
24 पिगट, एस०, प्री हिस्टारिक इण्डिया, 1950 लन्दन, पृ० 263 ।
25 वही, पृ० 263 ।

प्रमाणित करने के लिए उतावले विद्वानो ने आर्यों को आक्रमणकारी कबीला और दासो को स्थानीय मूल निवासियो के रूप मे पेश करना आरभ कर दिया।[26]

इस सम्भावना की असम्भाव्यता पर मत व्यक्त करते हुए प्रो० उदयनरायण राय का मत है कि जहॉ तक हडप्पा कालीन नगरो पर 'आर्य–जाति' के आक्रमण सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रश्न है, यह काल्पनिक होने के अतिरिक्त राजनीति से प्रेरित भी है।[27] सर विलियम जोन्स एव मैक्समूलर जैसे विद्वानो ने तुलनात्मक भाषा–विषयक कल्पना के आधार पर इण्डो आर्य (आर्य) जाति की कल्पना की, जो धीरे–धीरे समतावादी भाषा विज्ञान के प्रति सम्मान रखने वाले विद्वानो द्वारा समर्थित किया गया, परिणाम स्वरूप 'आर्य' शब्द ने जाति बोधक रूप धारण कर लिया, जिसका प्रयोग इस अर्थ मे रूढ हो चला।

मैक्समूलर ने बहुत पहले ही इस बात की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया था कि 'आर्य' को जाति के अर्थ मे लेना सर्वथा दोषपूर्ण है।[28] जैसा कि प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय का विचार है कि 'आर्य' शब्द का प्रयोग भाषा और सस्कृति के ही सम्बन्ध में सार्थकता रखता है। भारत मे आर्य भाषाओ का प्रसार यह नही सिद्ध करता है कि प्राचीन काल मे आधुनिक यूरोपियो की तरह भारत मे एक गोरी प्रजाति बाहर से आयी थी, जिसने यहॉ के मूल निवासियो पर जबर्दस्ती अपनी भाषा, धर्म और सत्ता आरोपित की इस प्रकार की कल्पना अमरीका और अफ्रीका में पाश्चात्य जातियो के इतिहास के प्रतिमानो पर पर्याप्त प्रमाणो के बिना ही प्रचलित हो गयी है। उत्तरी अमेरिका मे मूल प्रजातियो का विजेताओ ने सहार कर दिया, 'अफ्रीका' से दासों के रूप मे वहॉ लायी गई काली प्रजातियो के लोगो के प्रति गोरों का भेदभाव सुप्रकट है। यही स्थिति आस्ट्रेलिया मे और रंगभेद की व्यवस्था दक्षिणी अफ्रीका मे हुई है। मध्य और दक्षिण अमरीका में व्यापक प्रजातीय सस्कार के साथ–साथ विजेताओ का धर्म, भाषा और संस्कृति सम्पूर्णतया आरोपित की गयी है। इन्हीं विजय

---

26 सिह, भगवान, पूर्वोक्त, पृ० 34–35 ।
27 राय, उदयनरायण, 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर–जीवन (द्वि०स० एव परिवद्धित स०), इलाहाबाद, 1998, पृ० 22 ।
28 बायोग्राफिक्स आफ वर्ड्स एण्ड द होम आव द आर्यन्स, 1988 लन्दन, पृ० 120।

के प्रकारो को मन मे रखकर भारतीय आर्य–अनार्य इतिहास की कल्पना की गयी है।[29]

इस सम्बन्ध मे प्रो० उदयनारायण राय का विचार है कि जाति बोधक अर्थ मे 'आर्य' शब्द का प्रयोग यूरोपीय विद्वानो की कोरी कल्पना है, जो कि उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण मे प्रचलित की गई। इसके पूर्व यह शब्द वस्तुत सस्कृति–बोधक था। यह एक सम्मान सूचक शब्द है, जिसका पारपरिक प्रयोग प्राचीन ग्रथो मे आदरणीय, सम्माननीय, कुलीन, नियम एव धर्म के प्रति निष्ठावान, गुणवान, चरित्रवान तथा सम्बोधन की आदरणीय पद्धति के अर्थ मे होता रहा है। सस्कृत नाटको मे नट–नटी सम्बाद मे 'आर्य' एव 'आर्यपुत्र' सदृश्य सबोधन श्रेष्ठ जनो के प्रति प्रयुक्त है, इस आलोक मे सिद्ध होता है कि जाति–बोधक रूप मे आर्य शब्द का प्रयोग एक मिथक है, न कि वास्तविकता।[30] जैसा कि प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ने उल्लेख किया है कि 'आर्य' का मौलिक या नैरूक्तिक अर्थ जो रहा हो उसका रूढ अर्थ समाज मे ऊॅची स्थिति और प्रतिष्ठा दिखाता है, वह किसी जनसमुदाय का नाम प्रजातीय या जनजातीय, नही प्रतीत होता।[31]

इस विषय पर विस्तारपूर्वक विवेचन करने के पश्चात् अविनाश चन्द्र दास ने निष्कर्ष निकाला है कि जहॉ आर्य शब्द का प्रयोग स्थायी रूप से बस गये, कृषि कार्य में प्रवृत्त तथा यज्ञादि कृत्यो को करने वाले सुसस्कृत लोगो के लिए प्रयुक्त हुआ है, वही 'दस्यु' तथा 'दास' से वे वैदिक आर्य जन अभिप्रेरित है, जो असभ्य स्थिति में थे, लूट–पाट करते और आर्य–जनो के धार्मिक कृत्यो को नहीं करते थे। उनके कालेपन का उपमान काले मेघो के रग से ग्रहण किया गया है, जिनका भेदन इन्द्र के वृत्त के साथ हुए संग्राम मे किया गया था, 'कालापन' उनके दुष्ट प्रवृत्ति का परिचायक है। रूप में वे आर्य–जनो से भिन्न नहीं थे, अन्यथा ऋग्वेद[32] के मन्त्राकार ने आर्यों और यज्ञ विरोधी दस्यु में पहचान करने की बात क्यों करता?[33]

---

29 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, वैदिक सस्कृति, प्रथम सस्करण इलाहाबाद, 2001, पृ० 13–14 ।
30 राय, उदयनरायण, पूर्वोक्त, पृ० 22।
31 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ० 20।
32 ऋग्वेद, I – 518।
33 दास, अविनाश चन्द्र, ऋग्वैदि इण्डिया, अध्याय 7 पृ० 123–124 ।

ऋग्वेद मे आर्य और दास अथवा दस्यु के बीच सघर्ष ही नही अपितु आर्यों के जनजातीय समाज मे भी आन्तरिक द्वन्द्व के साक्ष्य मौजूद है। एक युद्ध–गीत में 'मन्यु' मूर्तिमान क्रोध से याचना की गयी है कि वे आर्य और दास दोनो तरह के शत्रुओ को पराजित करने मे सहायक हो।[33A] एक स्थल पर कहा गया है कि इन्द्र और वरुण ने सुदास के विरोधी दासो ओर आर्यों का सहार कर उसकी रक्षा की।[34] सज्जन और धर्मपरायण लोगो की ओर से दो मुख्य ऋग्वैदिक देवताओ, अग्नि और इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वे आर्यों और दासो के दुष्टतापूर्ण कार्यों और अत्याचारो का शमन करे।[35] चूँकि आर्य यहॉ खुद मानव जाति के दुश्मन थे, अत आश्चर्य नही कि इन्द्र ने दासो के साथ–साथ आर्यों का भी विनाश किया हो।[36] कहा जाता है कि अग्नि ने अपनी प्रजा की भलाई के लिए समतल भूमि और पहाडियो मे स्थित सपत्ति को अपने कब्जे मे कर लिया और अपनी प्रजा के दास और आर्य शत्रुओ को हराया।[37] इन अशो मे यह बताया गया है कि जो आर्य दुश्मन समझे जाते थे, उनकी भी सपत्ति छीन ली जाती थी और उन्हे आर्येत्तर लोगो की भॉति कगाल बना दिया जाता था। ऋग्वैदिक आर्यों मे बहुत पहले ही आन्तरिक सघर्ष की महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है, जिसका महत्वपूर्ण प्रमाण 'दशराज युद्ध' है, जो ऋग्वेद की एक मात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। यह युद्ध मुख्यत ऋग्वैदिक आर्यों की दो मुख्य शाखाओ पुरुओ और भरतों के मध्य लडा गया था।[38]

इस प्रकार ऋग्वेद के आन्तरिक साक्ष्य का पर्यावलोकन विभिन्न सघर्षों की सूचना तो देते है किन्तु इन सघर्षो को सैन्धव नगरो के पतन के कारण के रूप मे नही माना जाना चाहिए। आर्यों का टकराव जिन कबीलों से था, वे सभ्य थे ही नही, वे आचार, विचार, उत्पादन, नैतिक–मापदण्ड सभी दृष्टियों से वैदिक जनो से पिछडे दिखाये गये है और ऐसे लोग हडप्पा सभ्यता के नागरिक तो हो ही नही सकते।[39] वैदिक जनो के शत्रु सभ्यता मे उनसे आगे बढे हुए थे, यह भ्रम पुर शब्द की गलत व्याख्या और इसके साथ ही इस भ्रान्ति पर टिका हुआ है कि स्वयं वैदिक

[33A] ऋग्वेद, X 8 3 (साह्याम दासमार्य त्वयायुजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता')।
[34] वही, VII – 83 1 (दासाच वृत्रा हतमार्याणि च सुदासम् इन्द्रावरूव सावत्)
[35] वहीं, VI– 60 8।
[36] वही VI– 33 3 तथा X –102 3 ।
[37] वही, X-69 6 ।
[38] वही VII –33 2–5, तथा 7 18।

आर्य पुरो से अपरिचित थे या यदि पुरो से उनका कोई सम्बन्ध था तो इसके ध्वसक के रूप मे ही। यदि ह्वीलर ने पुरदर इन्द्र को दिवोदास के लिए शबर की पुरियो या दुर्गों का ध्वसक मान भी लिया, तो उन्हे इस बात का ध्यान तो रखना ही चाहिए था कि स्वय दिवोदास की स्थिति हडप्पा और मोहनजोदडो की सापेक्षता में क्या है? वह सरस्वती तट का निवासी है और इससे पहले से उसके पूर्वज सरस्वती तट पर विराजमान है। इस दृष्टि से यदि इसे नगरो या दुर्गों पर हमला माना भी जाय तो कम से कम यह हमला भारत मे ही बसे दो प्रतिस्पर्धियो मे से एक के द्वारा दूसरे पर माना जाना चाहिए।[40]

मोहनजोदडो से प्राप्त कुछ नरककाल जिनकी मृत्यु का कारण वाह्य आक्रमण माना जाता है, भी इसे प्रमाणित करने के सक्षम साक्ष्य नही जान पडते। के०आर० केनेडी ने उन नरककालो का बडी गहराई के साथ अध्ययन किया है और इनका मत है कि इनमे से किसी पर भी चोट के लक्षण नही है।[41] प्रो० जी०एफ० डेल्स का मत है कि मोहनजोदडो से प्राप्त नरककाल कोई एक काल के न होकर विभिन्न कालो के है, और सिन्धु नदी मे अलग–अलग समयो के बाद आने के कारण इस नगर का विनाश हुआ, परिणाम स्वरूप ये अस्थि–पजर पृथक स्तरो से प्राप्त होते है।[42]

इस प्रकार सैन्धव नगरों के विनाश के अन्य कारणो को खोजा जाना चाहिए। इसका कारण दैवी आपदा के रूप मे खोजा जाना उचित प्रतीत होता है, जिसने तत्कालीन नगरो तथा नगर जीवन के विभिन्न उपकरणो को विनष्ट कर डाला होगा, किन्तु तकनीकी ज्ञान से लैस नागरिक प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी जीवित रहने के लिए बाध्य हुए होगे। और ज्यो ही अनुकूल आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियॉ सम्भव हुई होगी तथाकथित दूसरी नगरीय क्रान्ति के सुसुप्त बीज प्रस्फुटित हो गये होंगे। कदाचित् इसीलिए सैन्धव नगरो एव उत्तर–वैदिक नगरों के अभियान्त्रिक ज्ञान मे हमें कोई मूलभूत अन्तर दिखाई नहीं देता। यह ठीक है कि

---

[39] सिह, भगवान, पूर्वोक्त, पृ० 50।
[40] वही, पृ० 50–51 ।
[41] हड़प्पन सिविलाइजेशन, कनेडी, के०आर० 'स्कल्स, अर्यन्स एण्ड फ्लोइग ड्रेन्स, ग्रिगोरी पोसेल्स द्वारा सपादित, पृ० 289–90।
[42] हड़प्पन सिविलाइजेशन, ग्रिगोरी आर० पोसेल्स द्वारा सपादित पृ० 97–107, डेल्स का 'मोहनजोदड़ो एण्ड मिस्ल्वेनरी शीर्षक लेख।

लौह आविष्कार ने कुछ ऐसे तत्व डाल दिए जो सैन्धव नगरो से प्राप्त नहीं होते किन्तु मूलत दोनो नगरीय सभ्यता की नगर निर्माण तकनीक एक सी जान पडती है।

यद्यपि आर्य आक्रमण के फलस्वरूप सैधव नगरो के विनाश को मान लेने का कोई स्पष्ट अकाट्य प्रमाण हमे उपलब्ध तो नही होता, किन्तु फिर भी नगरों के सम्बन्ध मे यदि हम इस तर्क पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है तो इतना तो स्पष्ट है कि सैधव नगरों के विनाश एव पुन गगाघाटी मे उदय के नवीन नगर–उत्क्रान्ति के काल अन्तराल मे हमें किसी भी नगरीय सभ्यता के प्रमाण उपलब्ध नही होते, फिर भी इन दोनो नगरीय सभ्यताओ के स्वतन्त्र उदय मान लेने मे भी कई एक कठिनाइयॉ उत्पन्न होती है।

इस सम्बन्ध मे प्रो० यू०एन० राय का नगरीय जीवन के सातत्य–मीमासा के सम्बन्ध मे मत गंभीरता के साथ विचारणीय हो जाता है कि सैन्धव सभ्यता के विलय एवं विघटन के पश्चात् यदि एक हजार वर्षों तक (1750ई०पू०–750ई०पू०) भारत मे नगरीय जीवन का अभाव रहा और सामाजिक और आर्थिक सगठन ग्रामो एव कृषि तक ही सीमित होता, तो इस दीर्घान्तर के उपरान्त एक अधिक उन्नत एवं विकसित नगर पद्धति के सहसा उद्गम होने का प्रश्न ही खडा नहीं होता। इस काल–सम्पुट मे नगर जीवन के खण्डित होने पर समस्त सैंधव–कालीन अभियात्रिक का ज्ञान ही समाप्त हो जाता। अतएव भारतीय इतिहास का यह कालखण्ड नगर एवं नगर–जीवन का निष्कम्भल–काल न होकर नगर के उद्भव एवं विकास का सातत्य काल था।[43]

नगर–जीवन के सातत्यता के सम्बन्ध मे वी०पी० सिन्हा का यह मत सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है कि सैन्धव सभ्यता ठीक 1750 ई०पू० मे उल्का या पुच्छल तारा की भॉति सहसा लुप्त होने वाला आकाशीय दृश्य या चमत्कारिक घटना नहीं थी, जिसका बाद में कोई चिन्ह ही नही रह गया था।[44] स्वयं पुराविद मानते हैं कि

---

[43] राय, उद्‌यनरायण, पूर्वोक्त, पृ० 27।
[44] सिन्हा, बी०पी०, 'हड़प्पा फाल आउट इन द मिड' गैजेटिक वैली शीर्षक लेख' ग्रिगोरिक पोसेल्स द्वारा सपादित ग्रथ, हड़प्पन सिविलाइजेशन, पृ० 135–140।

हडप्पा सभ्यता के विनाश के उपरान्त वहाँ के निवासी भारत के अन्य भागो मे फैलने लगे और इस प्रसरण–क्रिया में वे आकर गगा घाटी मे बस गये।[45] इस सम्बन्ध मे प्रो० जी०आर० शर्मा के मत को यहाँ सन्दर्भित करना अप्रासगिक न होगा, जिनके अनुसार कौशाम्बी की प्रारम्भिक सुरक्षा भित्ति (1025 ई०पू०) हडप्पा की दुर्ग व्यवस्था की याद दिलाती है। इसकी वास्तुगत विशेषताएँ हडप्पा–प्राकार की किलेबन्दी से प्राभावित लगता है।[46] किन्तु प्रो० शर्मा द्वारा सुझाये गये इस तिथि को बहुत से विद्वान स्वीकार नही करते। अभी हाल मे ही कुछ लेखको ने पुरातात्विक सैधव और वैदिक साहित्य के साक्ष्यो के समन्वय के सन्दर्भ मे वैदिक और हडप्पा सस्कृति के साम्य एव एकीकरण को स्वीकार करने का आग्रह किया है।[47]

प्राचीन भारतीय साहित्य एव विगत कुछ वर्षों मे हुए पुरातात्विक उत्खन्न से प्राप्त सामग्री के विश्लेषण से मध्य गगा–घाटी मे नगर एव नगरीय सभ्यता को उद्‌घाटित करने वाले उनके साक्ष्य प्राप्त होते है। ऋग्वेद मे 'देही' शब्द सन्दर्भित है, जिसका आशय ऐसे किलो से लगाया गया है, जो काष्ट प्राचीर (प्राकार) से युक्त हो तथा जिनके चारो तरफ खाई (परिखा) विद्यमान हो।[48] उत्तर वैदिक साहित्य कात्यायन श्रौत सूत्र[49] तथा कौशिक सूत्र[50] मे देही शब्द परिखा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। शतपथ ब्राह्मण के एक अवतरण से स्पष्ट है कि ब्राह्मण काल मे लोग खाई (परिखा) से परिचित थे।[51]

वैदिक साहित्य के अनेक स्थलों पर 'पुर' शब्द का सन्दर्भण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ही अनेक स्थलों पर पुरो का उल्लेख प्राप्त होता है।[52] अन्यत्र अयसी,[53] अश्वमयी[54] लम्बे–चौडे एव विस्तृत पुरो और दुर्गों का उल्लेख प्राप्त होता है।[55] आर्यों के युद्ध देवता इन्द्र को पुर विनाश के विलक्षण प्रतिभा से युक्त होने के कारण

---

45 पोसेल ग्रिगोरी, एल, हडप्पन सिविलाइजेशन पृ० 136।
46 शर्मा, जी०आर०, 'एक्सकैवेशन्स ऐट कौशाम्बी, पृ० 33।
47 सिह, भगवान, हडप्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य (तृतीय सस्करण) दिल्ली 1997, पृ० 52।
48 ऋग्वेद VI-47-2, 7-6-5, वैदिक इडैक्स भाग–I पृ० 379।
49 कात्यायन श्रौत सूत्र 2 1 22
50 कौशिक सूत्र 3 5
51 शतपथ ब्राह्मण 7 1 1 13।
52 ऋग्वेद, I –43 8।
53 वहीं, II –58 8।
54 वहीं, IV –30 20।
55 वहीं, I – 4.1 3 ।

'पुरन्दर' कहा गया है।[56] किन्तु इन्द्र सिर्फ पुर विनाशक ही नही थे, जैसा कि ऋग्वेद आर्यों द्वारा दुर्ग सुरक्षा हेतु इन्द्र से की गई प्रार्थना का भी उल्लेख करता है – हे इन्द्र! शत दुर्गों के द्वारा आप हमारी रक्षा करे।[57] ऋग्वेद मे राजर्षि दधीचि के भी नगर का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार असुरो ने राजर्षि के नगर पर कब्जा कर लिया था, किन्तु जब असुर लौट रहे थे तो इद्र ने उन्हे घेर कर पराजित किया और उनके मवेशी, घोडे तथा रथ छीन कर राजर्षि को वापस कर दिया।[58]

पर यह सामान्य धारणा है कि पूर्व वैदिक सभ्यता ग्रामीण थी और पौर जीवन से अपरिचित थी। किन्तु यह निसन्देह है कि ऋग्वेद मे पुर का उल्लेख ग्राम से अधिक आता है।[59] तथापि इसके आधार पर ऋग्वैदिक सभ्यता किसी भी आधार पर नगरीय सभ्यता नहीं मानी जा सकती। सभ्यता के प्रारम्भिक चरण मे वैदिक–जन पशुचारी अवस्था वाले समाज के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं, जो कृषि कर्म से परचित तो अवश्य थे पर पशुचारण की अपेक्षा कृषि का स्थान गौण ही था।

किन्तु ठीक है कि वेद पौर जीवन के दस्तावेज नही है, पर वैदिक ऋषि पुरों से अपरिचित भी नहीं थे।[60] यह ठीक है कि वेदो मे व्यक्त अध्यात्मिक सस्कृति पुरवासिनी नही है, पर उसका एक पुर प्रधान सभ्यता के साथ सहभाव या समसामयिकता असंभव नही है। बहुत बाद तक भी भारतीय सभ्यता का अभ्यस्त दृश्य एक जगलो का अबाध सागर था जिसमे द्वीपायमान छोटे–छोटे गॉव और दूर–दराज नगर टिमटिमाते थे। सिन्धु सभ्यता के दिनो से सामान्य परिदृश्य इससे विशेष भिन्न था, ऐसा सभाव्य प्रतीत नही होता, इस तरह यह कल्पना अबाधित है कि एक ही सभ्यता का पौर–व्यापारिक पक्ष सैधव सभ्यता में परिगणित है, उसका आध्यात्मिक–आरण्य पक्ष वैदिक सस्कृति में।[61]

ठीक इसी प्रकार पुरातात्विक सैंधव और वैदिक साहित्य के साक्ष्यों के समन्वय के सन्दर्भ मे भगवान सिह का मत है कि ये दोनो सभ्यताऍ अलग नही है,

---

[56] वहीं, I–1033 ।

[57] राय, उदयनारायण, पूर्वोक्त, पृ० 26।

[58] ऋग्वेद, II –154 ।

[59] दे० पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, फाउण्डेशन आफ इण्डियन कल्चर, जि०–2 पृ० 71 (ऋक् सहिता मे 'ग्राम' नौ बार और 'ग्राम्य' एक बार आता है, 'पुर' 58 बार से कम नहीं आता।)

[60] वहीं, पृ० 72।

बल्कि सभ्यता एक ही है और इसके भौतिक अवशेषो को सामने रखने पर हम इसे हडप्पा सभ्यता का नाम देते है और साहित्यिक साक्ष्यो को सामने रखने पर वैदिक सभ्यता कहकर पुकारते है। हडप्पा सभ्यता को अलग मानकर चलते है तो यह तो स्वीकार करते है कि इसका भी एक विशाल साहित्य रहा होगा। पर साहित्यिक अवशेषो मे ही नही, भारतीय पौराणिक परम्पराओ में भी गायब दिखाई देता है, और वैदिक आर्यों के साहित्य और भाषा को पकडकर चलते है तो हडप्पा के पुरातात्विक साक्ष्यो का निषेध करते ही इसका कोई निश्चयात्मक अवशेष ही नही मिलता।[62]

ऋग्वैदिक अध्यात्मिक अरण्य पक्ष तथा सैन्धव पौर–व्यापारिक पक्ष एक ही सभ्यता से सम्बन्धित थे अथवा नही यह विवाद का विषय हो सकता है किन्तु जब हम ऋग्वेद के अन्त साक्ष्यो पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है तो उन तमाम 'पुर' सम्बन्धी उल्लेखो के बावजूद इसे हम नगरीय सभ्यता नही मान सकते।

ऋग्वेद के उत्तरवर्ती साहित्य भी 'पुर' शब्द को सन्दर्भित करते है जैसे तैतरीय ब्राह्मणो,[62A] ऐतरेय ब्राह्मण,[62B] एव शतपथ ब्राह्मण[62C] मे 'पुर' शब्द सन्दर्भित है, जो परिखा एव प्राकार से परिवेष्ठित नगर का बोधक है।[62D] इसकी पुष्टि तैतरीय सहिता[63] से भी हो जाती है, जहॉ 'नगर' शब्द 'पुर' के समनार्थी के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेद सहिता[64] मे 'महापुर' के सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त करते हुए मैकडानल एव कीथ ने कहा है कि 'पुर' एव 'महापुर' मे अन्तर आकार की दृष्टि से था।[65]

श्वेताश्वरोपनिषद्[66] एव कठोपनिषद[67] में महापुर की ओर संकेत करते हुए 'नवद्वारपुर' एव 'एकादशद्वारपुर' का उल्लेख आया है इस सम्बन्ध मे प्रो० यू०एन० राय का विचार है कि प्रत्यक्षत ये लाक्षणिक या अन्योक्ति सन्दर्भ सदृश लगते है पर

---

61 पाण्डेय गोविन्द चन्द्र, वैदिक सस्कृति, 2001 प्रथम सस्करण पृ० 24–25 ।
62 सिंह, भगवान, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, तृतीय सस्करण, दिल्ली, 1967, पृ० 52 ।
62A तैतरीय ब्राह्मण, 2 7 75।
62B ऐतरीय ब्राह्मण, 1 22 211।
62C शतपथ ब्राह्मण, 2 4 4 3।
62D मैकडालन एण्ड कीथ, वैदिक इण्डेक्स, जि० 1 पृ०539 ।
63 तैतरीय सहिता, 1 2 31 4।
64 यजुर्वेद सहिता, 1 7 1–3।
65 वैदिक इण्डेक्स, जि० 1, पृ० 2,51।
66 श्वेताश्वरोपनिषद, 3 18।
67 कठोपनिषद्, 1 5 1।

इतना तो स्पष्ट है कि लेखक ने ऐसे नगरो को देखा होगा जिसके परकोटे मे एक से अधिक द्वार वर्तमान था।[68] अन्य नगर सुरक्षा विन्यास के वास्तु अगो मे 'प्राकार' शखायन श्रौतसूत्र,[69] वप्र 'अथर्ववेद,[70] देही (परिखा) कात्यायन श्रौतसूत्र[71] का सन्दर्भण तत्कालीन नगर सुरक्षा के विषय मे प्रासगिक है। पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी मे न सिर्फ ग्राम एव नगर का उल्लेख किया है अपितु नगर, नगर–विन्यास, किला, सुरक्षा भित्ति, परिखा, नगर द्वार एव सुरक्षा टावर का उल्लेख किया है।[72] महानगर और नवनगर दो रूपो मे नगरो का उल्लेख किया है। ऐसा लगता है कि पाणिनि के काल तक आते–आते नगर–सुरक्षा के विभिन्न वास्तु अगो का विधिवत विकास हो चुका था। कौटिल्य ने भी परिखा[73] प्राकार[74], वप्र[75], अट्टालक[76], गोपुर[77], इन्द्रकोश[78], इत्यादि नगर–वस्तु अंगो का बहुलाश उल्लेख किया है।

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से तत्कालीन गगा घाटी मे स्थित अनेक नगरों की उपस्थिति का सज्ञान प्राप्त होता है। नगर, जैसे–आसन्दीवन्त[79] का उल्लेख जन्मेजय परीक्षित की राजधानी के रूप मे हुआ है। जहॉ उन्होने अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके अतिरिक्त परीक्षित कालीन मष्णार[80] एव कारोती[81] नामक अन्य प्रधान नगरो का भी उल्लेख हुआ है। कौशाम्बी का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण,[82] गोपथ ब्राह्मण[83] एव ऐतेरेय ब्राह्मण[84] मे हुआ है। शतपथ ब्राह्मण मे प्रोतिकौसुरूविन्द को कौशाम्बेय[85] अर्थात् कौशाम्बी का निवासी कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण मे कौशाम्बी का उल्लेख एक विद्यानगरी के रूप मे किया गया है।[86] इसके अतिरिक्त कांपिल्य

---

68 राय, उदयनरायण, पूर्वोक्त, पृ० 29।
69 शखायन श्रौत सूत्र, 16 18 14।
70 अथर्ववेद, 7 71 1।
71 कात्यायन श्रौत सूत्र, 2 1 22।
72 अग्रवाल, वी०एस० ' पाणिनि कालीन भारतवर्ष वाराणसी, 1969 पृ० 137।
73 अर्थशास्त्र (यौली सस्करण) खण्ड 1 पृ० 31।
74 वही (शास्त्री सस्करण) पृ० 52।
75 वही (शास्त्री) पृ0–51।
76 वही (शास्त्री) पृ0–52।
77 वही (शास्त्री) पृ0–73 ।
78 वही (यौली सस्करण) प्रकरण 21, पृ0–33 ।
79 शतपथ ब्रह्मण 13,5,4,2, वैदिक इण्डेक्स भाग–1, पृ0–72 ।
80 ऐतरेय ब्राह्मण, 8,23,2 ।
81 शतपथ ब्राह्मण, 13,5,4,2, 9 5 215 ।
82 शतपथ ब्राह्मण, 12,2,2,13 ।
83 गोपथ ब्राह्मण, 1 2,24 ।
84 ऐतरेय ब्राह्मण, 8,14 ।
85 शतपथ ब्राह्मण, 12,2,,2,13 ।
86 गोपथ ब्राह्मण, 1,4,24 ।

का उल्लेख तैतरीय सहिता मे हुआ है।[87] इसी प्रकार मैत्रायणी सहिता मे सुभद्रिका नामक महिला को इस नगर का निवासिनी बताया गया है।[88] अयोध्या नगर का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में हुआ है।[89] तैतरीय ब्राह्मण मे जानश्रतेय को 'नागरिन्' शब्द से संबोधित किया गया है, जिसका अर्थ नगरवासी है। उक्त सम्बोधन से स्पष्ट है कि उत्तरवैदिक काल मे न सिर्फ नगर थे, अपितु लोग अपने को 'नगरिन्' भी कहने लगे थे।[90] प्रारम्भिक पालिग्रंथो में नगरक, महानगर तथा राजधानी आदि की सूचना मिलती है।[91] अन्यत्र नगर, निगम, आदि का उल्लेख हुआ है।[92]

ऐतिहासिक काल में प्राचीन भारत के व्याकरणाचार्य पाणिनि ने अपने 'अष्टाध्यायी' मे (जिसकी रचना 5वी शताब्दी ई०पू० मे हुई थी)ग्राम तथा नगर दोनो का उल्लेख किया है तथा उनकी विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है।इन्होने स्पष्ट रूप से कहा है कि पूर्व मे 'ग्राम,' 'नगर' से भिन्न था।[93] इससे ज्ञात होता है कि नगर सुनियोजित योजना के परिणाम थे, इनका अनियत्रित विकास नही हुआ। उनके अनुसार नगर वे है जिनके चारो ओर खाई (परिखेई भूमि.) तथा नगर दीवार (प्रकारिय:देश) बने हो अथवा इनके बनाने के लिए स्थल छोडा गया हो तथा मध्य मे महल बनाने के लिए स्थल(प्रसादिय.भूमि) हो।[94] महानगर तथा नवनगर दो रूपो मे नगरो का उल्लेख हुआ है।[95] पाणिनि ने हस्तिनापुर, फलकपुर, मार्येदपुर, अरिष्टपुर और गैडपुर का उदाहरण दिया है।[96] अन्यत्र कपिशी (कपिशा), तक्षशिला आदि अनेक विशिष्ट नगरो का उल्लेख पाणिनि ने किया है।[97]

इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक धर्मसूत्रों जिनका काल 600 से 300 ई०पू० के बीच माना जाता है मे भी ग्राम एवं नगर के मध्य बढते हुए विरोध के प्रसग मे नगर एवं नगर–जीवन से सम्बन्धित परोक्षत· अनेक जानकारी प्राप्त होती है। धर्मसूत्र जो

---

[87] तैतरीय सहिता, 7 4 19 1 ।
[88] मैत्रायणी सहिता, 3, 12, 20 ।
[89] ऐतरेय ब्राह्मण, 12, 3, 1 ।
[90] मिश्र, डा0 जयशकर, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी, 1986 पृ0–452–453 ।
[91] दीघनिकाय, 287–88 ।
[92] अगुत्तर निकाय (पा0टे0सो0), 1,78 ।
[93] दे0 रूरल लाइफ एण्ड फोल्क कल्चर इन ऐशेण्ट इण्डिया स0(यू0ए0राय) 1998 इलाहाबाद, पृ0–108 ।
[94] वी0एस0अग्रवाल 'पाणिनि कालीन भारत, पृ0–76–87 ।
[95] अष्टाध्यायी, 6,2,87 (अमहन्नव नगरेऽनुदीवां)।
[96] पूर्वोक्त, 6,2,100–102।
[97] पूर्वोक्त, 4,2,99,4,3,93 आदि।

वैदिक परम्परा के प्रवाह को प्रदर्शित करते है, नगर और नगर–सस्कृति को हतोत्साहित करने मे महत्वूर्ण भूमिका निभाते है। बौधायन धर्मसूत्र मे कहा गया है कि जो व्यक्ति धूल–धक्कड से भरे हुए नगर मे निवास करता है उसके लिए मोक्ष पाना असभव है।[98] आपस्तम्ब ने भी लिखा है कि ब्राह्मण को नगर मे नही जाना चाहिए।[99] इन्होने उच्चवर्णीय लोगो के लिए व्यवस्था दी है कि वे दुकानो मे बना खाना न खाए।[100] यह नियम नगरो की आम विशेषता दुकानो एव भोजनालयो के प्रति तिरष्कार का भाव दर्शाता है। गौतम ने दिन अथवा रात किसी समय 'नगर' मे वेदपाठ का कडा विरोध किया है।[101] धर्मसूत्रो मे नगर–जीवन के विरोध का कारण चाहे जो भी रहा हो, इन उल्लेखो से इतना स्पष्ट ही है कि अद्यावधि मे निश्चित रूप से नगर विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त साधुओं के भिक्षाटन के सम्बन्ध मे एक जैन ग्रथ मे विभिन्न प्रकार के नगर–बस्तियो का उल्लेख हुआ है जैसे करमुक्त नगर, मिट्टी की प्राचीर वाला नगर, छोटी प्राचीर वाला नगर, अलग–अलग नगर, विशाल नगर, समुद्रतटीय नगर और राजधानी।[102] पालिग्रन्थो मे भी उस समय मध्य गगा घाटी में विकसित अनेक नगरो का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमे चम्पा, राजगृह, वैशाली, वाराणसी, कौशाम्बी, कुशीनगर, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र विशेष महत्वपूर्ण थे। ईसापूर्व 600 से 300 के बीच देश भर में लगभग 60 नगरो के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।[103]

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्यिक साक्ष्यो के पर्यावलोकन के पश्चात् इतना कहा जा सकता है कि ब्राह्मण जातक एव पाणिनि के काल तक आते–आते गगा घाटी मे नगर एव नगरीय जीवन व्यापक रूप से विकसित हो चुका था और नगरो की सुरक्षा के लिए व्यापक रूप से प्रबन्ध किया जाने लगा था।

किन्तु जहॉ तक पुरातात्विक साक्ष्य विशेषकर पकाई हुई ईंटो के भवनों का सम्बन्ध है, इस आधार पर हम नगरीकरण का प्रारम्भ 300 ई०पू० के पहले का

---

98 बौधायन धर्मसूत्र, 2,3,6,33–34।
99 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1,32,21।
100 पूर्वोक्त, 1,5,17,14।
101 गैतम धर्मसूत्र, 12 43।
102 अन्तगडदसाओ, अनुवाद, बर्नेट, एल0डी0,पृष्ठ–44–45 आयारागसुत्त (पालि टेक्स सोसायटी) 1 76 4, कल्पसूत्र, सम्पादक जेकोबी एच०, पृ०–89, सूयगडम् सम्पदक, वैद्य, पी0एल0 11 26।
103 झा, डी0एन0'ऐशेन्ट इण्डिया ऐन इट्रोडक्टरी आउट लाइन, नई दिल्ली, 1997, पृ0–29।

स्वीकार नहीं कर सकते।[104] स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तर भारत के अनेक स्थलो पर समन्वेषण एवं उत्खनन हुए है, जिनसे हमे विभिन्न पुरातात्विक सस्कृतियों की झलक मिलती है। विद्वानों की चेष्टा रही है कि भारतीय साहित्य परम्परा को कथानक एव मिथक मात्र के दायरे से निकाल कर तर्कपूर्ण आधार पर प्रतिष्ठित किया जाय।[105] वैदिक साहित्य मे प्रतिबिवित भारत के कुछ भौतिक अवशेष मिले है यद्यपि यह निश्चित् रूप से कहना तो सभव नही है कि अमुक भौतिक अवशेष, निश्चित रूप से ऋग्वेद कालीन लोगो की कृति है। अथवा उत्तर वैदिक कालीन लोगो की। फिर भी इस दौरान जो पुरावशेष उपलब्ध हुए है उनका पडताल कर लेना अनुचित न होगा।

ऋग्वेद के तिथिक्रम से मेल खाने वाली सस्कृतियो मे काले एव लाल मृद्भाड, ताम्रपुज एव गेरूवर्णी मृद्भाडो की सस्कृतियो को रखा जा सकता है, किन्तु निर्विवाद रूप से नही । गेरूवर्णी मृद्भाड तिथिक्रम की दृष्टि से ऋग्वेद के समकालीन मानी जा सकती है, किन्तु भौगोलिक रूप से इनका बहुत साम्य नही हो पाता। इस सस्कृति के चिह्नित लगभग एक सौ स्थलो मे से बहुत कम ही सप्तसैन्धव क्षेत्र मे पडते है, जो ऋग्वेदीय सभ्यता का केन्द्र था। अधिकाशत ये स्थल गंगा–यमुना दोआब मे केन्द्रित है। यही बात ताम्रपुजो के बारे मे भी कही जा सकती है। उत्तरी भारत में ताम्रपुंजो के अवशेष भी अधिकाशत गगा–यमुना दोआब व उनके पूर्व मे ही केन्द्रित है।

यों तो अफगानिस्तान, पजाब एव उत्तरी राजस्थान से जो ऋग्वेद कालीन लोगो की गतिविधियो के केन्द्र रहे है–चित्रित–धूसर मृद्भाड प्राप्त हुए है किन्तु तिथिक्रम की दृष्टि से इन्हे अधिक से अधिक ऋग्वेद काल की अन्तिम शताब्दी का माना जा सकता है। अगर तर्क के खातिर यह मान भी लिया जाय कि उपर्युक्त पुरातात्विक सस्कृतियॉ ऋग्वैदिक कृति थी, तो भी, इसे कोई स्थायी जीवन के संकेतक साक्ष्य के रूप मे नहीं माना जा सकता। ताम्रपुजो के विभिन्न अस्त्रों के बारे में अधिकांश अटकलें यही लगाई गई हैं कि वे शिकार में प्रयोग किये जाते रहे होंगे। इसी प्रकार लाल किला (जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) एवं अतरजीखेड़ा

---

[104] शर्मा, आर०एस० प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचानाए, पृ०–156।
[105] पुरातत्व, अक 8 पृ०–63–122 'आर्कियोंलाजी एण्ड ट्रेडिशन' शीर्षक परिचर्चा

(जिला एटा,उत्तर प्रदेश) के कुछ अपवादो को छोडकर गेरूवर्णी मृद्‌भाड के स्थलो से भी स्थायी जीवन के कोई अवशेष नही मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग ऐसा जीवन बिता रहे थे, जिसे ऋग्वेद मे प्राप्त होने वाले कवायली के चित्र से समिकृत किया जा सकता है।

जहॉ तक उत्तर वैदिक साहित्य की पुरातात्विक पुष्टि का प्रश्न है सापेक्षिक रूप से कुछ अधिक प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिसके आधार पर अर्थव्यवस्था तथा भौतिक जीवन मे प्रगति के लक्षण दिखाई देते है। उत्तर वैदिक साहित्य की भौगोलिक सीमाओ के अन्तर्गत पंजाब, हरियाणा, राजस्थान एव पश्चिमी उत्तर प्रदेश से प्राप्त होने वाले चित्रित धूसर मृद्‌भाड (पी०जी०डब्लू) तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिमी भागो मे पाए जाने वाले उत्तरी काली चमकीली मृद्‌भाड (एन०बी०पी०) की पुरातात्विक सस्कृतियॉ अपने भौगोलिक विस्तार तथा तिथिक्रम (ईसा पूर्व लगभग 800 से 100) के आधार पर उत्तर वैदिक कालीन सस्कृति के अवशेष होने की हकदार हो सकती है।

प्रौद्योगिकी की दृष्टि से चित्रित धूसर मृद्‌भांड काल उत्तर वैदिक साहित्य काल का प्रतिनिधित्व करती है। पूर्वोक्त गेरूवर्णी अथवा काले एवं लाल मृद्‌भाडो की संस्कृति की तुलना में चित्रित धूसर मृद्‌भाण्ड की सस्कृति के अवशेष कही अधिक स्थायी जीवन की ओर सकेत करते हैं। चित्रित धूसर मृद्‌भाड काल मे ही गगाघाटी के मैदान में लोहे का प्रयोग आरम्भ होता है, किन्तु उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री में मुख्यतः युद्ध एवं आखेट मे प्रयुक्त होने वाले लोहे के उपकरण ही सम्मिलित है। हस्तिनापुर, आलमगीरपुर, अतरजीखेडा तथा कौशाम्बी के उन स्तरो से चाकू, छूरे, बाणाग्र एवं भाले के अग्रभाग ही प्राप्त हुए है, जिनकी तिथि 7वी शताब्दी ईसा पूर्व निश्चित की गयी है, परन्तु सख्या बहुत कम है।[106] कुल्हाडी, कुदाल एवं दरांती विरल हैं और हल के लिए फाल लगभग अनुपस्थित । इस आधार पर हम लोहे को हस्तशिल्प एवं कृषि मे बड़ी सीमा मे उपयोग की कल्पना नही कर सकते ।

[106] हेगड़े के०टी०एम०, एशिएट इडिया कापर आयरन मैटलर्जी इडियन जर्नल आफ द हिस्ट्री आफ साइस भाग, 16,1981पृ0—197

अत. यह अनुमान भी किया जा सकता है कि आदिम तरीके की खेती एव शिल्प प्रविधियों के आधार पर अधिशेष उतना नही मिल पाता रहा होगा जितना एक नगर के विकास के लिए आवश्यक रहा होगा। इस प्रकार चित्रित धूसर मृद्भाण्ड तथा इससे सबद्ध लौह–काल मूलत लोहे के हथियारो का काल था, न कि लोहे के उपकरणो का। एच0सी0भारद्वाज ने 1000–600 ई०पू० के काल को आदिम लौह–काल के नाम से पुकारा है।[107] श्री भारद्वाज के अनुसार फेके गये लौह–मल मे पर्याप्त मात्रा मे धातु विद्यमान है, जो इस बात का परिचायक है कि लौह–धातु प्रौद्योगिकी प्रारम्भिक अवस्था मे थी[108] जो भी हो, इतना तो कहा ही जा सकता है कि सीमित मात्रा मे ही सही लौह धातु का प्रयोग इनकी एक महान तकनीकी उपलब्धि थी, जो कालान्तर मे लोगो के जन–जीवन को प्रभावित करने की असीम क्षमता रखती थी।

अनेक स्थलो पर तीन–चार मीटर गहरे चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (पी०जी०डब्लू०) लौह काल के जमाव इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि ये स्थल एक लम्बे समय तक आबाद रहे। उनकी सापेक्षिक स्थिरता तथा जनसख्या वृद्धि के द्योतक अनेक सन्दर्भ इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं कि ये कृषक समुदाय की बस्तियॉ थी। कृषि के पर्याप्त अवशेष मिलते है, जैसे–विभिन्न प्रकार की दाले एव अनाज। यह सच है कि कृषि मे काम आने वाले लोहे के विशिष्ट उपकरण नही मिले है, किन्तु लोहे के बढते हुए प्रयोग के चिन्हो की कमी नही है।

जहॉ तक पकाई हुई ईंटो का प्रश्न है चित्रित घूसर मृद्भाण्ड सस्कृति के स्थलों पर इसका प्रयोग नही हुआ है। यद्यपि कौशाम्बी मे मिट्टी की प्राचीर पर सामने की ओर ईंटों की ढलवा दीवारें प्राप्त हुई है, परन्तु इसकी तिथि 550 ई०पू० से पहले नहीं मानी जा सकती।[109] वास्तव में सम स्तर से एक ढले हुए तॉबे के सिक्के की संप्राप्ति इसकी तिथि को लगभग 300 ई०पू० तक ले जा सकती है। अतरजीखेडा में चित्रित घूसर मृद्भाण्ड स्तर से एक कुम्हार का आवॉ तो प्राप्त हुआ

---

107 भारद्वाज एच०सी० 'आस्पेक्टस आफ ऐशिएट इण्डियन टेक्नालाजी, दिल्ली 1979 पृ० 154।

108 पूर्वोक्त वहीं, पृ० 158।

109 ह्वीलर, 'अर्ली इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, लदन 1959 पृ०130 ।

है,[110] किन्तु इसमे ईट पकाई जाती थी ऐसा कोई साक्ष्य नही मिलता। वास्तव मे चित्रित धूसर मृद्भाण्ड, बस्तियों के सम्पूर्ण चरित्र इन्हे नगरीय बस्ती होने के साक्ष्य प्रस्तुत नही करते जैसा की ह्वीलर ने किया है।[111]

कुल मिलाकर प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० मे सिन्धु गगा विभाजक तथा उच्च श्रेणी मे रहने वाले लोगो की अर्थव्यवस्था तथा उनके भौतिक जीवन मे भारी प्रगति के लक्षण तो दिखाई देते है, जहॉ आरम्भिक वैदिक जनो की चारागाही एव अर्ध–घुमत जीवन पद्धतियों को पृष्ठभूमि मे ढकेल दिया गया, कृषि मुख्य जीविका का साधन बनी जिससे जीवन में स्थायित्व एव स्थिरता का सचार हुआ। किन्तु उत्खनन मे प्राप्त सामग्री कही से भी चित्रित धूसर मृद्भाण्ड स्थलों को नगरीय बस्तियॉ सिद्ध नहीं कर पाती। कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग समृद्ध ग्रामीण जीवन ही बिता रहे थे, जिनमे आगे विकास की काफी संभावनाऍ विद्यमान थी। आर०एस० शर्मा के अनुसार अधिक से अधिक इन्हे आद्यनगरीय कहा जा सकता है।[112]

प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० के पूर्वार्द्ध मे उच्च गगा, द्रोणी के लोगो ने जो भौतिक उपलब्धियॉ हासिल की थी वे उत्तरार्द्ध मे भी जारी रही, बल्कि उनमें और ज्यादा विकास हुआ। पुरातात्विक दृष्टि से छठी शताब्दी ई०पू० से उत्तरी काली चमकदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) चरण की शुरूआत होती है। इस पात्र परम्परा के स्तर की अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है। युद्ध के अलावा कृषि में लोहे का बडे पैमाने पर उपयोग एवं आर्थिक दृष्टि से इस समय मुद्रा प्रणाली का आगमन एक महत्वपूर्ण विकासशील कदम था।

किन्तु जहॉ तक भवन निर्माण में पकी हुई ईंटों के प्रयोग की बात है मध्यगंगा घाटी में इसका उपयोग पहली बार मौर्य–काल में ही हुआ। बिहार तथा उत्तर–प्रदेश मे मौर्य युगीन ईंटों से निर्मित इमारतें बहुतायत मे मिली हैं।[113] परन्तु वह समाज जो उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) कहे जाने वाले

---

110 आई०ए०आर०, 1963–64 पृ० 49।
111 ह्वीलर सिविलाइजेशस आफ द इडस वैली एंड वियोन्ड, कैम्ब्रिज 1966 पृ० 102।
112 शर्मा, आर०एस०, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऍ, नई दिल्ली 1992 (पु०मु०1993) पृ० 97।
113 शर्मा, आर०एस०, 'प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ० 156।

विशिष्ट बर्तन तथा युद्ध एव कृषि उत्पादन मे बडी सख्या मे लौह उपकरणो का प्रयोग करता था, घरो के बिना नही रह सकता।[114]

पूर्वी उत्तर प्रदेश एव बिहार मे अवस्थित अनेक स्थलो से इस प्रकार के बर्तन उत्खनन मे प्राप्त हुए है। इनमे कौशाम्बी,[115] राजघाट,[116] श्रावस्ती,[117] वैशाली,[118] पाटलिपुत्र[119] इत्यादि से प्राप्त तिथियो के आलोक मे समग्र रूप से मध्य गगा घाटी मे उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) का काल लगभग 600–100 ई०पू० के काल को इगित करता है। यह मत कि उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड आठवी शताब्दी ई०पू० मे प्रारम्भ हुए थे।[120] मध्य गंगा घाटी से प्राप्त असशोधित रेडियो–कार्बन तिथियो द्वारा भी समर्थित नही है।[121] यह ठीक है कि सामान्यतया इस सशोधित तिथियों के आलोक मे उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) के काल को दो उपकालो मे विभाजित किया जा सकता है – प्रथम 600 ई०पू० से 300 ई०पू० तथा द्वितीय 300 ई०पू० से 100 ई०पू०। अनेक रेडियो कार्बन तिथियो के उपलब्ध होने के बाद समग्ररूप से इसे 500 ई०पू० से 50 ई०पू० का कोष्ठक सुझाया गया है।[122]

यह ठीक है कि इस प्रकार के बर्तन अनेक ऐसे स्थलो से प्राप्त हुए है जहॉ मानव बस्तियो का प्रारम्भ 600 ई०पू० से पहले हो गया था और 300 ई०पू० के बाद भी जारी रहा।[123] किन्तु समग्ररूप से उपलब्ध पुरातात्विक अवशेषो के आलोक मे हमे यह कहने मे कोई कठिनाई नही है कि उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) के प्रारम्भिक चरण मे लोग गगा के मैदानी इलाको मे बसने लगे थे, तथा शिल्प एवं कृषि के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने लगे थे।
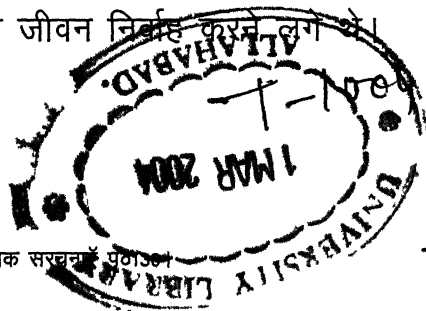
114 पूर्वोक्त, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऐं पृ०130
115 आइ०ए०आर०, 1957–58 पृ० 48।
116 आइ०ए०आर०, 1960–61 पृ० 68।
117 सिन्हा के०के०, एक्सकेवेशन्स एट श्रावस्ती–1959 वाराणसी (1967) पृ० 14, 21, 67 तथा 68 ।
118 कृष्ण कान्त और विजय कान्त मिश्र, वैशाली एक्सकेवेशन्स, 1950 वैशाली 1961 पृ० 5 एव 66 ।
119 सिन्हा वी०पी० तथा नारायण एल०ए० 'पाटलिपुत्र एक्सकेवेशन्स 1955–56, पटना, 1970 पृ० 14–20 तथा 55 ।
120 लाल बी०बी० डेड पेटेड ग्रेवेयर कटिन्यूट द मौर्य टाइम्स ? पुरातत्व जि० 9, 1977, पृ० 68–78 ।
121 शर्मा आर०एस० भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऐं, पृ० 233 ।
122 आई०ए०आर०, 1965–66 पृ० 92।
123 शर्मा, आर०एस०, भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऐं, पृ० 233।

उल्लेखनीय है कि उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड (एन०बी०पी०) एक चमकदार उत्पाद था जो अपनी पतली काट के लिए प्रसिद्ध था। इस बर्तन की बनावट को देखकर सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि इसका प्रयोग धनाढ्य वर्ग के लोग ही करते रहे होगे, जन साधारण के लिए यह सम्भव नही था।[124] इन्ही बर्तनो के प्रयोग करने वालो के समय मे ही गगाघाटी मे नगरीकरण का आरम्भ हुआ।

यद्यपि पकाई हुई ईटो से निर्मित भवन के आधार पर नगरीकरण का प्रारम्भ 300 ई०पू० के पहले का स्वीकार नही कर सकते, किन्तु पकाई हुई ईंटो का अभाव निश्चित रूप से नगरो के अभाव का सूचक नही माना जाना चाहिए क्योकि प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में हमे यह स्वीकार करने मे कठिनाई नही होनी चाहिए कि बुद्ध के काल में गंगाघाटी के मैदान मे मिट्टी के घर बनाये जाते थे।[125] अनेक स्थलो से उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड काल के प्रारम्भिक स्तरो से प्राप्त भवनो के साक्ष्यो से इसकी पुष्टि होती है।

इस सम्बन्ध मे शिशुपाल गढ से सबसे पुराना सुरक्षा दीवाल प्राप्त हुई है।[126] राजघाट से प्राप्त मिट्टी का विशाल तटवंध भी उल्लेखनीय है जिसकी तिथि उसके उत्खनन कर्ता ने 500 ई०पू० निर्धारित की है।[127] राजघाट से ही अनेक गड्ढो से प्राप्त सरकण्डों की छाप से युक्त मिट्टी के प्लास्टर प्राप्त हुए है, जो इस बात का परिचायक है कि सरकण्डों की दीवालो पर मिट्टी का प्लास्टर किया जाता था।[128] दो लकडी के स्तंभगर्तों से युक्त जली हुई मिट्टी का एक मोटा फर्श भी उपलब्ध होता है। सोनपुर से भी रसोई का द्योतक, एक मिट्टी का चबुतरा एव मिट्टी से निर्मित एक दीवाल के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं।[129] भागलपुर (बिहार) जिलान्तर्गत चपा से भी मिट्टी का परकोटा प्राप्त हुआ है यह स्थान भी उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड के काल मे ही आबाद हुआ।[130] इस प्रकार उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड

---

[124] सौन्दराज के०वी०, मेकेनिक्स ऑव सिटी एण्ड विलेज इन ऐशेण्ट इण्डिया, दिल्ली 1986 पृ० 150।
[125] शर्मा, रामशरण, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाएँ, पृ० 156।
[126] सौन्दराजन के०वी०, मेकेनिक्स ऑव सीटी एण्ड विलेज इन ऐशेण्ट इण्डिया, दिल्ली 1986, पृ० 151।
[127] नारायण, ए०के० तथा राय, टी०एन० एक्सकेवेशन्स एट राजघाट भाग–1 वाराणसी 1977, पृ० 22–23 तथा 49।
[128] वही, पूर्वोक्त पृ० 23।
[129] सिन्हा, बी०पी० तथा वर्मा, बी०एस० सोनपुर एक्सकेवेशन्स, 1956 तथा 1959–62 पटना, 1977 पृ० 9।
[130] आई०आर०ए० 1969–70 पृ० 2, 1970–71, पृ० 4–5।

काल के प्रारम्भिक स्तर न तो पकाई हुई ईटो और न ही कच्ची ईटो से सम्बन्धित है। स्पष्ट रूप से घास–फूस से छाए गए, लकडी अथवा मिट्टी के घरो का चिह्न प्राप्त करना कठिन है। मध्यगगा घाटी मे इस प्रकार के घर प्राचीन नगरो की विशेषता थी। मध्यगगा घाटी में प्रारम्भिक नगरो मे रहने वाले लोग लकडी के घरो में निवास करते थे। पाटलिपुत्र मे इस उद्देश्य हेतु लकडी का प्रयोग पूर्णत प्रामाणित है।[131] इस नगर की रक्षा के लिए दक्षिण से लगाए गए लकडी के खूटो अथवा बाड तथा आक्रमण के लिए अपनाई गई युक्तियो की रेडियो कार्बन तिथि लगभग 600 ई०पू० निर्धारित है।[132] वाराणसी मे राजघाट से लकडी के तख्ते प्राप्त हुए है, और स्पष्टत लकडी के चबुतरे पर बने लकडी के भवन मिट्टी के भवनो से पूर्वकालिक थे।[133] यहॉ यह स्पष्ट है कि बडे पैमाने पर लकडी से निर्मित भवन लौह उपकरणो के पर्याप्त प्रयोग के बिना सम्भव नही हो सकते थे। परन्तु न तो लकडी के भवन और न ही इसके निर्माण मे प्रयुक्त होने वाले लौह उपकरण बडी मात्रा मे हमे उपलब्ध है। आर०एस० शर्मा के अनुसार इसका कारण तत्कालीन मध्यघाटी की नम जलवायु एव पर्यावरण सम्बन्धी प्रभाव को माना जा सकता है।[134]

जहॉ तक पकाई हुई ईंटो से निर्मित भवन का सम्बन्ध है, निश्चित रूप से इनका प्रयोग लकडी निर्मित भवन के बाद ही हुआ। पाटलिपुत्र[135], वैशाली[136], उज्जैन[137], बेसनगर[138], तथा अहिछत्र[139], मे इसका प्रयोग उत्तरी काली मृद्भाण्ड के द्वितीय चरण मे लोकप्रिय हुआ।

दूसरी तरफ हस्तिनापुर[140], राजघाट[141], मथुरा[142], कौशाम्बी[143], सोनपुर तथा चिरॉद[144] मे इसका प्रयोग और बाद मे शुरू हुआ। इसी प्रकार उत्तरी भारत से

---

131 अल्टेकर, ए०एस० तथा मिश्रा, वी०के० 'रिपोर्ट आन कुम्रहार एक्शकेवेशन्स, 1951–55 (1959), नीलकण्ठ शास्त्री (सम्पादक), एज ऑव द नन्दाज एण्ड मौर्याज, दिल्ली, 1969, पृ० 118।

132 आई०ए०आर०, 1971–72 पृ० 82।

133 ए०के० नारायण तथा टी०एन०राय, पूर्वोक्त पृ० 23–24।

134 शर्मा, आर०एस०, 'प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाए, पृ० 139।

135 सिन्हा, बी0पी0, तथा नारायण, एल० ए०, पाटलिपुत्र एसकेवेशन्स 1995–56 (1970) पृ0–10–11।

136 सिन्हा तथा राय, पूर्वोक्त, पृ0–6, 29 तथा 32।

137 आई0ए0आर0, 1957, पृ0–50।

138 वहीं, 1964–65, पृ0–17 ।

139 वहीं, 1963–64, पृ0–44, 1964–65 पृ0–39 ।

140 लाल, बी0बी0, 'एक्सकेवेशन्स ऐट हस्तिनापुर एण्ड अदर एक्सक्लोरेशन इन द गगा एण्ड सतलज वेसिस, ए०आई०, (1954–55) पृ० 4–15 ।

141 आई0ए0आर0–1963–64, पृ0–16, 1964–65, पृ0–17 ।

142 वहीं, 1954–55, पृ0–15 ।

बाहर नवादा टोली मे पहले–पहल पकाई हुई ईंटो से निर्मित भवन 400 ई०पू० के बाद प्रकाश मे आया तथा नासिक, नेवासा एव त्रिपुरी मे इसका प्रयोग मौर्योत्तर काल मे शुरू हुआ।

इस प्रकार साहित्यिक एव पुरातात्विक साक्ष्यो का सयोजन लगभग छठी शताब्दी ई०पू० मे मध्य गगा घाटी के मैदान मे नगरीकरण की सूचना देते है। किन्तु जहॉ तक पकाई हुई ईंटो से निर्मित भवन का सम्बन्ध है, इसके लिए उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड का द्वितीय चरण लगभग 300 से 200 ई०पू० ज्यादा महत्वपूर्ण है इसी चरण मे पकाई हुई ईंटो से निर्मित भवन, अधिक मात्रा मे सिक्को का प्रचलन, अधिक सख्या मे लोहे के उपकरण, विरल खपडे तथा मिट्टी के बडे–बडे चक्रो से बने कुए दृष्टिगोचर होते है।

नगरीकरण से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वेक्षण

किसी भी समाज मे नगरों के उदय के लिए अधिशेष उत्पादन, व्यापार एव वाणिज्य, शिल्प एव प्रौद्योगिकी तथा मजबूत राजनीतिक अवस्था का होना आवश्यक बताया गया है। तत्कालीन नगरीकरण के बेहतर समझ के निमित्त उन परिस्थितियो एव आर्थिक उपादानो का सर्वेक्षण आवश्यक प्रतीत होता है।

वास्तव में नगरो के उदय के पीछे उन ढेर सारी, उत्तरोत्तर एवं निरन्तर विकास की कहानी सन्निहित है, जिसका आरम्भ–ऋग्वेद से ही हो गया था, जो निरन्तर विकसित होती हुई एव अन्य उपादानो को जुटाती हुई आगे बढ रही थी। और अन्त में उन सभी आवश्यक उपादानो को जोडकर मध्यगंगा घाटी मे लगभग 600 ई०पू० में नगरीय बस्तियों के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की जिसके द्वारा निर्धारित आधारभूत संरचना पर भविष्य का महल गढ़ा गया।

---

[143] शर्मा, जी0आर0, एक्सवेशन्स एट कौशाम्बी, 1949–50 (1969) पृ० 27।

[144] इण्डियन आर्कियोलाजी, 1961–62–ए रिव्यू, पृ0–5, 1964–65, पृ0–7, 1968–69, पृ0–6 ।

ऋग्वैदिक अर्थ–व्यवस्था

इस सर्वेक्षण के क्रम मे सर्वप्रथम ऋग्वेद के अन्त साक्ष्यो का पडताल आवश्यक प्रतीत होता है। इस क्रम मे सर्वप्रथम हमे आर्यों के जनजातीय घूमन्तू स्वभाव एव पशुपालन के महत्व का सज्ञान होता है। यदि ऋग्वैदिक आर्यों की युद्धरतता एक सच है तो उनकी अर्थव्यवस्था मे पशुधन का महत्व एक दूसरा सच। आर्यजनो की भावनाओ तथा कल्पना लोक मे पशु–जगत् जिस रूप मे अन्तर्जटित दिखाई पडता है, वह ऐसे समाज मे ही सम्भव है जिसमे पशुपालन का महत्व सुप्रतिष्ठित हो, "गोत्र", "गोचर", "पुगव" जैसे शब्दो का इतिहास इस तथ्य को विशद् रूप मे व्याख्यायित करते है।[145]

ऋग्वेद मे वर्णित पशुओ मे गाय एव बैल महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। 'रयि' यानि 'सम्पत्ति' की गणना मे मुख्यत गाय अैर बैल ही थे।[146] शायद इसीलिए धनी लोगो को 'गोमत[147] कहा गया है। गाय सभवत सबसे महत्वपूर्ण पशु थी। एक उल्लेख में कहा गया है कि जिस घर मे गाये नही हो, वहॉ समृद्धि नही आती।[148] गाय सूचक 'गो' शब्द अपने विविध रूपो मे 176 बार वश मण्डलो मे उल्लिखित है। पुत्री के लिए प्रयुक्त 'दुहितृ' अर्थात् दुहने वाली शब्द गाय के महत्व को परिवारिक सन्दर्भ मे व्याख्यायित करता है। गविष्ठि[149] अर्थात् गायो की गवेषणा को युद्ध का पर्याय ही समझा जाता था। असल मे आर्य गाय से इतने अभिभूत थे कि भैस को भी 'गो' शब्द से ही व्युत्पन्न सज्ञाओ से अभिहित किया; जैसे–'गौरी' और 'गवल'। गाय की महत्ता इतनी थी कि एक स्थान पर देवताओ को भी गाय से उत्पन्न बताया गया है। अन्य प्रमुख पशुओं मे बैल, घोडा, भेड, बकरी और गधे महत्वपूर्ण पालतू पशु थे।

वास्तव में पशुओ के प्रति आर्यों का यह आकर्षण उनके यायावरी जीवन के अनुकूल था। यायावरी जीवन मे अचल सम्पत्ति से अधिक चल सम्पत्ति ही

---

[145] मिश्र, जी0एस0पी0, 'प्राचीन भारतीय समाज एव अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर,, 1983, पृ0–77।

[146] ऋग्वेद–II-1,12,2.13,4.8,7.1,9.4,11.13;13 4,15.5;21.6.25.2,30.11,38 10 ।

[147] वहीं, II-41 7; VII-45.21,VII-27.5, 77 5, 94 9, IX-41.4; 61.3 ।

[148] वहीं, I-161.11, "अगोह्यस्य पदसस्तना गृहेत दद्येमृभवो नानु गच्छथ" ।

[149] वही, III-47.4,V-63.5,VI-31.3,47.20,59.7, VIII-24.2 ।

आकर्षित करे तो कोई आश्चर्य नही। पशु चल सम्पत्ति थे, जो उनके साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से जा सकते थे।

ऋग्वेद मे पशुपालन की अपेक्षा कृषि का स्थान गौण प्रतीत होता है। कृषि की महत्ता को सन्दर्भित करने वाले मात्र तीन ही शब्द पाये गये है–उर्दर, धान्य एव वपन्ति[150] ऋग्वेद के कुल 10,462 श्लोको मे से मात्र 24 ही कृषि से सम्बन्धित कोई वर्णन दे पाते है।

'कृष' जिसका अर्थ कृषि करना, जोतना होता है। ऋग्वैदिक वश मण्डलो मे दुर्लभ है। 'कृष्टि' शब्द का उल्लेख 33 बार तो हुआ है किन्तु यह कृषि के अर्थ मे नही अपितु 'जन' के अर्थ में यथा पचजना या पचचर्षणिय। भाषायी साक्ष्यो के आधार पर प्रो0 रामशरण शर्मा 'कृष्टि' को कृषि कर्म से सम्बद्ध होने की धारणा का निषेध करते है।[151]

इसी प्रकार ऋग्वेद के 'चर्षणि' शब्द के बारे मे यह स्थापना कि यह 'कृष' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ हल जोतना अथवा खोदना है[152], तर्क सगत प्रतीत नही होता, अपितु यह शब्द 'चर' से निकला है, जिसका अर्थ चलना अथवा भ्रमण करना था।[153]

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल मे उल्लिखित है कि अश्विन् देवताओ ने मनु को हल चलाना और 'यव' की खेती करनी सिखायी।[154] इसके अतिरिक्त 'हल' बोधक शब्द 'लाङ्गल' तथा सीर[155] का उल्लेख हुआ है। हल के फाल[156] एवं तद्जनित' रेखाओं 'सीता'[157] तथा 'सुनु' की चर्चा भी है। छः, आठ या बारह, तक की सख्या वाले बैल से

---

[150] वही, I-26.7,IV-37.4 ।

[151] आर0एस0शर्मा, 'प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचानाए' पृ0–56।

[152] वैदिक इण्डेक्स जिल्द I, 257

[153] वही, पा०टे०सो०–2 ।

[154] ऋग्वेद, I-121,21 ।

[155] वही IV-57.8 ।

[156] वही IV-57 8 ।

[157] वही IV-57 6-71 ।

जुते हल की चर्चा है।[158] जुते खेत को 'क्षेत्र'[159] तथा उपजाऊ भूमि को 'उर्वरा'[160] कहा जाता था।

हल के अतिरिक्त कृषि कार्य मे प्रयुक्त होने वाले कुछ औजारो की भी चर्चा है, यथा खनित्र[161], (कुदाल) दात्र[162], (दरात) व सृणी[163]। फसल कटाई के पश्चात् गट्ठर बनाने[164] तथा खलिहान मे उनके मडाई का उल्लेख हुआ है।[165] इसके अतिरिक्त तितऊ (चलनी) तथा सूर्प[166](सूप) के प्रयोग से अन्न को भूसे से अलग करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

प्रमुख खाद्यान्नो मे 'धान्य'[167] शब्द का उल्लेख कुछ मूल अशो मे पाया गया है। परन्तु यह इतना सामान्य, अस्पष्ट एव व्यापक अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है कि किसी अन्न विशेष से इसका समीकरण कठिन जान पडता है। इसी प्रकार 'यव'[168] उनके द्वारा उत्पन्न प्रमुख अनाज था। यह या तो विभिन्न प्रकार के अनाजो का सामान्य नाम था[169] या फिर बहुत सम्भव है कि बाद के काल मे प्रयुक्त 'जौ' का सूचक रहा हो।

ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व के विश्लेषण से यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि पशुपालन को ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था के कम से कम प्रारम्भिक चरण में कृषि पर बढत हासिल थी। हॉ इस काल के उत्तरार्द्ध में कृषि ने अपना क्षेत्र विस्तार किया एव प्रतिष्ठा हासिल की होगी क्योकि कृषि को सन्दर्भित करने वाले अधिकांशत मण्डल बाद मे जोडे गये, सुझाए गये है।

जहॉ तक ऋग्वैदिक समाज मे शिल्प एव उद्योग के विकास का सवाल है यह अपने शैशव रूप मे विद्यमान थी। विविध शिल्प विशेषज्ञो मे 'तक्षन्' का स्थान

---

158 वही VIII-6 48-X-101 4 ।
159 वही III-2 1 ।
160 वही, III-8 7 ।
161 वही, I-179-70 ।
162 वही, VIII-78.10 ।
163 वही, I-58.4, 4.5 ।
164 वही VIII-78 10 ।
165 वही, X-48.7 ।
166 वही, X-71 2 ।
167 वही, I-117 21, VI-13 4 ।
168 वही, I-117-21 ।

सर्वोपरि प्रतीत होता है।[169A] यह लकडी का विभिन्न कार्य करता,[170] रथ बनाता जो आर्यों के लिए बहु उपयोगी था। यातायात के साधन गाडी (अनस्)[171] का निर्माण करता। उसकी सुन्दर नक्काशी की प्रशसा की गयी है।[172]

'कर्मकार'[173] धातु का काम करता था। यह चिडियो के पख से बनी धौकनी के सहारे धातु को आग मे गलाता एव तत्पश्चात् विभिन्न रूपाकार पात्रो को बनाता था।[174]

राधा कुमुद मुखर्जी ऋग्वेद से 'हिरण्यकार[175] (सुनार) परिचायक साक्ष्य के रूप में पेश करते है जो स्वर्णाभूषण गढता था और श्री मुखर्जी सुवर्ण प्राप्ति के स्रोत भी बताते है।[176]

वैदिक इंडेक्स के दृष्टान्तो से ज्ञात होता है कि उस समय चमडा कमाने की कला ज्ञात थी।[177] 'चमर्ण' नामक शिल्पी[178] पशुचर्म से थैले[179] और आच्छादन के अतिरिक्त कोडे लगाम और प्रत्यचा इत्यादि भी निर्मित करता था।[180]

कपडा बुनने की कला सर्वथा ज्ञात थी। बुनकर (वासोवाय)[181] का उल्लेख है जो, अपने करघे (वेम) पर ताना (ओतु) और बाना (तंतु) करके कपडा बुनता था।[182]

उल्लेखनीय है कि ऋग्वैदिक समाज मे सभी व्यवसायों को समान दर्जा प्राप्त था। किसी व्यवसाय को अपनाना अपनी स्वेच्छा पर था। इसमे आनुवाशिक तत्व अथवा भेदपरक भाव उत्तरदायी नहीं था। अन्यथा बिना किसी झिझक के वैदिक

---

169 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, वैदिक सस्कृति, प्रथम सस्करण–2007, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0–47।
169A वही, IX-112 1 ।
170 वही, I-16 9, III-60 2,X-86 5 ।
171 वही, III–33 9 ।
172 वही, I–105 18 ।
173 वही, X–72 2 ।
174 वही, V–30 15 ।
175 वही, I–122.2 ।
176 वही, VI–61.7, II–117.5 ।
177 वैदिक इडैक्स, I–234 257 ।
178 ऋग्वेद–VIII–5 38 ।
179 वही, X–106.10 ।
180 वही, I–121.6, VI I–47.26, 75 2 ।
181 वही, X–26.6 ।
182 वही, VI–2.9 ।

मत्रो के रचयिता अपनी माता को चक्की पीसने वाली तथा अपने पिता को चिकित्सक नही बताता। वह स्पष्ट उल्लेख करता है कि धन प्राप्ति के लिए हम भिन्न–भिन्न व्यवसाय अपनाते है।[183]

जहाँ तक क्रय–विक्रय का सम्बन्ध है, वस्तु विनिमय ही क्रय–विक्रय की प्रचलित प्रणाली जान पडती है। यह अलग बात है कि 'गाय' को हम मूल्य के एक इकाई के रूप मे व्यवहृत पाते है।[184] 'निष्क' जो आभूषण था[185], ऐसा लगता है कि यह मूल्य की एक निश्चित इकाई बनता जा रहा था। क्योकि सौ अश्वो के साथ सौ निष्क की प्राप्ति के सन्दर्भ मे सौ हारो का व्यवहारिक औचित्य नही जान पडता।[186] ऋण का प्रचलन हो गया[187] था। एक जगह ब्याज के रूप मे आठवे या सोलहवे भाग को ब्याज या मूल किसी रूप मे लौटाने का वर्णन है।[188]

इस प्रकार ऋग्वैदिक सामाजिक–आर्थिक पडताल के क्रम मे हमे उसके जन जातीय स्वरूप का ही बोध होता है जिसमे पशुचारी एवं कबिलाई तत्वो की प्रधानता थी। समाज का ढॉचा समतावादी आदर्शों पर आधारित था। समाज अपनी खानाबदोश आदतो पशुपालक प्रवृत्तियो एवं सतत् सघर्षशीलता के कारण उत्पादन, विनिमय, वितरण एव उपभोग न तो निश्चित कर सकता था और न ही कर सका। व्यापक युद्धरतता में व्यापार के लिए एव आपेक्षित अधिशेष उत्पादन के लिए शायद समय नही था, जो नगर के उदय के लिए आवश्यक है। आर०एस०शर्मा के अनुसार आर्यों में शहरी जीवन के अभाव के सन्दर्भ में उनकी आरम्भिक खानाबदोश आदतो और पशुपालन की प्रधानता का जितना हाथ था उतना उनकी सस्कृति के भौतिक आधार के अन्य किसी कमजोरी का नही।[189]

---

[183] वही, XI–112.3।
[184] वही, IV-24.10, VIII-1.5 (गाय के बदले इन्द्र प्रतिमा का क्रय)।
[185] वही, II-33.10।
[186] वही, III-4.74।
[187] वही, II-27.4।
[188] वही, VIII-47.17।
[189] शर्मा, आर०एस०, प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, (द्वितीय सस्करण, दिल्ली, 1993, पृ0–134।

उत्तर वैदिक अर्थव्यवस्था

इस काल तक आते–आते अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे अपने पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा परिवर्तन के लक्षण दिखाई देते है। सर्वाधिक निर्णायक परिवर्तन कृषि के क्षेत्र मे दिखाई देते है। लोहे का कृषि मे प्रयोग एव कार्यकुशलता से लैस होकर उत्तरवैदिक कालीन अर्थव्यस्था अधिशेष और उपभोग का ऐसा ताना–बाना बुनती है, जिसमे विविध शिल्पो एव शिल्पगत व्यवसायो के अभ्युदय एव व्यापक प्रचार–प्रसार आवश्यभावी था। तत्कालीन ग्रंथ इसके सक्षम साक्षी है।

इस काल तक आते–आते आर्यों ने कृषि कर्म की सम्भावनाओ को पहचान लिया था। जैसे–जैसे कृषि, अर्थव्यवस्था के केन्द्र मे स्थापित हो रही थी, उसी क्रम में आर्यों की जीवन पद्धति में स्थायित्व के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। कृषि की महत्ता का उद्घाटन राजसूय यज्ञो मे राजा के अभिषेक के अवसर पर पुरोहित के इस कथन से हो जाता है–हे राजन्! यह राज्य तुम्हे कृषि (कृष्यै),सामान्य कल्याण (क्षोमाय) तथा पोषण (पोषाय) के लिए दिया जाता है।[190] तैत्तरीय उपनिषद मे अन्न को 'ब्रह्म' मानते हुए समस्त प्राणियो की उत्पत्ति भरण–पोषण एव उसका लय हो जाना उसी अन्न को बताया गया है।[191]

कृषि कर्म मे 'हल' की उपादेयता को पूर्णत· पहचान लिया गया था। अथर्ववेद मे कहा गया है कि सबसे पहले पृथ्वी ने हल और कृषि को जन्म दिया।[192] इस समय हल को खीचने के लिए चार से लेकर चौबीस तक बैल की आवश्यकता पडती थी।[193] निश्चय ही ये हल काफी विशाल रहे होगे। हल का फाल काफी नुकीला होता था[194], यह इतना कठोर होता था कि इसकी तुलना हड्डी से की गयी है।[195] सम्भवत· धातु निर्मित फाल का भी प्रयोग होने लगा था। शतपथ ब्राह्मण मे

[190] द्रष्टव्य, जी0एस0पी0मिश्र, 'प्राचीन भारतीय समाज एव अर्थव्यवस्था, पृ0–118 ।
[191] तैत्तरीय उपनिषद–3 3 ।
[192] अथर्ववेद 8 10 24 ।
[193] दि वैदिक एज, पृ0–460 ।
[194] वैदिक इडेक्स जि0–1 509 ।
[195] अथर्ववेद, 13 4 4 9 ।

कृषि कर्म की सारी प्रक्रियाओ का विस्तृत विवरण आया है, जुताई, बुवाई, लवनी और मडनी।[196]

खाद्यान्न के रूप मे ऋग्वेद मे केवल 'यव' का ही विस्तृत विवरण है परन्तु इस काल तक 'ब्रीहि' गेहूँ के अतिरिक्त मूँग, उडद, तिल एव मसूर आदि की खेती की जाने लगी थी।[197] अथर्ववेद मे दो प्रकार के धान का प्रसग आया है–ब्रीहि एव तन्दुल।[198]

वर्ष मे दो फसलें होती थी। तैतरीय सहिता मे वर्णन आया है कि 'जौ' शीतकाल मे बोया जाता था और गर्मी मे पक जाता था।[199] धान वर्षा काल मे बोया जाता था और शरद काल मे पक जाता था। मूग, उडद, और तिल वर्षा काल मे बोये जाते थे, और शरद काल तक पक जाते थे।[200]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर वैदिक आर्यों की अर्थ सरचना मे कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था। जैसे–जैसे कृषि अर्थव्यवस्था के केन्द्र मे स्थापित होती जा रही थी, वैसे–वैसे आर्यों के यायावरी जीवन में स्थायित्व के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे।

परन्तु पशुपालन भी समाप्त नही हुआ था अभी भी यह कृषि के साहचर्य मे जीविकोपार्जन का सशक्त आधार था। कृषि में पशुओं की महत्ता असदिग्ध थी, कृषि कर्म मे बढती उपयोगिता ने पशुओ की हत्या पर स्वत· विराम लगा दिया था।[201] वस्तुतः जुताई से लेकर खलिहान मे अन्न की ढुलाई तक पशु हमेशा उपयोगी थे, बेहतर अपज के लिए ये गोबर के रूप मे प्राकृतिक खाद भी उपलब्ध करते थे।[202] धन के रूप में पशुओं की बडी महत्ता थी।[203] आर्यों के लिए पशु 'श्री' एव 'सम्पत्ति' के प्रतीक थे।[204] इनकी बढोत्तरी के लिए तमाम उपक्रम किये जाते थे।[205]

---

[196] शतपथ ब्राह्मण, 1623, 1613 ।
[197] वाजसनेयी सहिता, 18 12, 19 22, 21 29 ।
[198] अथर्ववेद, 8 7 20, 10 9 28 ।
[199] तैत्तरीय सहिता–5 1 7 3 ।
[200] तैत्तरीय सहिता–7 2 10 2 ।
[201] शतपथ ब्राह्मण, 3 1 2 3 ।
[202] शतपथ ब्राह्मण 2 1 1 7, अथर्ववेद, 3 14 3 4, 19 31 3 ।
[203] ऐतरेय ब्राह्मण 8 22 'पुरोहित को पशुधन दान के उल्लेख के प्रसग मे'।
[204] अथर्ववेद, 1 16 3, पचविश ब्राह्मण 13 2 2 (श्री वै पशव) ।

इस प्रकार कृषि, पशुपालन और लोहे के प्रयोग से आयी तकनीकी दक्षता से लैस होकर उत्तर वैदिक अर्थव्यवस्था; अधिशेष और उपभोग का ऐसा ताना–बाना बुनती है जिसमें विविध शिल्प एव शिल्पगत व्यवसायो का अभ्युदय एव व्यापक प्रचार–प्रसार तो आश्वयभावी ही था, तत्कालीन ग्रथ इन उद्योगो एव व्यवसायो के विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराते है।

वाजसनेयी सहिता[206] एव तैत्तरीय ब्राह्मण[207] मे 'पुरूषमेध यज्ञ' के समय दी जाने वाली बलि के लिए विविध श्रेणी के मनुष्यो की सूची दी गयी है जो आश्चर्यजनक रूप से काफी लम्बा है। इसमें–

मागध (परवर्ती कालीन चारण–भाटो के समान एक वर्ण) शैलूष (अभिनय से मनोरजन करने वाले) सूत (मागध के समान), सभाकार (सभा का सदस्य) रथकार (रथ बनाने वाला तथा बढई) कुलाल (कुम्हार), कर्मार (लोहार) मणिकार (अभूषण बनाने वाला) यप (नाई) इषुकार (बाण बनाने वाला), धनुष्कार (धनुष बनाने वाला), ज्याकार (धनुष की डोरी बनाने वाला) रज्जु–सर्ज (रस्सी बनाने वाला) मृगयु (शिकार से आजीविका चलाने वाला), श्वनिन् (कुत्तो को पालने वाला) पुजिष्ठ (सभवत. पक्षियो को पालने वाला) विदलकारी (डालिया बनाने वाली स्त्री), कष्टकीकारी (काटो का काम करने वाली) पेशकारी (कपडो का काम करने वाली), भिषज् (चिकित्सक) नक्षत्रदर्श (नक्षत्र विद्या का विशेषज्ञ), हस्तिप (हाथी पालने वाला) अयूवप (घोडे पालने वाला), गोपाल (गाय पालने वाला) अविपाल (भेड पालने वाला), अजपाल (बकरी पालने वाला) कीनाश (कृषि कर्म में प्रवृत्त) सुराकार (मदिरा बनाने वाला) गृह्य (चौकीदार) क्षत्ता (रथ हाकने वाला) अनुक्षत्ता (क्षत्ता के अधीन) दार्वाहार (लकडहारा) पेषिता (मूर्तिकार) वास–पल्पुली (धोबन) रजमित्री (रगरेजन), पिशुन (दूसरों के विषय मे सूचना देने वाला) क्षत्ता (द्वारपाल) अनुक्षत्ता (उपद्वारपाल), अश्वसाद (घुडसवार) भागदुध् (कर इकट्ठा करने वाला) अंजनीकार (अंजन बनाने वाला) कोशकारी (तलवार की म्यान बनाने वाली) आजिनसन्ध (हरिण चर्म का काम करने वाला), चर्मार (चमार) धीवर (मछली पकड़ने वाला), शौष्कल (सूखी मछली का

[205] अथर्ववेद, 2.26 3, 14 6 59 ।
[206] वाजसनेयी सहिता, 30 7 ।

धन्धा करने वाला), हिरण्यकार (सुनार) वणिज (बनिया), वनप (वन –रक्षक) वीणावाद (वीणावादक) तनुवध्म (वॉसुरी वादक), शंखध्म (शख वादक), वशनर्तिन् (नट) ग्रामणी (गॉव का मुखिया) गणक (ज्योतिषी) अभिक्रोशक (घोषणा करने वाला)।

उर्पुक्त सूची मे व्यवसायो की विविध कोटियॉ दिखाई पडती है। इनमे कुछ का स्वरूप तो विशुद्धत औद्योगिक है, जबकि कुछ अन्य विविध दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के निमित्त श्रम विभाजन के आधार पर निर्मित सामाजिक वर्ग है।

अथर्ववेद मे व्यापारियो द्वारा अपना माल लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर उसे बेचने की चर्चा है।[208] इस काल के मूल पाठ मे समुद्र तथा समुद्र गमन का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वैदिक काल मे ही धनार्जन के लिए तत्कालीन लोगों के समुद्र गमन की बात हम जानते है, जो व्यापार के निमित्त समुद्र की जानकारी को पुख्ता आधार प्रदान करता है। सौ डण्डो वाले जलपोत का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[209]

जहॉ तक धातु के प्रयोग का प्रश्न है ऋग्वेद मे 'अयस्'का अर्थ भले ही स्पष्ट न रहा हो परन्तु उत्तर वैदिक काल मे लोहे के लिए श्याम अयस्[210] और तॉबे के लिए लोहित अयस्[211] अथवा लोहायस[212] शब्दो का उल्लेख हुआ है। तॉबा भिन्न–भिन्न पात्र बनाने के काम आता था।[213]। सीसे की गोलियॉ जुलाहे ताने मे लटकाते थे।[214] चॉदी आभूषण,[215] बरतन[216], निष्क नामक गोल आभूषण या सिक्के बनाने के काम आती थी।[217] सोना गले के निष्क, कर्णशोभन नामक आभूषण और पात्र बनाने के काम आता था।[218]

---

[207] तैत्तरीय ब्राह्मण, 3 4 ।
[208] अथर्ववेद 3 15 ।
[209] वाजशनेयी सहिता 31 3 ।
[210] अथर्ववेद, 11 3 17, 9 .5 4 ।
[211] अथर्ववेद, 11 3 1 7 ।
[212] शतपथ ब्राह्मण, 5 4 1 2 ।
[213] अथर्ववेद 8 10 22 ।
[214] वाजसनेयी सहिता, 19 80 ।
[215] शतपथ ब्राह्मण, 12 8 3 11 ।
[216] तैत्तरीय सहिता, 2 2 9 7 ।
[217] पचविश ब्राह्मण 17 1 14 ।
[218] शतपथ ब्राह्मण 5 1 2.19 ।

जहॉ तक क्रय–विक्रय मे सिक्के के प्रयोग का सम्बन्ध है इसके लिए निश्चित रूप से किसी सिक्के का उल्लेख तो प्राप्त नही होता है, विभिन्न उल्लेखो से इतना स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक लोग निश्चित मूल्य के कुछ मानको से अवश्य परिचित हो गये थे । शतपथ ब्राह्मण मे शतमान[219] का उल्लेख है जिसकी तौल सौ रत्ती थी। इसे सुवर्ण खण्ड माना जा सकता है।[220] इसी प्रकार 'निष्क' जिसका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इस समय भी प्रचलन मे रहा होगा। परन्तु इन सबके बावजूद ऐसा लगता है कि इस समय भी क्रय–विक्रय का प्रधान माध्यम वस्तु–विनिमय ही था।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक युग का कालचक्र पूरा होते–होते भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था यायावरी पशुचारी और मात्र निर्वाह की अर्थव्यवस्था को पृष्ठभूमि में ढकेल कर धीरे–धीरे विकास के विविध चरणो से निकलता हुआ गम्भीर और द्रुतगामी परिवर्तन के कगार पर आ खडा हुआ था।

वास्तव मे कृषि का विकास इस दौर मे एक महत्वपूर्ण चरण था। इसके पूर्ववर्ती आखेट और आहार सग्रह के चरण ही नही, अपितु पशुचारण काल मे भी उत्पादन की प्रकृति नश्वर थी। दूध, फल, कन्दमूल, मांस इत्यादि उत्पाद बहुत दिनो तक संग्रहीत नहीं किये जा सकते थे, अस्तु इन उत्पादों के बल पर एक लम्बे समय तक निश्चिन्तता नही प्राप्त की जा सकती थी।

कृषि के विकास के साथ ही एक ऐसा उत्पाद हासिल हुआ। जिसका अपेक्षाकृत लम्बे समय तक संग्रह किया जा सकता था और इस सग्रह के बल पर न सिर्फ एक लम्बे समय तक निश्चिन्तता हासिल की जा सकती थी अपितु इस अतिरिक्त संचित भण्डार के बल पर दूसरों को अपना उपकरण भी बनाया जा सकता था।

इस प्रकार कृषि के प्रसार ने तत्कालीन लोगों के जीवन को जहॉ एक ओर एक स्थायी आधार प्रदान किया वहीं बढती हुई कृषि पैदावार ने किसानो के

---

[219] शतपथ ब्राह्मण, 5 5 6।

[220] शतपथ ब्राह्मण, 12 7.2.13, 13 2 3.2 ।

भरण–पोषण के अतिरिक्त कुछ अधिशेष की सम्भावना को भी जन्म दिया और इस अधिशेष ने उपभोग के द्वार खोल दिये। जिसकी पूर्ति मे विविध शिल्पी एव व्यवसायी लगे, उन्हे अपने श्रम का उचित मूल्य और अपनी शिल्पीय दक्षता की प्रतिष्ठा मिली। उत्तरोत्तर विकास की इस प्रक्रिया ने घुमन्तू पशु चारी एव मात्र निर्वाह की अर्थव्यवस्था को पृष्ठभूमि मे ढकेल कर कृषि आधारित अधिशेष एव बाजारोन्मुखी समाज की नींव रख दी और यही उत्पादन, अधिशेष और उपभोग की अर्थव्यवस्था, नगर एव नगर–जीवन के विकास का प्रस्थान बिन्दु था।

वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था

एक स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब उत्तर वैदिक अर्थव्यवस्था द्वारा कृषि, कृषि अधिशेष एव शिल्प की विशिष्टता का सुव्यवस्थित आधार भूत सरचना की आधारशिला रख दी गयी तो आगे इस पर कृषि अधिशेष, विकसित औद्योगिक एवं व्यवसायिक समाज की आर्थिक गतिविधियॉ क्या रही होगी?

वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था की आलोच्य कालावधि (लगभग 600 ई०पू० से 300 ई०पू०) के प्रारम्भिक चरण मे ही दस्तकारी उद्योग, व्यापार एव वाणिज्य तथा अन्य व्यवसायगत पेशो मे अभूतपूर्व वृद्धि की शुरूआत हम पाते है, प्रो० रामशरण शर्मा इस अभूतपूर्व वृद्धि को लौह तकनीक एव तत्सम्बन्धी उपकरणों से असम्बद्ध नही मानते।[221] वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक चरण जिसे बुद्ध कालीन अर्थव्यवस्था भी कह सकते है, की प्रमुख विशेषता है, नगरीय अर्थव्यवस्था का विकास।

आलोच्य कालावधि के प्रारम्भिक चरण मे दस्तकारी उद्योग, कृषि अधिशेष, व्यवसाय एवं व्यापार की अभूतपूर्व बृद्धि एव इस काल मे नगरीय अर्थव्यवस्था के विकास को अगर एक साथ मिलाकर देखे तो एक अन्तर्सम्बन्ध जरूर उभरता है और दोनों में रामशरण शर्मा जैसे विद्वान लौह एवं लौह तकनीक की भूमिका से इन्कार नहीं करते।

---

[221] शर्मा, रामशरण, 'प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऐं, 1992 (पु०मु० 1993 राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ० 142 ।

किन्तु लोहे के आविष्कार मात्र से नगरीकरण को जोड देना गलत है, इसका निषेध तो इस बात से ही हो जाना चाहिए कि सैधव उपत्यका मे रचे–बसे विशाल नगरो के लिए जो चीजे जरूरी नही थी उनको इस दौर का प्रधान कारण मान लेने का कोई औचित्य नही बनता।

किन्तु इसका मतलब यह नही कि कृषि उत्पादनो तथा उन्नत तकनीक का नगर सभ्यता के विकास से किसी तरह का कोई सम्बन्ध नही है। सम्बन्ध है पर प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष।[222] इसकी भूमिका पर इसके गुण तथा परिणाम को सामने रखकर विचार किया जाना चाहिए। वास्तव मे तत्कालीन समय मे कोसल तथा मगध के लोगों के भौतिक और सामाजिक जीवन मे परिवर्तन के कारणो तथा कालक्रम से सम्बद्ध कुछ परिकल्पनाएँ छठी शताब्दी ई०पू० के पश्चात् घने जगलो से आच्छादित मध्य गगा घाटी के तटवर्ती क्षेत्रों को बस्ती तथा कृषि के उपयुक्त बनाने में लोहे के उपकरणो की निर्णायक भूमिका रही है और इस प्रक्रिया से द्वितीय नगरीकरण की समस्या भी सम्बद्ध है।[223]

वास्तव मे लोहे के उपकरणो ने गगा घाटी के मैदान के जगलो की सफाई एवं मिट्टी की जुताई मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की[224], जो प्रारम्भिक लकडी, कॉसे तथा तॉबे के उपकरणों से उतने पैमाने पर सम्भव नही था। क्योकि मध्य गगा घाटी के तट के जलोढ क्षेत्रो में कठोर चिकनी मिट्टी के लिए इस प्रकार के फाल प्रभावी नही होते। पटना जिले के कुछ भागो में 'केवाल' नाम से जानी जाने वाली मिट्टी इतनी कठोर है कि एक बार सूखने पर लोहे के फाल भी कभी–कभी इसे तोडने मे अशक्त पाए जाते हैं। इसी प्रकार शोधार्थी का गृहजनपद, गाजीपुर के मुहम्मदाबाद तहसील मे स्थित कुछ क्षेत्र जिसे 'करइल क्षेत्र' के नाम से जाना जाता है आज भी ऐसी काली मिट्टी का क्षेत्र है जो सूख जाने पर लोहे के फाल द्वारा भी जुताई नही की जा सकती। अधिक से अधिक लकडी के फाल का उपयोग पूर्वी उत्तर–प्रदेश

---

222 सिह, भगवान, हडप्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, 1977 (तृतीय सस्करण) दिल्ली, पृ० 467।

223 शर्मा, रामशरण, आयरन एण्ड अर्बनाइजेशन इन द गगा बेसिन, 'द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जि०1, भाग–1, 1974 पृ० 98–103 ।

224 ठाकुर, विजय कुमार, 'अर्बनाइजेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1981, पृ० 340 ।

और बिहार के कुछ मुलायम व रेतीली मिट्टी वाले खण्डो मे किया जा सकता था और इस प्रकार के क्षेत्र बहुत ही कम रहे होगें।[225]

बुद्ध के काल मे गगाघाटी के मैदान मे जगलो की सफाई एव मिट्टी की जुताई में प्रयुक्त लौह उपकरणो की भूमिका पर शकाएँ भी व्यक्त की गयी है। जैसा कि घोष ने आग, तॉबा तथा कॉसे के उपकरणो द्वारा इनकी सफाई पर जोर दिया है तथा लोहे के उपकरणो की भूमिका पर सदेह व्यक्त किया है।[226] इन्होने मिस्र का उदाहरण देते हुए लौह उपकरणों के महत्व को नकारने का प्रयास किया है। इनके अनुसार जैसा कि मिस्र के ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित पिरामिड लोहे के उपकरणो के प्रयोग के बिना ही निर्मित किये गये थे।[227] यहॉ के० टी० एस० सराव के इस मत को सन्दर्भित करना अप्रासगिक न होगा कि सभ्यताओ के तुलनात्मक अध्ययन के लिए, जिस प्रकार से समुद्री छोर, रेगिस्तान एव पहाडो पर रहने वाले लोगो की भिन्न–भिन्न जरूरतें होती है और वे भिन्न–भिन्न तरीके से अपने वातावरण के साथ पारस्परिक क्रिया करते है। यही बात गगाघाटी एव मिस्र की स्थितियो पर लागू की जानी चाहिए।[228] जैसा कि विजय कुमार ठाकुर ने घोष के मत के आलोक में कहा है कि वे भूल जा रहे है कि मिस्र मे सिर्फ पॉच इन्च बरसात होती है, वहॉ की जमीन पथरीली है और कृषि का अभाव है। मिस्र की समस्या ठीक उसी तरह की समस्या नहीं है जैसा की गंगा घाटी के मैदान की।[229] गंगाघाटी में बरसात बहुत अधिक होती थी अत विभिन्न प्रकार के वनस्पति एव गहरी तथा कठोर जडो वाले साल, शीशम, महुआ, पीपल और इनकी ही तरह के और भी कठोर जडो वाले पेड होते थे। आग से जलाने के बाद भी इनकी गहरी जडो को हटाया जाना एक समस्या थी जिन्हें लोहे के उपकरणों कुल्हाडियो के बिना साफ नही किया जा सकता था क्योंकि तॉबे एवं कॉसे के हथियार उतने कठोर नही होते थे। जिससे इन घने जंगलों एवं उनके जड़ों को साफ किया जा सके।[230]

---

225 शर्मा आर०एस० भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाऐं नई दिल्ली, (पु०मु०) 1993, पृ० 138 ।

226 घोष, ए० 'द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला 1973 पृ० 8–9 ।

227 वहीं, पृ०–7 ।

228 सराव, के०टी०एस०, अर्बन सेन्टर्स एण्ड अर्बनाइजेशन ऐज रीफलेक्टेड इन द पालि, बिनय एण्ड सुत्त पिटकाज, 1990 (प्रथम सस्करण) दिल्ली, पृ० 36।

229 ठाकुर, विजय कुमार पूर्वोक्त, पृ० 34।

230 वहीं, पृ० 34।

इस तरह कृषि में लौह तकनीक के प्रयोग से कृषि भूमि का एक विशाल अछूता क्षेत्र उपभोग के योग्य बनाया जा सकता था, और बनाया गया। पुन: उन्नत तकनीकी के प्रयोग से कृषि–भूमि का अधिकतम उपयोग किया जा सकता था, जितना आदिम लकडी, पाषाण इत्यादि के उपकरणो से सम्भव नही था।

इस प्रकार कृषि मे लौह तकनीक के प्रयोग ने किसानो के पास अपनी अपरिहार्य आवश्यकताओ की पूर्ति के बाद कुछ अधिशेष की सम्भावनाओ को जन्म दिया। इस अधिशेष का अपेक्षाकृत थोडे से लोगो द्वारा खसोट लिया जाना और इस खसोट से उत्पन्न अनुपात हीनता समृद्धि के विकास के लिए उनके द्वारा उपभोग, विलासिता और सौख्य के अनावश्यक उत्कृष्ट स्तरो और वस्तुओ की मॉग अन्ततः वाणिज्य और व्यापार के विकास का आधार बनी थी, और इससे होने वाले क्रमशः और उत्तरोत्तर बृद्धि ने नगर तथा नगर–सभ्यता के जन्म का मार्ग प्रशस्त किया था।

किन्तु लेविस ममफोर्ड प्रभृति विद्वानों का विचार है कि अतिरिक्त उत्पादन के लिए आवश्यक तकनीकी योग्यता के होते हुए भी उसका उत्पादन तब तक नही हो पाता जब तक की उसकी पहले से कोई आवश्यकता न हो अथवा आवश्यकता होते हुए भी उसे प्राप्त करने की शक्ति न हो।[231] जैसा कि ए० घोष[232] तथा डी०के० चक्रवर्ती[233] का विचार है कि राजनैतिक शक्ति ही वह पहली महत्वपूर्ण इकाई थी जो लोगो को प्रारम्भिक ऐतिहासिक नगरों के लिए अपने अधिशेष पर अशदान देने के लिए बाध्य करती थी। जैसा कि गगाघाटी के सम्बन्ध में के०टी०एस० सराव का विचार है कि जब से यह मजबूत राजनैतिक ताकतो का केन्द्र रही है यहॉ हमेशा से अतिरिक्त उत्पादन को प्राप्त करने मे सफल रही है और यहॉ जो कुछ कृषि मे विकास हुआ ऐसा नगरीय केन्द्रों के मॉग तथा लौह तकनीक के प्रयोग के कारण हुआ।[234]

---

[231] दे० घोष, एन०एन०, 'भारत का प्राचीन इतिहास (सम्पादक ओम प्रकाश) नवीन अनु० के साथ परिवर्द्धित सस्करण (तृतीय हिन्दी सस्करण) 1984, पृ० 93।

[232] घोष ए, द सिटी इन अर्ली हिटारिक इण्डिया शिमला, 1973 पृ० 20–21 ।

[233] चक्रवर्ती डी०के०, कन्सेप्ट ऑव अर्बन रिवाल्युशन एण्ड द इण्डियन कान्टेक्स, पुरातत्व स० 6 (1972–73) पृ० 31 ।

[234] सराव, के०टी० एस०, अर्बन सेन्टर एण्ड अर्बनाइजेशन रिफ्लेक्लेड इन द पालि विनय एण्ड सुत्त पिटक्स, दिल्ली, 1990, पृ० 23।

अस्तु इस सारी प्रगति के बावजूद उक्त मत के आलोक मे नगरीकरण मे राज्यो अथवा महाजनपदो की भूमिका को भी नकारा नही जा सकता। लगभग इसी समय पहले से विस्तृत उत्तर वैदिक राजत्व को और अधिक विस्तृत करने वाले गणतन्त्रात्मक एवं राजतन्त्रात्मक महाजनपदो के रूप में राज्यो का अभ्युदय हम पाते है। जिसका प्रशासकीय आधार एक विस्तृत नौकरशाही पर टिका था, जिनका पोषण कृषको से कर के रूप मे प्राप्त अधिशेष अथवा गॉव और नगर के मध्य असमान व्यापार मे होने वाले मुनाफे पर टिका था।

कृषि में लौह तकनीक के प्रयोग ने किसानो को इतना समर्थ बना दिया था जो नगरों मे रहने वाले परजीवी वर्ग तथा पुरोहित, राजपदाधिकारी, शिल्पी, कारीगर, सौदागर इत्यादि के पोषण की आवश्यकता पूरी कर सके। बिना पुष्ट ग्रामीण आधार के न तो जनपदीय राज्य सम्भव था और न ही नगरो का अस्तित्व। क्योकि नगरो में ऐसे लोगो का बाहुल्य होता है जो खेतिहर नही होते,[235] किन्तु नगरो मे उत्पादक पक्ष की भी अनदेखी नही की जा सकती।

इसमे सन्देह नही कि नगरो में बाजार होते है, अत नगर व्यापार एव वाणिज्य सम्बन्धी गतिविधियो के स्वत केन्द्र हो जाते है। जहॉ तक गगाघाटी मे स्थित नगरो का सम्बन्ध है जैसा कि के०टी०एस० सराव ने उल्लेख किया है कि बुद्ध के समय में यहॉ कोई विदेशी व्यापार नही होता था, लेकिन आन्तरिक व्यापार था। यहॉ तक कि तक्षशिला जो डेरियस के समय मे व्यापार मे लगा हुआ था, से भी हमे फारस से आयातित सामानों का कोई प्रमाण नही मिलता। इसलिए यह कहा जा सकता है कि गगाघाटी के प्रथम नगरीय उत्पत्ति मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कोई भूमिका नही थी। लेकिन यह समुद्र के किनारे बसे नगरो के विकास मे मदद करता था।[236]

जहॉ तक आन्तरिक व्यापार का सम्बन्ध है इस सम्बन्ध में श्री सराव का विचार है कि आन्तरिक व्यापार नगरीय सभ्यता के कारण उत्पन्न हुआ (न कि व्यापार के कारण नगर) लेकिन इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब

---

[235] सराव, के०टी०एस०, पूर्वोक्त, पृ० 15 ।

व्यापार चलने लगा तब यह प्रारम्भिक केन्द्रो के लिए बरदान साबित हुआ।[237] दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि कुछ स्तर के पश्चात् व्यापार और नगर दोनो दूसरी ताकतो के साथ मिलकर परस्पर आपसी सम्बन्धो को बनाने मे मदद करते थे।

यद्यपि व्यापारिक गतिविधियो मे तेजी का बहुत गहरा सम्बन्ध आर्थिक समृद्धि और अधिशेष उत्पादन कुछ थोडे से लोगों के हाथो मे सिमट आने से है, पर हमे यह नही भूलना चाहिए कि नगर–केन्द्रों से न तो कभी खेती की जा रही थी, न ही वे इस दृष्टि से सबसे उपयुक्त स्थल पर बसाये ही गये थे। वे सदा विपणन, वितरण तथा प्रशासन के ही केन्द्र रहे है, किन्तु बिना कृषि पुष्ट आधार के नगरो का अस्तित्व भी सम्भव नही था, अस्तु इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि खाद्यान्न उत्पादन मे नगरो मे रहने वाले कारीगरो के उच्च्य तकनीकी ज्ञान ने भी अपना योगदान दिया होगा। अत· कृषि की उन्नति हेतु तत्कालीन उच्च्य तकनीक से विकसित कृषि उपकरण भी वे अवश्य बनाये होंगे।

इस प्रकार विविध शिल्पियो एव तरह–तरह के कामगारों के तकनीकी ज्ञान का खाद्यान्न उत्पादन मे योगदान को भी नकारा नही जा सकता। अतः लोहे के तकनीक के प्रयोग से आलोचित कालावधि मे जहॉ एक ओर कृषि आधार क्षेत्र को विस्तृत करने मे सहायता मिली वही तकनीकी ज्ञान ने शिल्पगत दक्षता को भी बढावा दिया होगा। कृषि अधिशेष को किसी न किसी रूप मे अधिगृहीत कर एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जिसके अनुपात हीन समृद्धि ने विलासिता और सैख्य के वस्तुओ की मॉग ने अन्तत शिल्पगत दक्षता को बढावा दिया। शिल्पी समूह को इनके कार्य का उचित मूल्य मिलने लगा जिसने अनिवार्यत· उन्हें कलात्मक वैशिष्ट्य के लिए प्रेरित किया होगा। अपने माल को और अधिक प्रतिस्पर्धियो की तुलना मे और अधिक अच्छा बनाने के लिए दस्तकारो एवं शिल्पियों मे होड उत्पन्न हुई और इन दस्तकारों और शिल्पियो के माल को दूरस्थलो मे ले जाकर बेचने वाले प्रधान

---

[236] वहीं, पृ०–30 ।
[237] वही, पृ० –'30 ।

व्यापारियो द्वारा इनका प्रोत्साहन किया गया, परिणाम स्वरूप अन्तत· व्यापार एवं वाणिज्य में वृद्धि हुई।

यही वह समय था जब राजनैतिक जनपद बनने शुरू हुए थे, अत नगरीकरण मे राज्यो अथवा महाजनपदो की भूमिका को भी नकारा नही जा सकता। इन राज्यो ने सारी व्यवस्था को एक स्थान पर इकट्ठा करने का कार्य किया। अगुत्तर निकाय[238] जैसे ग्रथ इन महाजनपदो की सूची उपलब्ध कराते है जो इस समय मौजूद थे इनमें (1) अग (2) मगध (3) काशी (4) कोसल (5) वज्जि (6) मल्ल (7) चेदि (8) वंस (9) कुरू (10) पचाल (11) मत्स्य (12) शूरसेन (13) अश्मक (14) अवन्ति (15) गान्धार (16) काम्बोज ।

इसके पहले 12 महाजनपदों का उल्लेख 'जनवसमसुत्त' मे हुआ है।[239] दीघ निकाय[240] में अन्यत्र जिसका उल्लेख महावस्तु[241] मे भी सात जनपदो और इनके साथ ही इनके मुख्य नगरो का उल्लेख प्राप्त होता है – (1) कलिग, राजधानी दतपुर (2) अश्मक, राजधानी पोतन (3) अवति, राजधानी महिष्मति (4) सौवीर, मुख्य नगर रोरूक (5) विदेह, राजधानी मिथिला (6) अग, राजधानी चपा (7) काशी, राजधानी वाराणसी।

इस प्रकार राजकीय परिस्थितियो के कारण प्रत्येक जनपद अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अपनी राजधानी किसी सुरक्षित तथा आवश्यकता के अनुकूल भाग में बनाई। उन्हे सुरक्षा की चिन्ता तथा सम्पन्नता की अभिव्यक्ति के दुहरे तकाजो से सुदृढ रक्षा साधनो का निर्माण किया। जैसा कि के०टी०एस० सराव ने उल्लेख किया है कि नगरो की दृढ व्यवस्था उनके राजनैतिक महत्व पर निर्भर करती है, उन्हे आन्तरिक और वाह्य दोनो समस्याओ से बचाना होता है, अत· नगर के लिए किसी राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत इसके दृढ और कडी सुरक्षा प्रणालियो का महत्व बहुत अधिक होता है। जैसा कि राजगृह और पाटलिपुत्र प्रकरण इसका एक उदाहरण है। जब पाटलिपुत्र मगध की राजाओ की राजधानी बन गई तब राजगृह

[238] अगुत्तर निकाय, 1 213, 4 252, 256, 260।
[239] दीघनिकाय, 2 200
[240] वही, 2 235
[241] महावस्तु 3 208, 209।

की किलेबन्दी पाटलिपुत्र के पक्ष मे नकार दी गयी। एक नगरीय केन्द्र विशेष कर राजधानी किलेबन्दी और सुदृढ सुरक्षा व्यवस्था की मॉग करता है, वे सारे नगर जो आगे चलकर राज्यो अथवा महाजनपदो की राजधानियॉ बने उनके सुरक्षा को नकारा नहीं जा सकता था।[242] क्योकि सुरक्षा ही उस समय उनके दिल और दिमाग थे। जिसके बिना वे ठीक से कार्य नही कर सकते थे। अस्तु इस प्रकार की सुरक्षा की मॉग और तत् प्रेरित योजनाओ ने परिखा एव प्राकारो से परिवेष्ठित अनेक नगरो और दुर्गों को जन्म दिया था।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के इस अध्याय मे सर्वप्रथम कैम्बे की खाडी से समुन्तरित एवं समुद्र के गहरे जल में अन्तर्निहित नगर तथा नगर–जीवन के साक्ष्यों को सन्दर्भित करते हुए सैन्धव नगरो के पतन मे आर्यों की भूमिका को टटोलने का प्रयास किया गया है, इसके पश्चात प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर–जीवन के प्रारम्भ होने के साक्ष्यों का गहन गवेषणा के तहत विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्यिक साक्ष्यो में सन्दर्भित नगर तथा नगर–जीवन के साक्ष्यो का अवलोकन तथा अद्यतन पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्डो, यथा काले तथा लाल मृद्भाण्ड, गेरूवर्णीय मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काली चमकीली (एन०बी०पी०) मृद्भाण्ड तथा इसके सम स्तरो से प्राप्त अन्य पुरावशेषो, स्थायी निवास के साक्ष्यों एव उनके द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सामग्रियो का एक क्रमवार विवेचन किया गया है।
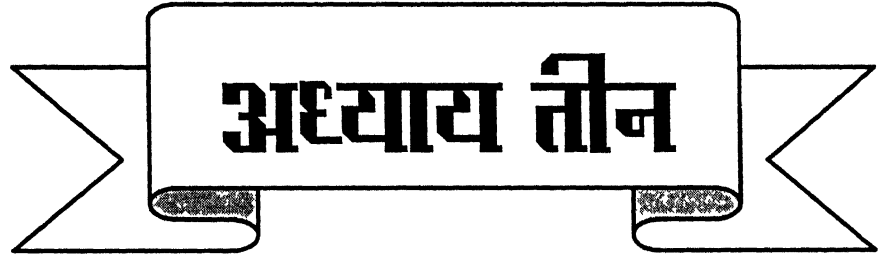
इस अध्याय के दूसरे भाग मे गंगाघाटी में नगरीकरण को प्रोत्साहित करने वाले आर्थिक कारको का गहन सर्वेक्षण के तहत् ऋग्वेद से लेकर उत्तरवैदिक एव वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में पशुपालन, कृषि एव व्यापार तथा साथ ही विविध शिल्प एव औद्योगिक विकास के गहन गवेषणा के तहत् इसके विकास क्रम तथा समय–समय पर हुए परिवर्तनो तथा परिवर्धनों को रेखाकित करने का प्रयास किया गया है।

---

[242] के०टी०एस० सराव, पूर्वोक्त, पृ० 17।

नगरीकरण मे कृषि तथा कृषि अधिशेष की महत्ता एव इनको प्रोत्साहित करने वाले लौह तकनीक, जनपद तथा महाजनपदो की भूमिका एव नगरीकरण के प्रोत्साहन मे व्यापार के योगदान की सभावनाओ को टटोलने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

वैसे अधीत् कालीन अर्थ संयोजन के विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्षित होता है कि पशुपालन से कृषि तथा कृषि से वाणिज्य एव व्यापार तक की अर्थव्यवस्था क्रमश· विकसित होती हुई और अपने विभिन्न उपादानो को जोडती हुई आगे बढ रही थी और अन्तत अपने आवश्यक सभी उपादानो को जोडकर लगभग छठी शताब्दी ई०पू० मे द्वितीय नगरीय क्रान्ति के रूप मे हमारे समाने आयी।

OOO

अध्याय तीन

''प्रारम्भिक बौद्ध कला में नगरीकरण तथा नगर–जीवन' पर प्रकाश डालने वाले प्रमुख स्रोतों का अध्ययन एवं आकलन''

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित 'नगरीकरण एव नगर–जीवन' के अध्ययन की दृष्टि से भरहुत, सॉची, अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा मे निर्मित स्तूप अतीव महत्व रखते है। इन स्तूपो पर उत्टकित दृश्य बौद्ध कला के स्मारकीय गौरव के उस महासौगान्धिक पुष्प के समान है, जिसका दिव्य सौरभ आज भी उस सुरुचि पूर्ण कला के रूप में हमारे सामने आती है, जो उसके वास्तु अवशेषो के शिलाकित कथानको मे सुरक्षित हैं। ये दृश्य न सिर्फ धार्मिक भावनाओ और विश्वास को व्यक्त करते है, अपितु वेशभूषा, परिधान तथा शिष्टाचार सम्बन्धी व्यवहार को भी संसूचित करते है। इन दृश्यो से हम भारत के जन साधारण के मानस और आदतो के सम्बन्ध मे एक अन्तर्दृष्टि प्राप्त करते है।

यद्यपि इन शिलाकित कथानको का उद्देश्य जनता को महात्मा बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओ तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो से परिचित कराना ही था, परन्तु इसके साथ ही अन्य अनेक पक्षों का अकन भी इनमे खुलकर हुआ है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं के साथ ही स्वय बुद्ध से सम्बन्धित विभिन्न नगरो तथा नगर–जीवन के अनेक पक्षो, यथा–नगर–विन्यास, भवन–विन्यास, वेश–विन्यास, केश–विन्यास, राजप्रासाद निर्माण योजना, आभूषण एवं मनोरंजन के साधनो इत्यादि का संगोपाग अकन दृष्टिगोचर होता है।

बुद्ध–जन्म का निरुपण करते समय कपिलवस्तु का यदि एक ओर दृश्याकन मिलता है, तो दूसरी ओर धर्म प्रचार के विषय मे कौशाम्बी, वैशाली, राजगृह एव श्रावस्ती आदि नगरो के प्राकार, परिखा, उद्यान तथा नागरिक शालाओ के उत्कीर्णन स्तूप कला के विषय बनाए गए। चूँकि संबंधित शिल्पियो ने इन नगरो को विभिन्न

सन्दर्भों में व्यक्तिगत रूप से देखा था तथा उनमें से अधिकाश, नगर–निवासी थे। अतएव इनमे उनके द्वारा शिल्पित नगरीय दृश्याकन काल्पनिक नही, यथार्थ है।[1]

इनके द्वारा स्तूपो को दिये गए दान जैसे–सॉची के उत्तरी तोरण द्वार पर सातवाहन नरेश के शिल्पी प्रमुख आनन्द का दिया हुआ दान, अमरावती में द्वितीय शताब्दी ई0पू0 मे शिल्पियो के श्रेणी आवेशनीनो द्वारा प्रदत्त दान तथा इन स्तूपो पर पाये गये शिल्पियो की श्रेणी अथवा उनके घरानो के प्रतीक चिन्ह यह प्रदर्शित करते है कि शिल्पियो का सम्पर्क एव सम्बन्ध नगरीय जीवन से था अत उन्होने उसे उत्कीर्ण करने मे कल्पना का आश्रय नहीं लिया होगा।[2]

भरहुत स्तूप

भरहुत अथवा भरोपुर नामक ग्राम आधुनिक मध्य प्रदेश राज्य के सतना जिले के रेलवे स्टेशन से नौ मील दक्षिण तथा उछहरा स्टेशन से छ मील उत्तर–पूर्व मे स्थित है। इस स्तूप के ध्वशावशेषो की खोज सर्वप्रथम जनरल कनिघम ने सन् 1873 मे की थी।[3] जिस समय कनिघम ने उसे देखा, स्तूप लगभग पूरा नष्ट हो चुका था। केवल एक छोटा सा दस फुट लम्बा तथा छ फुट ऊँचा भाग बचा था।[4] भरहुत का बुद्ध के जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध न था। इसकी प्राचीनता स्थापत्यावशेषों के अतिरिक्त अज्ञात थी। यह समकालीन सॉची कला केन्द्र से 300 मील उत्तर–पूर्व मे स्थित था, दक्षिण–पश्चिम का जो मार्ग प्रतिष्ठान से चलकर श्रावस्ती तक जाता था, भरहुत की स्थिति इसके सन्निकट क्षेत्र मे थी। आधुनिक महियर की घाटी की संकीर्ण उत्तरी सीमा पर अवस्थित भरहुत, उस प्राचीन महापथ के उस बिन्दु के करीब था जहॉ से उज्जैन और भिलसा (प्राचीन विदिशा) से आने वाले राजमार्ग कोसम (प्राचीन कौशाम्बी) जैसे विशिष्ट विश्राम स्थल के साथ पटना (प्राचीन पाटलिपुर) की ओर उत्तर दिशा मे मुड जाता था। सम्भवत. इसकी स्थानीय

---

1 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन (द्वि0स0) इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ–344

2 राय, अनामिका, अमरावती स्तूप (ए क्रिटीकल कम्प्रीजन आफ इपिग्राफिक, आर्किटेक्चरल एण्ड स्कल्पचरल एवीडेन्स, 1999–(प्र0स0) आगम कला प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 9–52।

3 कनिघम, ए0, स्तूप आव भरहुत (हिन्दी अनुवाद, भरहुत स्तूप द्वारा डॉ0 तुलसी राम शर्मा) 1975, पृष्ठ–1 तथा आगे।

स्थिति के महत्व को समझकर ही इस स्तूप का निर्माण हुआ, जिससे यात्रीगण का ध्यान आकृष्ट हो सके।[5] बौद्ध धर्म ग्रथो मे कौशाम्बी के दक्षिणवर्ती भू–भाग को वन प्रदेश कहा गया है।[6] भरहुत के प्राचीन इतिहास पर इससे अधिक कुछ ज्ञात नही है।

ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण मध्य प्रदेश पर बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव बुद्ध के जीवन काल मे ही व्याप्त हो चुका था। विदिशा के सन्निकट सॉची तथा कौशाम्बी के दक्षिणवर्ती भू–भाग (वन प्रदेश) मे स्थित भरहुत कला केन्द्रो मे निर्मित प्राचीन बौद्ध स्तूपो का निर्माण तत्कालीन धार्मिक एव सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किया गया था।

भरहुत स्तूप के निर्माण की सफलता राजवर्ग से लेकर सामान्य वर्ग के व्यक्तियो एवं बहुसंख्यक गृहस्थो की अर्थ सम्पत्ति एवं उसके उदार भावना पर निर्भर थी। भूवेदिका के स्तम्भ सूचियो एव उष्णीयो पर उत्टकित अभिलेखो से 29 स्थानो के नाम ज्ञात हुए है, जहां के तीर्थ यात्रियो ने इस स्तूप के निर्माण एव अलंकरण मे अपने प्रभूत दान से सहयोग प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त बौद्ध भिक्षु एव भिक्षुणी, धनिक व्यापारी, मूर्तिकार आदि समाज के विविध वर्ग के व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त दान के अभिलेखिक प्रमाण भी इस स्तूप की महावेदिका के वास्तु अवशेषो मे सुरक्षित है।[7] जो इस तथ्य के सक्षम साक्षी हैं कि तत्कालीन कला चेतना, अपने पूर्ववर्ती मौर्यों की वैयक्तिक राजदरबारी कला को निषेध करती हुयी व्यापक स्तर पर जन सामान्य एवं लोक मानस की अभिरूचियो तथा कलात्मक मान्यताओ से शासित होने लगी थी।

---

4 अग्रवाल, वी0एस0, 'भारतीय कला' वाराणसी 1977 द्वि0स0 (पु0मु0) वाराणसी 1995 (स0 डा0 पृथ्वी कुमार अग्रवाल), पृष्ठ–139

5 उपाध्याय, डॉ0 वासुदेव, 'प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एव मंदिर (बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी) द्वि0स0 1989, पृष्ठ–57।

6 डेविड्स, रिज, 'बुद्धिस्ट इण्डिया', 9वा सस्करण, वाराणसी,1970 पृष्ठ–44 टि0सं0 10, बरूआ, बी0एम0, 'भरहुत' (पु0मु0स0) पटना, 1979 खण्ड 1, पृष्ठ–28।

7 कनिघम, ए, पूर्वोक्त, पृष्ठ–117–134, बरूआ, बी0एम0 तथा सिन्हा 'भरहुत इस्क्रिप्शस, कलकत्ता वि0वि0 पब्लिकेशन, 1926, मिश्र रमानाथ, 'भारतीय मूर्तिकला, दिल्ली, 1978, पृष्ठ–53।

वस्तुत शुंगयुगीन कला का जन्म ही जनसामान्य की धार्मिक एव समसामयिक आवश्यकताओं से ही हुआ था, अस्तु उनकी समस्त मान्यताओ, रूचियो एव कलात्मक आदर्शों की अभिव्यजना सहज ही शुग युगीन कला मे देखी जा सकती है। भरहुत इस कला का सर्वप्रमुख केन्द्र था, जहा के कलात्मक आदर्शों को सुदूर क्षेत्र, यथा—आमीन, भाजा, राजासन, उडीसा, अमरावती आदि की कला मे कुछ क्षेत्रीय विशेषताओ के साथ अपनाया गया था।[8]

जहाँ तक भरहुत स्तूप के तिथि का सम्बन्ध है विद्वानों ने यहाँ के अभिलेखिक, पुरालिपिक एव कलात्मक शैली के अन्त· साक्ष्यो के आधार पर मौर्य अथवा मौर्योत्तर से ई0पू0 प्रथम सदी के अर्न्तवर्ती काल मे निर्धारित की है। वस्तुत मौर्य युग मे यहा ईंटो से निर्मित स्तूप था। शुग युग मे इसका शिलाच्छादन किया गया। तदन्तर इसके चतुर्दिक महावेदिका एव तोरण का निर्माण हुआ।[9] अब यह स्तूप पूर्णत. नष्ट हो चुका है। कनिघम को वेदिका के 47 स्तम्भ प्राप्त हुए थे, इनमे 35 तो अपनी असली जगह मिले थे, शेष बटमारा, लिथौरा आदि पास के गॉवो से ढूढने पर मिले थे। उन्हे उष्णीय के 40 पत्थरो मे से 16 उपलब्ध हुए थे। अद्यतन ये वास्तु अवशेष कोलकाता के 'भारतीय संग्रहालय' मे सुरक्षित है।[10] प0 ब्रजमोहन व्यास द्वारा प्राप्त किए तोरण एव वेदिका के 53 भाग, इलाहाबाद सग्रहालय मे सुरक्षित है। इनमे 32 वेदिका स्तम्भ एक दोरूखा कोण स्तम्भ, तीन सूची, चौदह उष्णीय, एक खण्डित शीर्षक और दो सोपान खण्ड है।[11] जहाँ तक इस नष्टप्राय स्तूप के मूल आकृति का प्रश्न है। वेदिका पर तीन चार जगह अकित मूल आकृति से, उसकी सच्ची प्रकृति का अनुमान होता है। इससे अभिज्ञात होता है कि मूल स्तूप एक बडे घटे की आकृति मे (महाघण्टाकार) लगभग अर्ध चन्द्राकार था। उसमे व्यास और ऊँचाई का अनुपात कालान्तर की स्तूपो की अपेक्षा कम था, जिस समय स्तूप की ऊँचाई बढती चली गई थी।[12]

---

8 मिश्र, आर0एन0 पूर्वोक्त, पृष्ठ—45

9 कनिघम, ए0, पूर्वोक्त पृष्ठ—14 तथा आगे, बरुआ, पूर्वोक्त पृष्ठ—29—30, अग्रवाल, वी0एस0 'पूर्वोक्त, पृष्ठ—159—160।

10 अग्रवाल वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ—140।

11 अग्रवाल, वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ—140।

12 वही, पृष्ठ—140।

कनिंघम के विवरण के अनुसार इस स्तूप का व्यास 67 फुट 85 इन्च था। इसके चतुर्दिक वेदिका का निर्माण किया गया था, जिसकी कुल ऊँचाई नौ फुट के लगभग थी तथा इसका मण्डलाकार घेरा 330 फुट का था। इस महावेदिका को चार भागो मे विभक्त करते हुए चारो दिशाओ मे चार तोरण द्वारो का निर्माण किया गया था। प्रत्येक विभक्त भाग मे लगभग 20 स्तम्भ थे। स्तम्भो को तीन आडी सूचियो द्वारा जोडा गया था, वेदिका स्तम्भो को चारो किनारो पर कोरकर अष्ट पहल बनाया गया है। जहॉ तक तोरण द्वार का सम्बन्ध है, यह दो बडे स्तम्भो से बना है जो अष्टाशिक एव चतुरात्रिक है, जिन्हे चार–चार पतले स्तम्भो को जोडकर बनाया गया है, उसके सिर पर उलट कर रखा हुआ घटाकृति पूर्ण कुम्भ है। इस शीर्षक के ऊपर एक चौकी है जो दो सपक्ष सिंह एव वृषभो के सघाट को धारण किए हुए है। इसके ऊपर पहली आडी धरन है, फिर पत्थर की चौकोर पिण्डिकाए है। पुनः दूसरी धरन है और इसके भी ऊपर वैसे ही चौकोर पिण्डिकाएं है, इन पिण्डिका या चौकियो पर तीसरी धरन है, इन धरनो के निकले हुए सिरो पर मकराकृति उत्कीर्ण है।[13] खडे स्तम्भो के शीर्षक पशु, मौर्य युगीन स्तम्भों की अनुकृति लगते हैं, किन्तु कलात्मकता निम्न कोटि की है।[14]

इसी महावेदिका[15] एव तोरण द्वारो के स्तम्भो एव बडेरियो पर प्रभूत शिल्पांकन, धार्मिक दृश्य तथा शोभार्थ अभिप्रायों का एक पूरा ससार ही दिखाई पडता है। मानो कलात्मक मेघों की जलवृष्टि ही हुई हो अथवा किसी शत सहस्त्री जीवन संहिता के अक्षर सदा के लिए पाषाण मे सुरक्षित रह गए हो।[16] विषयवस्तु की दृष्टि से इन्हें हम अनेक वर्गो मे रख सकते है–

(1) बुद्ध चरित के अन्तर्गत बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाये, उनके समसामयिक राजाओ से सम्बन्धित ऐतिहासिक दृश्य, पूर्ण बुद्धो के प्रतीक तथा जातक तथा अवदान कथाओ का प्रभूत अंकन प्राप्त होता है।

---

13 वही, पृष्ठ–142।
14 कनिघम, ए0, पूर्वोक्त, पृ0–3–13, बरूआ, पूर्वोक्त, पृष्ठ–1,–24, अग्रवाल वी0एस0 पूर्वोक्त, पृष्ठ–142।
15 दे0 चि0 फ0 स0 क 1।
16 अग्रवाल, वी0एस0, 'पूर्वोक्त, पृष्ठ–142।

(2) तत्कालीन कुलीन एवं सामान्य वर्ग से सम्बन्धित बहुसख्यक दृश्य का अकन।

(3) लोक धर्म एवं लोक विश्वास से सम्बन्धित यक्ष, नाग, यक्षी वृक्षक देवता आदि देव समुदाय का अंकन बुद्ध के अनुचर के रूप मे हुआ है।

(4) विभिन्न प्रकार के अलकारिक अभिप्राय जिनमे पशु जगत, काल्पनिक पशु एव वनस्पति जगत की प्रधानता दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के आभूषण अभिप्रायो का अंकन भी खुलकर हुआ है।

उल्लेखनीय है कि स्तूप के अलकरण का मूल उद्देश्य जन सामान्य को बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट करना ही था, किन्तु इनमे धर्म के साथ ही अनेक अन्य विषयों का समावेश भी सहज रूप से किया गया है। कहना न होगा कि इन शिल्प अभिप्रायो के अवलोकन से तत्कालीन नगर एव नगर जीवन से सम्बन्धित अनेक बातो का सज्ञान होता है। इनमे विभिन्न जातक कथाओ, ऐतिहासिक दृश्यो, राजा, राज परिवार, ब्राह्मण, धनिक, तपस्वी, परिव्राजक, आरामक, इषुकार, लण्वक, नापित्, कर्मकार, शिल्पकार[17] आदि समाज के विविधि वर्ग के व्यक्तियो का अकन इनकी विशिष्ट सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ किया गया है, जो सास्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। पशु जगत[18] एव अनेक अलकारिक अभिप्राय[19] वहुश· अंकित है। सक्षेप मे हम कह सकते है कि भरहुत की महावेदिका अपने शिल्पाकन के रूप मे तत्कालीन समाज की सम्पूर्ण जीवनधारा को समाहित किये हुए है।

भरहुत स्तूप की तोरण वेदिका पर लगभग 20 जातक दृश्य, 6 ऐतिहासिक दृश्य, 30 से ऊपर यक्ष, यक्षी देवता, नाग राजाओ आदि की कढी हुई बडी मूर्तियॉ और अनेक भॉति के वृक्ष और पशुओं की मूर्तियॉ है। इनमें बहुतो पर उनके नाम खुदे हुए है।[20]

जातक कथाओ का अकन बौद्ध धर्म का प्रिय विषय रहा है। ये बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं है, जो बडी लोकप्रिय थी इनमे (1) मिग जातक (2) नाग जातक

---

17 बरूआ, बी0एम0, पूर्वोक्त, खण्ड 3, पृष्ठ–52–53 मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ–61–63।
18 कनिघम, पूर्वोक्त, खण्ड 3, पृष्ठ–38–42, बरूआ पूर्वोक्त खण्ड–3, पृष्ठ–58–61, मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ–63।
19 कनिघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ–42–44, 114–115, बरूआ, पूर्वोक्त, खण्ड 3, पृष्ठ–39, 62–63।

(3) यवमझकिय जातक (4) मुग्गपकय जातक (5) लटुवा जातक (6) छदन्तिय जातक (7) इसिसिंगिय जातक (8) यम्बुमनोवयसी जातक (9) कुरूगमिग जातक (10) हश जातक (11) किन्नर जातक (12) असदृश जातक (13) दसरथ जातक (14) इसिमिग जातक (15) उद जातक (16) सेच्छ जातक (17) सुजातो गहुतो जातक (18) विडाल कुक्कुट जातक (19) मगदेविच जातक (20) मिसहरनिय जातक (21) विदुर पण्डित जातक (22) गजसस जातक (23) वेसत्तर जातक (24) महाकपि जातक का उल्लेख किया जा सकता है। जिनका अकन भरहुत वेदिका पर प्राप्त होता है।[21]

बुद्धचरित्र का प्रथम अकन करने का श्रेय भरहुत के कलाकारो को प्राप्त है यहा बुद्ध की महत्वपूर्ण दिव्य स्थिति के कारण उन्हे विविध प्रतीको के माध्यम से दर्शाया गया है। वास्तव मे महायान धर्म के उदय के पूर्व बुद्ध मूर्ति का अकन बौद्ध धर्म में विहित नही था। क्योकि हीनयान मत मे बुद्ध महापुरूष चक्रवर्ती के रूप मे समादर पाते थे उनमे देवत्व के अभाव होने से प्रतीक पूजा की ही प्रधानता थी। अस्तु इस युग मे विभिन्न प्रतीको को बौद्ध धर्म के लोक विश्वास से सम्बद्ध करके धर्म एव लोक विश्वास की परम्परा सम्बद्धता द्वारा बौद्ध धर्म को ठोस धरातल प्रदान किया गया। इन प्रतीको मे बुद्ध जन्म को श्वेत हाथी द्वारा दर्शाया गया है।[22] जैसाकि 'रानी माया का स्वप्न'[23] नामक प्रदर्शन मे द्रष्टव्य है। जिसका सम्बन्ध एक कथानक से जोडा जाता है जिसके अनुसार बोधिसत्व के रूप में भगवान तुषित स्वर्ग में बैठे मनोविनोद कर रहे थे, उसी समय उनसे प्रार्थना की गई कि ससार मे अतीव कष्ट है, दु.ख है। उनसे बचने का कोई मार्ग निकालिए। यह बात सुनकर तुषित स्वर्ग मे देव ने यह भविष्यवाणी की, कि वह संसार को विमुक्त करने वाले हाथी के रूप में कपिलवस्तु की रानी मायादेवी के गर्भ में प्रवेश कर विश्व मे अवतरित होंगे। उसी परम्परा में गौतम बुद्ध का जन्म माना गया है। बोधिसत्व के कथनानुसार सफेद हस्ति के रूप में गौतम ने अवतार लिया। इस घटना का प्रदर्शन

---

20 अग्रवाल, वी0एस0 पूर्वोक्त, पृष्ठ–144।

21 वही पूर्वोक्त, पृष्ठ–150, बरूआ, पूर्वोक्त, खण्ड दो (सम्पूर्ण भाग मे जातक दृश्यो का विवरण)

22 कनिंघम, वही, पृष्ठ–76–77, फलक–16, बरूआ, पूर्वोक्त, पृष्ठ–54–55, चि0फ0 26, चि0 21–24।

23 बरूआ, वी0एम0 पूर्वोक्त, चि0फ0 स0 26, चि0 21–24 जिमर, हेनरिक, द आर्ट आफ इण्डोनेसिया, भाग–दो चि0फ0 स0 31d।

'माया देवी का स्वप्न' के नाम से किया गया है। भरहुत मे इसका प्रदर्शन गोल फलक मे किया गया है। रानी माया एक शय्या पर सोई हुई है उन्हें 'अन्तरिया' पहने हुए दिखाया गया है पैर मे आभूषण है। अप्सराओ के सिर पर पतला चादर दृष्टिगोचर होता है, इन्हे भी आभूषणो से युक्त दिखाया गया है। एक हाथी का आकार फलक के ऊपरी भाग मे खुदा हुआ है।[24]

दूसरी प्रधान घटना गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति से है। गौतम ने तपस्या के लिए कपिलवस्तु से बाहर जाने को सोचा, 'ललितविस्तर' मे वर्णन आया है कि 'उसी रात जिस कमरे मे उनकी पत्नी बच्चे के मस्तक पर हाथ रखे शयन कर रही थी उसकी देहली पर खडे होकर उन्होने बालक की ओर अतिम बार देखा और महल का त्याग करके अपने घोडे कथक पर सवार होकर नगर से बाहर चले गए, उनका सारथी छदक घोडे की पूँछ पकडे हुए उनके पीछे—पीछे गया। शाक्य, कोलिय और मल्ल के जनपदो से आगे निकलकर वे अनोमा नदी पार करके प्रात काल सूर्योदय होने पर मैनेयों के नगर अनुवैनय मे पहुँच गए। वहाँ उन्होने अपने अलंकार और अश्व को छदक को सौप दिया और केश काटकर राजसी वस्त्र के बदले मे गेरुआ वेश धारण कर लिया। कपिलवस्तु छोडने की यह घटना 'महाभिनिष्क्रमण' के नाम से जानी जाती है।[25] भरहुत मे इस घटना का प्रदर्शन यहा के कलाकारो ने बडी सजीवता से किया है। यहाँ देवत्व की भावना से घोडे के पैर को पृथ्वी पर स्थित न दिखाकर मनुष्य की हथेली पर दिखलाया गया है। 'महाभिनिष्क्रमण' की घटना को भरहुत में छत्रयुक्त अश्व एव पदचिन्हों के प्रतीक—चिन्हो द्वारा दिखा दिया है।[26] संबोधि को बोधिवृक्ष द्वारा[27] एव धर्म—चक्र प्रवर्तन को छत्रयुक्त धर्म—चक्र[28] के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। 'धर्म—चक्र—प्रवर्तन' बुद्ध द्वारा दिये गये सारनाथ मे प्रथम उपदेश से सम्बन्धित है। धर्मचक्र की पूजा सम्पूर्ण भारत के स्तूपो की वेष्टनियो अथवा तोरण द्वारों पर एक सी दिखलाई गई है। हीनयान के अतिरिक्त महायान

---

24 दे0 चि0 फ0 स0—4, अग्रवाल वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ—143, चि0फ0 सं0 89, चि0 197।

25 चुल्लवग्ग, पृष्ठ—159, जातक 1, 92—93।

26 बरूआ, पूर्वोक्त, पृष्ठ—56, दृश्य 18, मिश्र, आर0एन0 भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ'—56।

27 कनिंघम, पूर्वोक्त, पृ0 109—10, चि0फ0 31, चि0 3—4 तथा चि0फ0 13, बरूआ, पूर्वोक्त, पृ0—177, चि0फ0 20, चि0 16, 16ए, मिश्र, आर0एन0 पूर्वोक्त, पृष्ठ—56

28 कनिघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ—101, चि0फ0 स0 13, पृष्ठ—102, चि0फ0स034 बरूआ, पूर्वोक्त, चि0फ0स0—44

मत मे भी धर्मचक्र को त्यागा नही गया है और बुद्ध प्रतिमा के साथ चक्र को भी यथोचित स्थान दिया गया।

तीसरी प्रधान घटना जिसका अकन भरहुत में किया गया है सुदत्त, अनाथ पिंडक द्वारा श्रावती मे जेतवन के दान से सम्बन्धित है।[29] यह घटना कुछ इस प्रकार है "राजगृह मे बुद्ध सीतवन मे ठहरे हुए थे, जहॉ श्रावस्ती के श्रेष्ठी सुदत्त ने, जो कार्यवश वहा आए थे, उनसे दीक्षा प्राप्त की। श्रावस्ती लौटकर उनकी इच्छा हुई कि वे राजकुमार जेत का उद्यान मोलकर बुद्ध के निवास हेतु अर्पित करे। किन्तु जेत ने कहा कि सिवाय उतनी मुद्राओ के बदले मे, जितनी उसके फर्श पर बिछ जाए, वे उस उद्यान को न बेचेगे। तब सुदत्त छकडो मे अठारह–कोटि मुद्राए भरकर ले आया और उद्यान भूमि पर बिछवा दिया।[30] इस श्रद्धाजनित कार्य से प्रभावित होकर जेत ने स्वयं एक तोरण और भडार वहां बनवाया।

भरहुत स्तूप पर इस विलक्षण दान का दृश्याकन बडी सजीवता के साथ किया गया है।[31] उत्टकित दृश्य मे एक बैलगाडी जिसमे जूते खोलकर अलग कर दिए गए है और उससे उतरे हुए (चौकोर) मुद्राए धरती पर बिछाई जा रही है, वेदिका के भीतर एक बोधिवृक्ष जो बुद्ध की उपस्थिति का सूचक है, जिसके सामने अनाथ पिंडक कमंडल हाथ मे लेकर दान सकल्प का जल छोड रहा है, दूसरी ओर तीन अन्य वृक्ष उत्टकित है, ये उद्यान के सूचक है जिनके चारो ओर मुद्राएं बिछाई जा रही है। इसके बगल मे दो कूटागार है, जिसमे ऊपर वाले के समीप गेधकुटि लेख उत्कीर्ण हैं और निचले के पास कोसबकुटि। दान की परिघटना को यहॉ उत्कीर्ण लेख "जेतवन अनधपेडिको देति कोटि सथतेन केता"[32] बौद्ध ग्रथो के इस

---

[29] चुलवग्ग, (स0 भिक्षु, जगदीश काश्यप, नालन्दा, देव नागरी पालि सीरीज, सेक्रेड बुक्स ऑव दि बुद्धिस्ट सीरीज, बुक आफ द डिसिप्लिन) शीर्षक से आई0वी0 हार्नर का अग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ–252–253, मलाल सेकर, जी0पी0, 'डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉवर नेम्स, प्रविष्टि' अनाथ 'पिण्डक' देखे।

[30] चुल्लवग्ग, पृष्ठ–159, जातक I–92–93

[31] दे0चि0फ0 स0–9, बरूआ, बी0एम0, पूर्वोक्त चि0फ0स0–45 चि0–45 मलालसेकर, जी0पी0, पूर्वोक्त, प्रविष्टि 'जेतवन' देखे। अग्रवाल, वी0एस0 पूर्वोक्त, पृष्ठ–143, चि0फ0सं090, कनिघम, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 28 चि0स0–3

[32] दे0चि0फ0 सं0–2, कनिघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ–78–81 चि0फ0स0–28, चि0 3 तथा अभिलेख।

मूल वाक्य पर आश्रित है–'अनाथपिंडिको गहपति सकटेहि हिरञ्ञ निब्बाहपेतु जेतवण कोटिसंथारं संथरापेसि।[33]

भरहुत के कलाकारों ने उन दृश्यो के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक दृश्यो को बडी सजीवता से उत्टकित किया है जो तत्कालीन 'नगर एव नगर–जीवन' सम्बन्धी तथ्यो के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण हैं। भरहुत वेदिका के इन दो स्तम्भो को उत्टंकित दृश्य के आधार पर 'प्रसेनजित' तथा 'अजातशत्रु' स्तम्भ नाम दिया गया है।[34]

कोसल के राजा प्रसेनजित और बुद्ध के सबध का साक्ष्य भरहुत के एक शिलापट्ट पर अकित है। एक पट्ट पर राजा प्रसेनजित को चार घोडो द्वारा खीचे जाने वाले रथ पर बैठकर नगर द्वार से बाहर निकलते हुए प्रदर्शित किया गया है, उनके पीछे हाथी, घोडे, और पैदल चलने वालो का जुलूस है। इसी दृश्य मे पुण्यशाला भी अंकित की गई है जिसे प्रसेनजित ने श्रावस्ती मे बनवाई थी। यह दो मंजिली इमारत है जिसका भूमितल खुले मण्डप के आकार का है जिसके मध्य दो उपासको के बीच धर्म–चक्र रखा हुआ है, ऊपर के तल मे दो द्वारो से युक्त वह पुण्यशाला दिखायी गई है, जहॉ सम्राट ने बुद्ध से अन्तिम बार भेट किया था।[35] इस स्तम्भ पर दो लेख भी उत्टकित है–(1) राजा प्रसेनजित कोसलो और (2) भगवतो जम–चकम। इससे अभिज्ञात होता है कि प्रसेनजित बुद्ध का भक्त था।

एक अन्य दृश्य में राजा अजातशत्रु और बुद्ध के भेट का दृश्याकन है।[36] 'समानफल सूत्र' मे यह वर्णन आया है कि पिता (बिम्बिसार) के मृत्यु के पश्चात् अजातशत्रु बुद्ध के दर्शन हेतु गृद्धकूट पर्वत पर गया। थोडी ही सीमा मे तीन दृश्य प्रदर्शित हैं– (1) राजा हाथी पर आरूढ है, उसके पीछे दो रानियॉ भी हाथी पर बैठी हुई है (2) वह हाथी से उतर कर दाहिना हाथ उठाए हुए कुछ कहने की मुद्रा मे बुद्ध के आसन के पास या बोधिमण्डप के, जिस पर बुद्ध की पादुका अकित है,

---

33 चुल्लवग, पृष्ठ–159।
34 बरूआ, बी0एम0 भाग एक–पृष्ठ–16, वही, भाग–3, चि0फ0 स022, चि0–170, बरूआ, बी0एम0भाग एक–पृष्ठ–16, वही भाग–3, चि0 फ0स0–49, चि0–51।
35 दे0चि0फ0–10, बरूआ, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 50 चि052, अग्रवाल, वी0एल0, चि0फ0स0–86, पृष्ठ–148।
36 कनिघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ–83, चि0फ0 13–चि0–2, बरूआ, पूर्वोक्त चि0फ0 49–चि0–51।

सामने बैठकर अंजलिबद्ध मुद्रा मे वज्रासन की वंदना करते हुए दिखाए गए है, इनके पीछे रानिया भी इसी मुद्रा में खडी है। मूर्ति के लिप्याक्षर इस प्रकार है–'अजातशत्रु भगवतो वदते'।[37]

इसके अतिरिक्त त्रयस्त्रिश स्वर्ग के देवताओ को बुद्ध का उपदेश, उनका स्वर्ग विवरण,[38] श्रावस्ती मे किया गया चमत्कार[39] चूडामह,[40] सरावत नाग द्वारा बुद्ध पूजा[41] आदि अनेक धार्मिक दृश्यो के अतिरिक्त अनेक अधार्मिक अभिप्रायो का अकन भी यहॉ हुआ है। यद्यपि वेदिका एव तोरण द्वारो पर अलकरण का उद्देश्य उपासकों को आकर्षित करना था, इस लक्ष्य की पूर्ति कुछ अंशो तक हुई भी, किन्तु भरहुत कला अन्य अभिप्रायो के साथ भी सामने आई। जिसमे पशुजगत तथा अनेक प्रकार के अलंकारिक अभिप्राय एव नृत्य के दृश्य भी अकित है उल्लेखनीय है कि नृत्य का बौद्ध धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था अत. अप्सराओ का नृत्य बौद्ध धर्म के अधार्मिक विषय का ही प्रतिपादन करता है। यह तत्कालीन समाज मे प्रचलित मनोरजन के साधनो को उद्घाटित करता है।[42]

इस प्रकार भरहुत शिल्प का अध्ययन एव आकलन से नगर तथा नगर–जीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यो की समुचित जानकारी प्राप्त होती है, यद्यपि नगर स्थापत्य में परिखा एवं प्राकार के सम्बन्ध में हमे जानकारी नहीं मिलती तथापि नगर द्वारो का अकन यहॉ हुआ है। इसके अतिरिक्त नगर में महलों एवं चैत्य गावाक्ष का अकन, जंगल के वातावरण का प्रदर्शन मनुष्य के विभिन्न वेश–विन्यास, केश–विन्यास के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के आभूषणो का अकन यहा के कलाकारों ने बडी सजीवता के साथ किया है। इस प्रकार हम देखते है कि भरहुत की महावेदिका एवं तोरण द्वार अपने शिल्पाकन मे तत्युगीन समाज की सम्पूर्ण जीवनधारा को समाहित किये हुए है।

---

37 अग्रवाल, वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ–148, चि0स0–212।

38 बरूआ, पूर्वोक्त, पृ0–36–38, चि0फ0 17, चि0 47 तथा, पृष्ठ–34–41, चि0फ0–17, चि0 48, कनिंघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ–84–86, चि0फ0 17 तथा मध्यवर्ती भाग।

39 बरूआ, पूर्वोक्त, पृष्ठ–34–36, चि0फ0–17, चि0–46।

40 कनिंघम, पूर्वोक्त, पृष्ठ–100, चि0फ0 16, बरूआ, पूर्वोक्त, पृष्ठ–19–22, चि0 फ0 16–चि0–39।

41 दे0चि0फ0–10 (निचला दृश्य) बरूआ, बी0एम0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–61, चि0 69, अग्रवाल, वी0एस0 पूर्वोक्त चि0स0–211।

42 दे0चि0फ0 स0–13, 6।

जहॉ तक भरहुत शिल्प की कलाशैली का सवाल है, विद्वानो ने इसे भारतीय कला के क्लैसिकल स्वरूप के प्रारम्भिक प्रयास के रूप मे स्वीकार किया है। यह शैली अपने पूर्ववर्ती काष्ठ एव दन्तशिल्प की पाषाणानुकृति है, फलत. उनकी विशेषताए इसमे भी समाहित है। मौर्य युगीन विशालकाय शक्ति सम्पन्न मूर्तियो की अपेक्षा उस शैली मे रैखिक प्रवाह के निर्वाध गति का बोध होता है।

भरहुत मे कथाओ का दृश्याकन निरतर अकन पद्धति के आधार पर हुआ है, एक ही तल पर विविध स्थलो एव भिन्न–भिन्न कालो मे घटित घटनाओ का अकन इस बात का सक्षम साक्षी है कि यहॉ के कलाकारो ने कथानको के दृश्याकन मे देश तथा काल की सीमाओ का ध्यान नही रखा।

भरहुत के कलाकारो ने कथानको के दृश्याकन के साथ ही उसके आस–पास तत्सम्बन्धी लेख भी लेखाकित किया। इससे अभिज्ञात होता है कि कला के प्रारम्भिक चरण मे तत्कालीन जनता मे इस विषयो की जानकारी का सर्वथा अभाव था। अस्तु भरहुत के शिल्पाचार्यों ने उपासको को आकर्षित करने तथा उनके जानकारी के निमित्त उत्टकित दृश्य के नीचे लेख अकित करवाया था।

जहा तक भरहुत मे दृष्टि सम्बन्धी नियमो का सवाल है यहॉ इसकी स्पष्ट अवहेलना हम पाते है, उदाहरणार्थ सामने की आकृति या निम्न तल की आकृति को पूरा दिखाया गया है। मध्यवर्ती आकृतियो के धड एव सबसे ऊपरी अथवा पीछे की आकृतियो के केवल सिरों का अकन प्राप्त होता है। आकृतियों का आकार सापेक्षिक न होकर घटनाक्रम में उनकी मर्यादा के अनुसार अंकित किया गया है। बुद्ध के प्रतीकों को सर्वत्र बडा दिखाया गया है। आकृतियॉ तल से बिल्कुल चिपकी हुयी प्रतीत होती है। भरहुत शिल्प भारत की सर्वदेशीय लोक–कला का प्रारम्भ बिन्दु है। इसमें प्रारम्भिक अवस्था की समस्त विशेषताये विद्यमान हैं; यथा आकृतियो का चिपटा स्वरूप, रैखिक प्रवाह सम्बन्धी नियमो का उल्लघन आदि। साथ ही यहां के शिल्प में प्रारम्भिक प्रयास से सम्बद्ध अद्‌भूत उत्साह, नवीनता एवं बालसुलभ सरल, सहज भावबोध विद्यमान हैं, जो इसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। इस कला का

अग्रिम विकास बोध गया, सॉची, मथुरा, आदि मे दिखाई पडता है। वस्त्राभूषण के अध्ययन के प्रसंग में भरहुत कला केन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है।

सॉंची स्तूप

प्राचीन ककणाव या ककणाय[43], ककनादवोट[44], वोटश्रीपर्वत[45], महाचेतियगिरि, श्रीपर्व्वत आदि नामो[46] से अभिज्ञात सॉची आधुनिक, मध्यप्रदेश के भोपाल जिले के दीवानगज नामक तहसील में प्राचीन विदिशा या आधुनिक भिलसा (बेसनगर) से पॉच मील की दूरी पर स्थित है।[47] सॉची का बुद्ध के जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध न था, यही कारण है कि प्राचीन पालिग्रथो एवं फाह्यान तथा ह्वेनसाग के विवरणो मे इसका उल्लेख अप्राप्त है। तथापि ऐसा लगता है कि बुद्ध के समय में ही यहा बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव व्याप्त हो चुका था। रिज डेविड्स के अनुसार प्राचीन पालिग्रंथों की भाषा का प्रचलन क्षेत्र, आकर, अवन्ति (पूर्वी, पश्चिमी मालवा) का क्षेत्र था।[48] यही कारण है कि विदिशा के समीपस्थ सॉची की पहाडी पर मौर्य युग से मध्ययुग तक के बौद्ध स्तूप, चैत्य, विहार के अवशेष प्राप्त होते है।

सॉची का राजनीतिक इतिहास विदिशा से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है तत्कालीन समय मे विदिशा व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था।[49] यह उस राजमार्ग के समीप था, जो पाटलिपुत्र से कौशाम्बी होकर विदिशा के रास्ते उज्जैन होते हुए भडौच जाया करता था तथा मथुरा से प्रतिष्ठान को जाने वाला महापथ भी विदिशा के सन्निकट से गुजरता था। इस तरह विदिशा के सन्निकट स्थित सॉची का भू–भाग एक चौराहा था जिसके महत्व को ध्यान में रखकर यहॉ की पहाडियो पर बडी मात्रा मे स्तूपों, विहार तथा चैत्यो का निर्माण कराया गया। यहॉ के मुख्य

---

43 मार्शल जे0 तथा फूशे, ए0 'दि मान्यूमेन्ट्स आव सॉची (3 खण्ड) खण्ड–एक अभिलेख स0 7, 176, 394, 396 तथा 404।

44 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, अभिलेख स0–833, 834।

45 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, अभिलेख स0–842।

46 मार्शल, जे0 तथा फूशे ए0 'दि मान्यूमेन्ट्स आव सॉची (3 खण्ड) खण्ड–1, पृष्ठ–12, अग्रवाल, वी0एस0 'भारतीय कला' वाराणसी 1977 (द्वितीय स0, पृष्ठ–160, मिश्र आर0एन0 'भारतीय मूर्ति कला, दिल्ली, 1978, पृष्ठ–87।

47 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 'पूर्वोक्त' पृ0 प्रथम तथा द्वितीय, अग्रवाल वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ–160।

48 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, पृ0–2, मार्शल, केम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया भाग–1, पृष्ठ–187।

पहाडी पर स्थित स्तूप सख्या-1, 2, 3 प्राचीन भारतीय शिल्प कला के भव्य उदाहरण प्रस्तुत करते है। प्राचीन भारत के नगरीकरण एव नगर जीवन के अध्ययन की दृष्टि से स्तूप संख्या एक अतीव महत्त्वपूर्ण है।

स्तूप सख्या एक जिसे 'महास्तूप'[50] की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह मूलत. अशोक के समय मे ईटो का बना था जैसा कि महावश से अभिज्ञात होता है।[51] शुग काल मे यहा व्यापक निर्माण कार्य हुआ, इसी काल मे महास्तूप को शिलाच्छादित करने के अतिरिक्त अन्य स्तूप, विहार आदि निर्मित हुए।[52] प्रारम्भ मे स्तूप का व्यास 60 फिट तथा ऊँचाई 25 फिट था, शुग काल मे इसका शिलाच्छादन किया गया। इसके ऊपर महीन लेप का खोल चढाया गया जिसके ऊपर सफेद रंग की गचकारी की गयी। जिससे इसका व्यास लगभग द्विगुणित होकर 120 फुट तथा ऊँचाई 54 फुट हो गई।[53] साथ ही स्तूप के भू-सतह पर महावेदिका एव मध्य मे मध्य मेधि पर सोपान युक्त वेदिका तथा शीर्षस्थ हर्मिका महाछत्र आदि का निर्माण किया गया। स्तूप का आकार अर्धचद्राकार या औधे कटोरे के समान है। इसकी भूवेदिका कुल मिलाकर ग्यारह फुट ऊँची है। इसमे लगे स्तम्भो की ऊँचाई नौ फुट है, दो स्तम्भो के बीच दो फुट की दूरी है, इनके बीच दो सूचिया है, जिनकी लम्बाई दो फुट है। स्तम्भो के मस्तक पर गोल मुडेर वाला बडा मण्डलाकार उष्णीय है। उष्णीय के आपसी जोड और वेदिका स्तम्भो के साथ जोडने की चूल और चोटियों का प्रयोग काष्ठ शिल्प की अनुकृति प्रतीत होती है।[54] जहॉ तक भू-वेदिका पर शिल्पांकन का प्रश्न है यह अन्य स्तूपो के विरूद्ध पूर्ण रूप से अनलंकृत है अन्यथा भारत के अन्य सभी स्तूपो की भूवेदिका पर प्रभूत शिल्याकन प्राप्त होता है। यहॉ इसकी कमी को भू-वेदिका को चार समान भागो में विभाजित

---

[49] मार्शल जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, पृष्ठ-2, मार्शल, पूर्वोक्त पृष्ठ-523, अग्रवाल वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ-160।

[50] दे0चि0फ0 स0-17

[51] टर्नर, पालि एनाल्स, जे0ए0एस0वी0, खण्ड 7, पृष्ठ-930, फर्ग्युसन, जे0टी0 एण्ड सपेन्ट वर्शिप, लन्दन, 1873 (द्वि0स0) पु0मु0 दिल्ली, 1971, पृष्ठ 90, अग्रवाल, पूर्वोक्त, पृ0 160, मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, पृष्ठ-14।

[52] मार्शल जे0 तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त, पृष्ठ-2,4।

[53] मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त, पृष्ठ-3,4।

[54] अग्रवाल , वी0एस0 पूर्वोक्त, पृष्ठ-162।

करते हुए चारो दिशाओ मे चार तोरण द्वार बनाकर उन्हे प्रकृष्ट रूप से अलकृत कर इस कमी को पूरा किया गया है।

प्रथम सदी ई0पू0 के अन्तिम चरण मे किसी समय महावेदिका को चार भागो मे विभक्त करते हुए चारों दिशाओ मे चार तोरण द्वारो का निर्माण किया गया। अब तक इससे 378 अभिलेख ज्ञात हो चुके है। अभिलेखिक साक्ष्यो के आधार पर दक्षिणी तोरण द्वार सर्वप्राचीन माना जाता है जिस पर शातकर्णी के आवेशिन आनन्द द्वारा प्रदत्त दान का उल्लेख है। इसके पश्चात् क्रमश उत्तरी, पूर्वी एव पश्चिमी तोरण निर्मित हुए थे। जहां तक तोरण द्वारो के बनावट का सम्बन्ध है, वे आकार मे एक जैसे तथा 34 फुट ऊँचे है, प्रत्येक द्वार मे दो भारी स्तम्भ है। इनके ऊपर शीर्षक है। शीर्षको के ऊपर तीन आडी धरनो का पजर है धरनो के दोनो तरफ के सिरे पर आवर्त्त अलंकरण है। शीर्षको पर रखे हुए चार चौकोर ठीहे प्रत्येक धरन को एक–दूसरे से अलग करते है। इनके बीच गजारोही या अश्वारोही शिल्पित है, जिनका दर्शन आगे पीछे दोनो तरफ से होता है, स्तम्भ और निचली धरन के बाहरी कोनो पर शालभंजिकाए लगाई गयी हैं।[55]

सॉची की वेदिका एवं तोरण द्वारों पर उत्टंकित अभिलेख इस तथ्य के प्रबल एवं सक्षम साक्षी है कि इनके निर्माण मे सामान्य जनता से लेकर शिल्पकारीगरो तक ने अपने प्रभूतदान से इसका निर्माण कराया था, इसमे किसी एक व्यक्ति विशेष का हाथ न था। भरहुत की तरह साची भी जन सामान्य के उदार दानों से निर्मित हुआ था फलत सामान्य जीवन की नयनाभिराम झॉकी यहा के शिल्प मे दिखायी देती है। अभिलेखिक साक्ष्यो से अभिज्ञात होता है कि विदिशा के हाथी दात के कारीगरो के संघ ने भी यहॉ दान दिया था, जिसके निर्माण में स्वयं उनका भी हाथ रहा होगा। सभी विद्वानो ने हाथी दॉत के महीन कार्य का प्रभाव यहा के शिल्प मे स्वीकार किया है।

शिल्प के विषय–वस्तु की दृष्टि से सॉची स्तूप संख्या एक भरहुत शिल्प से साम्य रखते है जिसमे कुछ नवीन दृश्यो का सयोजन भी किया गया है। यहॉ के

[55] अग्रवाल, वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ–164।

शिल्प को दो वर्गों मे बाटा जा सकता है। पहले वर्ग मे वे दृश्य है, जिनका सपुजन एक योजना के अनुसार किया गया है। दूसरे वर्ग मे अलकरण एव प्रतीकात्मक चिन्ह है, जिन्हे बहुत बार दुहराया गया है। इसमे चार तरह के दृश्य अकित है– (1) बुद्ध के जीवन की चार घटनाए (2) यक्षमूर्तिया (3) पशु–पक्षियो की मूर्तियॉ (4) फूल–पत्तियॉ। इन दोनो वर्ग के शिल्पो से तोरण द्वारो एव उनके बडेरियो के स्तम्भो के अग्र एव पृष्ठ दोनो आकण्ठ अलकृत है। इनका प्रमुख विषय बुद्ध के जीवन–चरित्र का अकन करना है। उनमे भी इनके प्रतिहार्य कर्मो के अंकन मे अधिक रूचि दिखाई गई है। इनके लगभग तीस दृश्य अकित है। भरहुत की तरह जातकों के अंकन की यहा विस्तृत परम्परा प्राप्त नही होती। कलाकारो ने वेसत्तर जातक[56], महाकपि जातक[57], छदन्त जातक[58] एव श्याम जातक[59] के अकन मे विशेष रूचि दिखाई है। यहा बौद्ध धर्म के लौकिक मान्यताओ एव विश्वासों से सम्बन्धित दृश्यो का बाहुल्य है। अलकारिक अभिप्रायो मे बौद्ध धर्म के सुप्रचलित प्रतीक यथा गज, अश्व, सिह, विरल, वृक्ष, पूर्ण घट, यष्टि, कमल आदि नाना विविध अकन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यक्ष, यक्षिणी, कुम्भाड, गुह्यक, नाग, इन्द्र, त्रयस्त्रिश स्वर्ग आदि लोक धर्म सम्बन्धी दृश्य भी अकित है।

सॉची के कलाकारो ने ऐतिहासिक दृश्यों के अकन मे विशेष रूचि दिखाई है, इनमे राजा प्रसेनजित का बुद्ध के दर्शन के लिए आना,[60] प्रसेनजित का श्रावस्ती के आम्रवन मे आगमन, अजातशत्रु का जीवक के आम्रवन में आना[61], शुद्धोदन का बुद्ध के स्वागत के लिए नगर से बाहर आना[62], अशोक की बोधगया की यात्रा, रामग्राम के नाग स्तूप का दर्शन इत्यादि। इनके अकन मे पूर्ववर्ती भरहुत की सकुचित नियमनिष्ठ एवं यात्रिक शैली के स्थान पर कला की स्वतन्त्रता एवं कलाकार के

---

56 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, प्लेट, 23 1, 25, 27, 29 3, 31 तथा 33, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, पृष्ठ–126।

57 दे0 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, भाग दो, चित, फ0 स0–64 ए 1, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, पृष्ठ–224।

58 दे0 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, भाग दो, चि0फ0 स0 15 2, 29 1, 55.3।

59 दे0 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त भाग दो चि0फ0 स0–65 ए 1।

60 दे0 चि0फ0 स0, 21।

61 दे0चि0फ0स0 23, मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त, चि0फ0स0 50 ए।

62 दे0 चित् फ0 सं0–18।

आन्तरिक सघर्ष की प्रचण्डता का स्वर अधिक मुखर हुआ है, जो सॉची की कला को विशिष्ट गत्यात्मकता एव भावबोध प्रदान करता है।

सॉची के स्तूप सख्या एक के तोरण द्वारो पर बौद्ध धर्म के लौकिक मान्यताओ एवं विश्वासों से सम्बन्धित अनेक दृश्यो का अकन हुआ है, इसी क्रम मे प्रसगवश अनेक नगर तथा नागरिक जीवन से सम्बन्धित दृश्य भी उत्टकित किए गए है, जो तत्कालीन नगर तथा नगर–जीवन के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण है। इनमे कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम निर्मित दक्षिणी तोरण द्वार का उल्लेख किया जा सकता है। इस तोरण द्वार के निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर उत्टकित 'कुशीनगर' का दृश्यांकन महत्वपूर्ण है।[63] यह दृश्याकन दीघनिकाय के महापरिनिब्बान सूत्र के उस घटना पर आधारित है जिसके अनुसार महात्मा बुद्ध की मृत्यु मल्लो की राजधानी कुशीनारा मे हो गयी। कुशीनारा के मल्लो ने अत्यन्त सम्मान के साथ राम संभार सरोवर के तट पर शास्ता की अन्त्येष्टि की तथा उनके अस्थि अवशेषो (धातु भस्म) को एक पात्र मे सग्रहित कर अपने सभागार मे रखकर सात दिनों तक पूजा–प्रतिष्ठा की। शास्ता की मृत्यु की खबर सुनते ही राजगीर के अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छविय, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुलिय, रामग्राम के कोलिय, वेठदीप के ब्राह्मण तथा पिप्पलिवन के मोरिय कुशीनारा मे उपस्थित हुए तथा शास्ता के धातु–अवशेषो के लिए अपना–अपना दावा पेश किया। पहले तो मल्ल अस्थि अवशेषों को बाटने के लिए तैयार न हुए, जिससे संघर्ष की स्थिति उपस्थित हो गई, पर बाद में द्रोण के हस्तक्षेप से वे सहमत हुए, तथा उसमे से बराबर–बराबर एक–एक भाग सभी नरेशों को दिया गया। इन आठ अस्थि अवशेषों पर इन लोगो ने आठ स्थानो पर स्तूप का निर्माण करवाया।

इसी घटना का दृश्याकन करते हुए सॉची के दक्षिणी तोरण के निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर कुशीनगर आकारित है। यह दृश्य नगर वास्तु के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण है। नगर सुरक्षा के साधनो मे यहॉ इष्टका प्राकार का निर्माण किया गया है। प्राकार मे यथा स्थान बुर्ज एवं द्वार कोष्ठक से युक्त प्रवेश द्वार

[63] द्र0 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त, भाग दो, चि0फ0 सं0–153, मार्शल गाइड टू सांची, पृ0–75–76, अग्रवाल, वी0एस0 पूर्वोक्त, पृष्ठ–166।

(गोपुरम्) का निर्माण किया गया है, यहा दो प्रवेश द्वार दिखाई दे रहे है। दाहिनी तरफ के प्रवेश द्वार के ऊपर जो अट्टालक अथवा द्वारकोष्ठक बना है, उसकी छत अन्य अट्टालको के विरूद्ध समतल बनाया गया है[64] तथा सुन्दरता हेतु छत के किनारे कगूरे बने हुए है। प्राकार के बाहर परिखा का अकन है जिसमे कमल तथा उनके बीच तैरते राजहस आकारित है। नगर के मध्य राजमहल एव अन्य अलिन्द तथा नागरिक शालाओ का अंकन है जिसकी छत वेदिका युक्त वातायनों से नगर के नागरिक दृश्य का अवलोकन कर रहे है, इनकी छते वेसर शैली मे ढोलनाकार निर्मित है। वायीं तथा दाहिनी ओर निचले भाग मे शत्रु सेनाए, पैदल, हाथियो तथा रथो मे सवार विभिन्न आयुधो से युक्त आक्रान्त दिखाई दे रहे हैं। पैदल सैनिको के हाथ मे धनुष है जिससे बाण छोडे जा रहे है। दूसरी तरफ उस आक्रमण का प्रतिरोध करते हुए बुर्ज एव द्वार कोष्ठक में नियुक्त सुरक्षा सैनिक विभिन्न आयुधो द्वारा नगर आक्रमण को विफल करने मे सलग्न है, उसी फलक के ऊपरी भाग मे हाथियो के सिर पर छोटी पेटिका जिस पर छत्र दीख पडता है, यानी बाक्स किसी चक्रवर्ती नरेश या महान व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है। छत्र धारण किए पीलवान जा रहा है। इसका भाव यह है कि जिस अस्थि–भस्म के लिए आठ शासको मे जो झगडा हुआ था, वह शान्त हो गया। हाथी उसी भस्म–पात्र को लेकर जा रहे है।[65] इस प्रकार यह दृश्यांकन नगर स्थापत्य, यथा गोपुरम्, प्राकार अट्टालक, परिखा, राजप्रासाद एवं नागरिको, सैनिकों के वस्त्राभूषण के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सॉची मे स्तूप सख्या एक के उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के निचली बडेरी पर वेसन्तर जातक कथा का निरूपण करते हुए वेसन्तर की राजधानी 'जेतुत्तर' नगर का अकन प्राप्त होता है।[66] इस दृश्याकन में राजकुमार के जन्म से

---

[64] दे0 कुमार स्वामी, ए0के0 इस्टर्न आर्ट, जि0 2, 1930 अर्लीइण्डियन इण्डियन अर्किटेक्चर, सिटीज एण्ड सिटीगेट्स, चि0 सी पृष्ठ–17।

[65] दे0 चि0 फलक स0–18, आनन्द के0 कुमार स्वामी, ईस्टर्न आर्ट, जिल्द 2, 1930, अर्ली इण्डियन अर्किटेक्चर सिटीज एण्ड सिटीगेट्स, चि0फ0स0–123 चि0स0 6, मार्शल तथा फुशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 15 3, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, भाग एक, पृष्ठ–117।

[66] मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, भाग दो, चि0फ0स0–23ए 1, आनन्द के0 कुमार स्वामी, पूर्वोक्त चि0फ0 स0–123 चि0 स0–5 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन (दि0सं0) 1998 इलाहाबाद, चि0फ0 स0–2, आकृति–1 तथा चि0फ0स0 3, आकृति–1, अग्रवाल, वी0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ–168।

लेकर दान–पारमिता की घटनाओ का निरूपण करते हुए उसके निष्कासन, माता–पिता से आज्ञा लेकर रथ मे सवार होकर नगर से प्रस्थान, राजकीय हस्ति, घोडो और स्वदान एव परित्याग का एकत्र निरूपण करने का प्रयास किया गया है। नगर–वास्तु एव वस्त्राभूषण के अध्ययन की दृष्टि से यह दृश्याकन महत्वपूर्ण है। यहा नगर का प्राकार देखा जा सकता है जिसका निर्माण ईंटो अथवा प्रस्तर की बनाई हुई समान आकार की ईंटो के द्वारा किया गया है। इसका प्रवेश द्वार, अट्टालक एव द्वारकोष्ठक इत्यादि का अकन दृष्टिगोचर होता है, इसके द्वार कोष्ठक मे कोई सैनिक दिखाई नही दे रहा है। नगर के भीतरी भाग मे नागरिक शालाओ, छज्जो, बालकनी, तथा वतायनो से नीचे के दृश्य का अवलोकन करते नागरिक तथा नगर स्त्रियों को देखा जा सकता है।

पुन उत्तरी तोरण द्वार के पृष्ठभाग के मध्यवर्ती बडेरी के वामपार्श्व भाग पर वेसन्तर जातक कथा का निरूपण करते हुए 'जेतुत्तर नगर' का अकन किया गया है।[67] यहां नगर की सुरक्षा हेतु इष्टका प्राकार बनाया गया है, जिसका ऊपरी भाग समतल न बनाकर क्रमश पिरामिडाकार बनाया गया है। नगर मे प्रवेश हेतु प्रवेश–द्वार (गोपुर) का निर्माण किया गया है। साथ ही इसके ऊपर दो तलो वाला अट्टालक बनाया गया है जिसमें नगर सुरक्षा हेतु सैनिकों के बैठने की व्यवस्था है, किन्तु यहां इस समय कोई सुरक्षा सैनिक दिखाई नही दे रहा है। प्राकार के बाहर परिखा का विधान किया गया है। यह जल परिखा है जिसमे नगर की सुरक्षा के साथ नगर के सुन्दरता की अभिवृद्धि हेतु कमल तथा उसमें तैरते राजहस आकारित है। कौटिल्य ने ऐसी परिखा को 'पद्मवती परिखा' कहा है।[68] रामायण मे भी ऐसी परिखा का उल्लेख हुआ है।[69] नगर द्वार से दो पुर सुन्दरिया हाथ मे जलपात्र लेकर परिखा से जल भरने के उद्देश्य से बाहर निकली हुई देखी जा सकती है। परिखा के तट पर नगर उद्यान का अकन हुआ है। नगर के भीतर नागरिक शालाओ का अकन हुआ है जिसके वातायन तथा वेदिकायुक्त आलिन्द मे बैठे नागरिक एवं नगर

---

67 मार्शल जे0 तथा फूशे ए, पूर्वोक्त, भाग दो, चि0फ0स0–31, कुमार स्वामी,ए0के0 पूर्वोक्त, चि0फ0स0–124, चि0स09 राय उदय नारायण, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–1 आकृति–1।

68 अर्थशास्त्र, पृष्ठ–51 शास्त्री।

69 'परिखाभि· पद्माभि· सोत्पलमिरलकृताम्।''–रामायण, सुन्दरकाण्ड सर्ग–2, पक्ति–26।

स्त्रियॉ बाहर के दृश्य का अवलोकन करते हुए उत्टकित हैं।[70] आलोचित नगर दृश्य नगर स्थापत्य तथा नागरिक जीवन, उनके वस्त्र तथा आभूषण, केश–विन्यास के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

उत्तरी तोरण–द्वार के मुख्य भाग के पूर्वी स्तम्भ पर श्रावस्ती नगर' के बहिर्मुख का अकन प्राप्त होता है।[71] यहॉ नगर द्वार का बडा भव्य अकन हुआ है। नगर द्वार के ऊपर द्वार कोष्ठक बने हुए है, यह तीन मजिला निर्माण है, सबसे ऊपर वेसर शैली मे निर्मित ढोलनाकार छत है, सबसे निचली मजिल मे सुरक्षा सैनिक नियुक्त है। आलोचित दृश्याकन मे राजा प्रसेनजित को घोडे पर सवार होकर नगर द्वार से बाहर निकलते हुए दिखाया गया है। साथ मे घोडे पर सवार उनके अनुचर पीछे है। आगे पैदल चलते हुए विभिन्न वाद्ययन्त्रों को लिए हुए कुछ लोग चल रहे है। यहा सम्भवत सम्राट प्रसेनजित बुद्ध के दर्शन के लिए जेतवन जा रहा है।[72] नगर द्वार के दाहिनी तरफ प्राकार का शीर्ष भाग दिखाई दे रहा है, यह ईंटो द्वारा बना हुआ प्रतीत होता है। प्राकार के पीछे नागरिक शालाओ का अकन है। जिसकी छत सामने की ओर खम्भो पर टीकी हुई है। यहॉ सात खम्भे स्पष्टत. दिखाई दे रहे हैं ऊपर छत है, जिस पर बायी तरफ एक कमरे का निर्माण किया गया है जिसकी छत समतल बनाई गयी है, सामने का छत खुला दिखाया गया है जिस पर पुर सुन्दरिया बैठकर दृश्य का अवलोकन कर रही है। सामने की ओर छत पर वेदिका बनाई गयी है, ठीक उसके पीछे पुन· एक निर्माण है जिसकी छत चार खम्भो के सहारे बनाई गई है। इस नागरिकशाला के बांयी तरफ पुनः एक नागरिक शाला का प्रथम तल दिखाई दे रहा है, जो चार खम्भो पर टिका हुआ है, छत के सामने वेदिका बनी हुई है, दोनों कोनो पर खम्भा दिखाई दे रहा है, छत पर चार पुर सुन्दरियॉ दृश्य को देखते हुए उत्टंकित है। इस प्रकार आलोचित दृश्यांकन नगर स्थापत्य विशेष कर नगर द्वार एवं भवन निर्माण तकनीक के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण है।[73]

---

[70] दे० चि०फ०सं०–20।
[71] मार्शल, जे० तथा फुशे, ए० पूर्वोक्त, चि०फ०स०–34b।
[72] अग्रवाल, वी०एस० पूर्वोक्त, पृष्ठ–169।
[73] दे० चि०फ०स०–21 (क्रमानुसार तीसरा दृश्य)।

नगर स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से सॉची स्तूप सख्या एक के उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग का पश्चिमी स्तम्भ महत्वपूर्ण है। इस दृश्यांकन मे सम्भवत पश्चिमी स्तम्भ महत्वपूर्ण है। इस दृश्याकन मे सम्भवत कपिलवस्तु का वहिर्मुख दिखाया गया है।[74] यहॉ नगर द्वार (गोपुर) का बडा सुन्दर अकन हुआ है। गोपुर के ऊपर द्वारकोष्ठक बनाया गया है, जिसकी छत वेसर शैली मे निर्मित है जो शुग कला की विशेषता है। नगर द्वार से एक घोडा बिना सवार के आगे चलता हुआ प्रदर्शित है उसके पीछे दो घोडो से जुते रथ पर हाथ मे छत्र लिये सारथी बैठा है। बाहर अंजलीबद्ध मुद्रा मे नागरिक खडे है, जिनके सिर पर वृहदाकार पगडी दिख रही है। एक नागरिक, अपने हाथ मे जलपात्र लिए हुए है। नगर द्वार से लगा हुआ प्राकार निर्मित है, यह इष्टका प्राकार प्रतीत होता है जिसका ऊपरी हिस्सा समतल न बनाकर क्रमश. पिरामिडाकार बनाया गया है।

नगर के भीतर नागरिक शालाओं का अकन हुआ है जिसका प्रथम तल दिख रहा है, यह तल नीचे लगे विभिन्न स्तम्भो के सहारे पर टिका हुआ है। छत के सामने वेदिका निर्मित है, यह काष्ठ शिल्प की अनुकृति प्रतीत होती है। सबसे बाऍ निर्मित नागरिक शाला की छत पर नागरिक एवं नगर स्त्रिया बाहर के दृश्य को देखते हुए अंकित है। इसके ऊपर द्वितीय तल है। सबसे ऊपरी तल की छत वेसर शैली में निर्मित है। इसके दाहिनी तरफ छत से तीन पुर–सुन्दरियॉ खडी होकर बाहर देख रही हैं जो अपने हाथ मे कुछ पकडी हुई है। हाथों मे क्रमश. बडी होती हुई चूडियॉ तथा इसी प्रकार पैर मे भी पैर का आभूषण दिखाई दे रहा है। गले मे माला एवं कान में कर्णभूषण धारण की हुई है। ठीक इसके दाहिनी तरफ दूसरी नागरिक शाला अंकित है जिसकी बालकनी मे दो स्त्रिया दृश्य का अवलोकन करती हुई दृश्याकित हैं।

कोसल की राजधानी श्रावस्ती का अंकन मिलता है[75]। आलोचित दृश्यांकन में कोसल राज प्रसेनजित को श्रावस्ती के नगर द्वार से दो घोड़ों के जुते रथ पर

---

[74] दे० चि०फ०स०–22 मार्शल, जे० तथा फूशे, ए०, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–35 ए–1।

[75] मार्शल, जे० तथा फूशे, ए०, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 35 वी 2 आनन्द के० कुमार स्वामी, पूर्वोक्त चि०फ०सं० 125, चि०स० 12 राय, उदय नारायण, पूर्वोक्त चि०फ०स० 9 आकृति–1।

सवार होकर स्तूप निर्माण के उद्देश्य से बुद्ध के अस्थि भष्म के साथ निकलते दिखाया गया है। उनके पीछे उनके अनुचर हाथियो एव पैदल प्रधान नगर द्वार की तरफ जाते हुए उत्टकित है, रथ के आगे राजगृह के नागरिक विभिन्न वाद्य यत्रो को बजाते हुए देखे जा सकते है।

जहा तक नगर स्थापत्य का सम्बन्ध है, यहॉ नगर प्राकार का ऊपरी भाग दिखाई दे रहा है जो ईंटो अथवा समान आकार की प्रस्तर खण्डो से निर्मित है। प्राकार में नगर द्वार है जिसके ऊपर द्वार कोष्ठक बने हुए है, यह दो तलो वाला है जिसकी छत वेसर शैली में निर्मित है, निचले तल मे सुरक्षा सैनिक राजकीय जुलूस को देख रहे है। नगर के बीच नागरिक शालाओं का अकन है। जिसकी वेदिकायुक्त आलिद से नगर स्त्रिया जुलूस को देख रही है।

सॉची के स्तूप संख्या एक के पूर्वी तोरण द्वार के मुख्य भाग की मध्यवर्ती बडेरी पर शाक्य राजधानी कपिलवस्तु का अकन प्राप्त होता है। यहॉ उत्टकित दृश्याकन मे गौतम बुद्ध के 'महाभिनिष्क्रमण' को दर्शाया गया है जो अश्व पृष्ठ पर आरूढ होकर निकलते हुए दिखाए गए है, उनके पीछे सारथी छन्दक छत्र लिए हुए है। यहॉ नगर प्राकार का एक छोटा भाग दिखाई दे रहा है, यह प्रस्तर प्राकार है। जहॉ तक प्रवेश द्वार का सम्बन्ध है, अन्य नगरो से भिन्न यहा तोरण द्वार बनाया गया है। इसमें दो स्तम्भ उर्ध्व खडे है, जिनके ऊपर एक क्षैतिज रखा हुआ है। बाहर परिखा का अकन किया गया है। प्रवेश द्वार के सामने हाथ में जल पात्र लिए दो स्त्रियॉ परिखा से जल भरने के उद्देश्य से खडी है। परिखा को पार करने हेतु पुल का निर्माण किया गया है। प्रवेश द्वार के बॉयी तरफ द्वार–कोष्ठक' का निर्माण किया गया है जिसके बीच मे प्रवेश द्वार है जिसमे कपाट लगे हुए है। ऊपर स्तम्भो के सहारे आलिन्द का निर्माण किया गया है जिसमें सुरक्षा प्रहरी बैठे हुए हैं। इसकी छत वेलनाकार बनाई गयी है, जिसके ऊपर स्तूपिकाएं लगाई गयी है। सामने की ओर चैत्य गावाक्ष लगे हुए है। नगर के बाहर वह नगर उद्यान शिल्पित है, जिसे शुद्धोधन ने सिद्धार्थ के विहारार्थ समर्पित किया था। नगर प्राकार के भीतर नगर का

दृश्यांकन है जिसमे महलो के छत, वालकनी एव वातायनो से नागरिक, राजकुमार के वहिर्गमन को भावपूर्ण मुद्रा मे देख रहे है।[76]

सॉची स्तूप सख्या एक के पूर्वी तोरण द्वार के उत्तरी स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर सबसे ऊपर कपिलवस्तु के राजप्रासाद के ऊपरी भाग का अकन हुआ है, यहा 'माया देवी का स्वप्न' का दृश्याक हुआ है। प्रासाद के ऊपरी छत पर माया देवी सोई हुई है, उनके सिर की तरफ एक छोटा सा निर्माण दीख पडता है। सम्भवत. कोई कमरा होगा। उसमे छोटे-छोटे छिद्रो वाला जगला लगा है, इसके छत पर सुन्दरता हेतु पिरामिडाकार वेदिका बनी है। माया देवी के पीछे भी प्रासाद का दूसरा तल दिखाई दे रहा है, इसकी छत वेसर शैली मे निर्मित है तथा इसमे चैत्याकार खिडकी लगी हुई है, बगल में मोर बैठा हुआ है, ऊपर हाथी का चित्र खुदा है, जो बुद्ध के जन्म का प्रतीक है। इस राजप्रासाद के दाहिनी तरफ एक दूसरा महल दिख पडता है जिसमे आलिन्द बनी हुई है। आलिन्द के छत को सहारा देने के लिए स्तम्भो का प्रयोग किया गया है, इसकी छत बेलनाकार है जिसमे चैत्य प्रकार की दो खिडकिया लगी है।[77] इसदृश्य के नीचे हाथियो एव घोडो पर सवार शाक्य एव उनके भवनों को शिल्पांकित किया गया है। यहा दो तलो वाला भवन दिख पडता है जिसमे पीलरो का प्रयोग किया गया है, सबसे ऊपरी तल की छत वेसर शैली मे निर्मित है। भवन के दोनो तल से स्त्रियॉ नगर दृश्य का अवलोकन कर रही है।[78] इसके नीचे राजा शुद्धोधन को दो घोडो से युक्त रथ पर आरूढ होकर प्रधान नगर द्वार (गोपुर) से बाहर निकलते हुए दर्शाया गया है। रथ के पीछे हाथी पर सवार उनके अनुचर तथा कुछ पैदल चलते हुए उत्टंकित है। यहा नगर द्वार (गोपुर) का बडा सुन्दर अकन हुआ है। नगर द्वार के ऊपर द्वार कोष्ठक बने है जिनकी छत्र स्तम्भों पर टिकी है, इसके छत को बेलनाकार बनाया गया है, जिसमे चैत्य प्रकार का गावाक्ष लगा हुआ है। इसमें बैठे सुरक्षा प्रहरी बाहर देखते हुए

---

[76] दे0 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0-40 2, कृष्णमूर्ति के0, चि0फ0स0 5 b, कुमार स्वामी, ए0के0 पूर्वोक्त चि0फ0स0 123, चि0 4, चि0ए, राय उदय नारायण पूर्वोक्त, चि0फ0स0 4 आकृति-1, मार्शल, जे0 गाइडटू सॉची, पृष्ठ-60।

[77] दे0 चि0फ0 स0-24।

[78] दे0चि0फ0स0-23 (क्रमानुसार दूसरा दृश्य)।

अकित है।[79] निचले भाग मे नगर का उद्यान शिल्पाकित है, जिसे शुद्धोधन ने राज कुमार सिद्धार्थ को उनके विहारार्थ समर्पित किया था। सबसे निम्न तल पर बोधिवृक्ष का अकन है जिसके सामने धोती और सिर पर पगडी धारण किये हुए उपासकगण उपस्थित हैं।[80]

महास्तूप के पूर्वी तोरण द्वार के दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ के मुख्य भाग पर मगध की राजधानी 'राजगृह' का अंकन मिलता है। यहॉ मगध राज अजातशत्रु दो घोडो वाले रथ पर सवार होकर बुद्ध के अस्थि अवशेष को स्तूप में गर्भित करने के उद्देश्य से प्रधान नगर द्वार से निकलते हुए प्रदर्शित है। इनके पीछे नगर के राजमार्ग पर हाथियो पर सवार उनके अनुचर तथा पैदल चलते हुए लोग नगर–द्वार की ओर आगे बढ रहे है। अजातशत्रु के रथ के आगे विभिन्न वाद्य यन्त्रों से युक्त नागरिक उत्टंकित है।

आलोचित दृश्याकन नगर–वस्तु के अध्ययन की दृष्टि महत्वपूर्ण है। यहॉ प्रधान नगर द्वार आकारित है, जिसके ऊपर द्वार–कोष्ठक का निर्माण किया गया है जिसमे सुरक्षा प्रहरी बैठे हुए है। अट्टालक की छत पीलरो पर टिकी हुई है; छत की बनावट वेलनाकार है जिसके ऊपर स्तुपिकाए लगी हुई हैं। सामने दो चैत्य गावाक्ष लगे हुए है। नगर–द्वार के बांयी तरफ नगर प्राकार का छोटा भाग दिखाई दे रहा है।

नगर के भीतर नागरिक भवनो का अकन हुआ है जिसमें मजबूती प्रदान करने के लिए पीलरो का प्रयोग किया गया है। इसमे एक तीन मजिला भवन दिखाई दे रहा है, जिसके पहली मजिल पर तीन स्त्रियॉ दृश्य का अवलोकन करते हुए अंकित हैं, छत के सामने वेदिका बनी हुई है। दूसरे तल की छत को सहारा देते हुए चार स्तम्भ अंकित हैं दूसरे तल पर तीन तरफ से तीसरी मंजिल का निर्माण हुआ है तथा बीच में खाली जगह है, जिसमें दो स्त्रियॉ खडी है। इनके दोनों तरफ तीसरी मंजिल को सहारा देते हुए चार–चार स्तम्भ अंकित हैं। भवन के

---

79 दे0चि0फ0स0–24, (क्रमानुसार तीसरा दृश्य)।

80 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–50 ए–1।

सबसे ऊपरी मजिल की छत वेलनाकार है जिसमे चैत्य गावाक्ष लगे हुए हैं। इस भवन की दाहिनी तरफ एक दूसरी नागरिक शाला का अंकन है जिसमे नीव से ही छत को मजबूती प्रदान करने के लिए लम्बे–लम्बे स्तम्भो का प्रयोग किया गया है। इन स्तम्भो को अष्टपहला बनाया गया है, बगल मे चैत्य गावाक्ष लगा है, ऊपर की छत वेदिकायुक्त है जिसके पीछे दो स्त्रियॉ खडी है।[81] भवन निर्माण तकनीक के अध्ययन की दृष्टि से आलोचित दृश्यांकन अतीव महत्वपूर्ण है, इससे प्राचीन भारत के नगरो मे भवन निर्माण की उच्च तकनीक का पता चलता है।

सॉची स्तूप संख्या एक के पश्चिमी तोरण की ऊपरी बडेरी के पृष्ठतल पर 'कुशीनगर' का वहिर्मुख का अकन हुआ है।[82] आलोचित दृश्याकन में मल्ल सरदार बुद्ध के धातु को कुशीनगर ले जाते हुए अंकित है इसमें हाथी तथा घोडे पर सवार मल्ल सरदार तथा बुद्ध के शिष्य कुशीनगर जाते हुए प्रदर्शित है। हाथियो के आगे विभिन्न वाद्य यन्त्रो को बजाते हुए नागरिक उत्टकित हैं। नगर–प्रवेश द्वार के बगल मे बोधि वृक्ष अकित है।यहॉ नगर प्राकार का भव्य अकन हुआ है, यह प्रस्तर द्वारा निर्मित है। प्राकार का शीर्ष भाग कगूरे से युक्त है। नगर द्वार के ऊपर द्वार कोष्ठक का निर्माण किया गया है, जिसमे नगर रक्षक बैठे हुए है। नगर के भीतर नागरिक शालाएं बनी हैं, इनकी छत वेदिका युक्त है, छत से नगर स्त्रियॉ दृश्य का अवलोकन करते हुए उत्टकित है।

पुन· इसी तोरण द्वार (पश्चिमी पृष्ठतल) के मध्यवर्ती बडेरी पर 'धातुयुद्ध' को दृश्यांकित करते हुए कुशीनगर दृश्याकित है।[83] नगर के सामने हाथी तथा घोडों पर सवार विभिन्न नरेश तथा उनकी सेनाएं कुशीनगर की ओर बढ रही है। कुछ घोडे तथा हाथियों पर छत्र दिखाई दे रहा है, इसका अर्थ है कि ये सवार बुद्ध के शिष्य है। यहॉ नगर प्राकार का बडा सुन्दर अकन हुआ है, समान आकर की गढी हुई

---

81 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–51बी, कृष्णमूर्ति, के0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 15बी, कुमार स्वामी ए0के0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–124, चि0–11।

82 'मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–61 1, कृष्णमूर्ति के0, पूर्वोक्त, चि0फ0 स0–35 ए, राय उदय नारायण पूर्वोक्त चि0फ0स0–7 (ऊपरी बडेरी) मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, पृष्ठ–115।

83 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 61 2, कृष्णमूर्ति, के0 पूर्वोक्त, चि0फ0स0–35 बी, राय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, चि0फ0 स0–7 (निचली बडेरी), कुमार स्वामी, ए0के0 पूर्वोक्त, चि0फ0सं0 124, चि0स0–8, मार्शल तथा फुशे पूर्वोक्त, पृष्ठ–112।

प्रस्तर की ईंटें एक दूसरे पर दृढता से न्यस्त है। प्रो0 उदय नारायण राय ने इसकी तुलना कौटिल्य के 'पाषाणेष्टका' से की है।[84] प्राकार का ऊपरी सिरा कगूरे से युक्त बनाया गया है। प्राकार के सामने पद्य परिखा उत्टंकित है। प्राकार मे प्रवेश–द्वार बना है, जिसके ऊपर द्वार कोष्ठक का निर्माण किया गया है जिसकी छत स्तम्भो के सहारे पर टिकी है। द्वार–कोष्ठक की छत वेसर शैली मे निर्मित हैं जिसमें चैत्य गावाक्ष लगे हुए है। नगर द्वार के दाहिनी तरफ इन्द्रकोश बना हुआ है जिसके चारो तरफ वेदिका का निर्माण किया गया है, इसके भीतर दो सुरक्षा सैनिक बैठे है।

नगर के भीतर नागरिक शालाओ का अंकन हुआ है। यहॉ एक भवन दिखाई दे रहा है जिसके सामने निकले छज्जे के नीचे दो स्त्रियॉ तथा एक पुरुष खडा है। स्त्रियो के गले मे हार दिखाई दे रहा है, कान में कर्णाभूषण है। पुरूष अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाए हुए हाथ में कुछ लिया है। उसके ऊपरी तल्ले पर तीन तरफ से निर्माण कार्य किया गया है, सामने की छत खाली है। छत के किनारे वेदिका बनी है, इस पर सम्भवतः कोई कपडा फैलाया गया है जिस पर हाथ रखे दो स्त्रियॉ बाहर देखते हुए उत्टंकित हैं। इसकी छत बेलनाकार है, सामने तथा बीच में चैत्य गावाक्ष लगे हैं। सामने की ओर चैत्य गावाक्ष के नीचे वर्गाकार छोटी छिद्रो से युक्त वातायन लगे हुए हैं, इस भवन के दाहिनी तरफ एक दूसरी नागरिक शाला आकारित है।[85] इस प्रकार यह दृश्याकन नगर स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

इस प्रकार सॉची की कला में विभिन्न नगर दृश्य दृश्याकित है जो नगर स्थापत्य तथा नागरिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सॉची की इस ओजस्वी एवं प्रखर शिल्प राशि मे तद्युगीन समाज अपनी समस्त पार्थिव आकांक्षाओं, आकर्षण, भव्यता, सौन्दर्य एवं वर्णनात्मक काल्पनिकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। सॉची मे शिल्पित आख्यानों में जीवन के प्रति उद्दाम लालसा तथा असंयत आकर्षण पूर्ण वेग के साथ प्रकट हुआ है।

---

84 राय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ–347।

85 दे0चि0फ0 स0–26।

भरहुत और सॉची की कला के तुलनात्मक अध्ययन से दोनो के भावबोध की पृथकता सिद्ध हो जाती है। भरहुत मे मनुष्य, पशु एव वनस्पति जगत इन तीनो का अकन प्रकृति के विविध घटको के रूप मे हुआ है, वहॉ वे एक–दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध है। इसके विपरीत सॉची की कला मे इन तीनो का अकन विशिष्ट अर्थों मे हुआ है। मानवाकृतियों का अकन प्रकृति के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप मे हुआ है। साथ ही पशु जगत एव वनस्पति जगत के विविध रूपो का अकन मात्र अलकारिक अभिप्राय के रूप मे ही नही हुआ है अपितु इनके अकन मे अपने पूर्ववर्ती शैली की अपेक्षा अधिक सहजता है। कथानको के अकन की शैली, भरहुत की वर्णनात्मक कथात्मक शैली ही है किन्तु दृष्टि सयोजन में भरहुत के समान वैषम्य नही है।

अमरावती स्तूप

अमरेश्वर शिव के नाम पर बसी अमरावती प्राचीन धान्यकटक का नया नाम है। यह आन्ध्रप्रदेश के गुण्टूर जिला मुख्यालय से 21 मील दूर कृष्णा नदी के दाहिने तट पर स्थित है।[86] इससे आधे मील की दूरी पर, पश्चिम की ओर 'धरणिकोट' नामक वह स्थान है, जो किसी समय सातवाहनो की राजधानी 'धान्यकटक' के नाम से प्रख्यात थी। इस स्थल के चतुर्दिक् ईंटों से निर्मित दीवाल की सम्प्राप्ति प्राचीन काल में 'धान्यकटक' के महत्व को रेखांकित करती है।[87] यह स्थल सातवाहन नरेशो के समय अपने बौद्ध महास्तूप के लिए प्रख्यात था, किन्तु अद्यतन प्राय· अपने मूल स्थान पर कुछ भी शेष नही है।

काल के गर्त में डूबे अमरावती की कलानिधि को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय कर्नल मेकेजी को है, जिन्होने 1797 ई० मे इस स्तूप के ध्वंशावशेषो को देखा था। 1816 ई० में इन्होंने स्थल की समीक्षा की और प्राप्त अवशेषो और मूर्तियो का सूक्ष्म अध्ययन कर इस क्षेत्र का चित्र एवं मानचित्र तैयार किया। यहॉ से प्राप्त

---

86 राय, आनामिका, अमरावती स्तूप. ए क्रिटिकल कम्पेरिजन ऑव इपिग्राफिक, आर्टिटेकचरल एण्ड स्कल्पचरल एविडेन्स, अगम कला प्रकाशन, दिल्ली, 1994 (प्र०सं०) पृ० 1, शिवराममूर्ति, सी०, अमरावती स्कल्पचर्स इन द गर्वमेन्ट म्यूजियम, मद्रास 1942, पृ० 3।

87 राय, अनामिका, वहीं, पृ० 1।

पुरानिधियो को इन्होने मद्रास, कलकत्ता तथा लन्दन के सग्रहालयो मे सुरक्षित करवाया, अद्यतन ये पुरानिधियॉ आज भी यही सुरक्षित हैं।[88]

अमरावती से कुछ दूरी पर स्थित धरणिकोट से सन् 1830 ई० मे मच्छलीपट्टनम के तत्कालीन जिलाधिकारी रावर्टसन् ने 30 श्लैव प्राप्त किया तथा उनका नामकरण कर उन्हें लन्दन के संग्रहालय मे भेज दिया। पुन 1840 ई० मे गुण्टूर के तत्कालीन कमीश्नर वाल्टर इलियट ने स्तूप के दक्षिणी–पश्चिमी भाग मे खुदाई करवायी और प्राप्त कलात्मक पुरावशेषो को मद्रास भेज दिया, जो अन्तत. लन्दन भेज दी गयी। फर्ग्यूसन ने इन कलाकृतियो को ब्रिटिश सग्रहालय मे रखवाया, जो आज भी वही सुरक्षित है।

किन्तु धान्यकटक की महान शिल्प–निधि निःशेष नहीं हुई। 1876 ई० मे रावर्ट सिवेल ने यहॉ टीले के उत्तर–पश्चिम भाग में खुदाई करवाई लेकिन परिणाम की दृष्टि से यह उत्खनन बहुत सतोष जनक नही रहा। सन् 1879–80 में मद्रास के राज्यपाल बकिंघम के ड्यूक ने उस स्थान की पूरी सफाई का आदेश दिया जिससे स्तूप का नाम शेष हो गया। 1881 में बर्जेस ने पूर्व उत्खनन से प्राप्त 300 मूर्तियो एव तत्कालीन उत्खनन के 79 शिलापट्टों को तीन बार मे मद्रास संग्रहालय भेज दिया।

पुनः 1905–6 तथा 1908–9 ई० मे एलेक्जेण्डर, री ने यहॉ उत्खनन कराया और प्राप्त पुरावशेषो को मद्रास के संग्रहालय मे भेज दिया। 1958–59 में डा० आर० सुब्रमणियम तथा 1974–75 ई० मे आई०के० शर्मा और आर० सुब्रमणियम ने यहॉ एक बार फिर उत्खनन कराया।[89]

उपर्युक्त क्रिया–कलापों के बारे में डा० वी०एस० अग्रवाल की यह टिप्पणी एकदम खरी उतरती है कि "इससे तो ऐसा लगता है मानों इन्द्र की सुधर्मा सभा के अवशेषो की लूट मची है।"[90] पर सन्तोष इतना ही है कि अमरावती के अधिकांश शिलापट्ट नष्ट होने से बचा लिए गए और अब उसके आधार पर मूल स्तूप का

---

[88] अग्रवाल, वी०एस०, भारतीय कला, 1995 (पु०मु० सस्करण) पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, पृ० 297।
[89] राय, अनामिका, पूर्वोक्त, पृ० 3–4।

ताना–बाना बुना जाना सम्भव है। वर्तमान मे स्तूप के जो पुरावशेष ससार के जिन सग्रहालयो मे सग्रहित है उनमे[91]–

1 अमरावती म्यूजियम गुण्टूर।

2 मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम मद्रास।

3 नेशनल म्यूजियम, दिल्ली।

4 इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता।

5 ब्रिटिश म्यूजियम लंदन।

6 म्यूजिग्यूमेण्ट, पेरिस।

7 वोस्टन म्यूजियम यू०एस०ए०।

संसार के इन विभिन्न संग्रहालयो में बिखरी सामग्रियो का अध्ययन एक दुष्कर कार्य था, किन्तु कर्नल मेंकेजी, जे० बर्जेस तथा स्वेल के आरम्भिक प्रयासो तथा परवर्ती विचारको बैकोफर, शिवराममूर्ति, डी० बैरेट, टी०एन० रामचन्द्रन, कुमारस्वामी, एस०के० सरस्वती, बी०एस० अग्रवाल, ए० घोष, एच० सरकार, विद्या दहेजिया, डा० अनामिका राय एव अन्य विद्वानो के प्रयास से अमरावती की कला अपनी पूर्णता मे सामने आ सकी।

अमरावती के महास्तूप के निर्माण मे भी समकालीन अन्य कलाकृतियों के समान राज वर्ग से लेकर सामान्य वर्ग तक के व्यक्तियों ने अपना सहयोग प्रदान किया था। इन दान दाताओं मे प्रमुख रूप से वणिज, सार्थवाह, हेरणिक, गृहपति, उपासक, पाणियधरिक, राज कर्मचारी तथा राज लेख प्रमुख थे। उत्टंकित अभिलेखो से अभिज्ञात होता है कि दूरस्थ देश जैसे दमिल, घण्टशाल, विजयपुरी, राजगृह, पाटलिपुत्र इत्यादि स्थलों के दाताओ ने भी इस स्तूप के निर्माण में अपने प्रभूत दान से सहयोग प्रदान किया था।

---

[90] अग्रवाल, वी०एस०, पूर्वोक्त, पृ० 298।

अमरावती की कला मे शिल्प श्रेणियो एवं व्यापारियो का अत्यधिक योगदान था। द्वितीय शताब्दी ई०पू० के आवेशनीनो नामक दो अभिलेख मिले है, जो स्पष्टत स्तूप निर्माण में शिल्प श्रेणीयो के योगदान को रेखांकित करते है। इसके अतिरिक्त शिल्पियो के चिह्न से अकित अनेक अभिलेख अभिज्ञात है, जो इस तथ्य के सक्षम साक्षी हैं कि उक्त श्रेणियॉ यहॉ कार्य कर रही थी। जिसका विस्तृत विवेचन एच० सरकार[92] तथा डा० अनामिका राय[93] ने किया है।

इस प्रकार प्राप्त अभिलेखिक साक्ष्यो के आधार पर हमे यह कहने मे कोई कठिनाई नही है कि कृष्णा घाटी की इस कला में जो दानपरक अभिलेख प्राप्त होते है, वे इस तथ्य के सक्षम साक्षी है कि महास्तूप के कलात्मक उन्नयन में एक नगरीय अर्थव्यवस्था का योगदान था, जो व्यापार और शिल्प पर निर्भर करती थी।

विभिन्न व्यक्तियों के प्रभूत दान एवं सहयोग से निर्मित अमरावती का यह प्रसिद्ध स्तूप तेरहवी शताब्दी तक सुरक्षित था, इस तथ्य की पुष्टि अमरेश्वर मदिर के स्तम्भ पर उत्टकित 1182 तथा 1234 ई० के अभिलेख से होती है। इन अभिलेखों मे धान्यकटक के स्तूप, शिलापट्टो तथा बुद्ध प्रतिमा के रक्षार्थ दान दिए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। अच्छे किस्म के चूना पत्थर की शिलाओ से आच्छादित एव विभिन्न प्रकार की मूर्तियो तथा प्रतीको द्वारा प्रकृष्ट रूप से अलंकृत, भरहुत स्तूप के लगभग द्विगुणित आकार वाला यह विशाल स्तूप किसी एक काल की देन नही है। विभिन्न कलाकृतियों पर उत्टंकित अभिलेखो के लिपि शास्त्रीय विवेचन, विषयवस्तु और मूर्ति शिल्प के विश्लेषण के उपरान्त विद्वानों ने यहॉ लगभग पॉच शताब्दियो तक चले सक्रिय निर्माण कार्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सी० शिवराममूर्ति ने अमरावती की कला के चार युग भेद[94] स्वीकार किए है–

91 राय, अनामिका, पूर्वोक्त, पृ० 4।

92 सरकार, एच० "सम अर्ली इन्सक्रिप्सन्स इन अमरावती म्यूजियम, जर्नल ऑव ऐशेण्ट इण्डियन हिस्ट्री,–IV पृ० 1–13, कलकत्ता।

93 राय, अनामिका, अमरावती स्तूप· ए क्रिटिकल कम्पेरिजन ऑव इपिग्राफिक, अर्टिटेक्चरल एण्ड स्कल्पचरल एविडेन्स, 1994, अगम कला प्रकाशन दिल्ली, पृ० 9–84।

94 शिवराम मूर्ति सी, अमरावती, स्कल्पचर्स इन द मद्रास गवर्मेन्ट म्यूजियम, 1942 (बुलेटिन ऑव द मद्रास गवर्मेन्ट म्यूजियम) पृ० 26–32।

(1) प्रथम युग – (200 ई० पू० – 100 ई०पू०)

(2) द्वितीय युग – (100 ई० पू० – 100 ई०)

(3) तृतीय युग – (100 ई० – 150 ई०)

(4) चतुर्थ युग – (200 ई० – 250 ई०)

वास्तव मे विषय सम्बन्धी अभिलेखो की अमरावती मे विद्यमानता तथा भरहुत कला से यहाँ कि आरम्भिक कृतियो की सादृश्यता से अमरावती की प्राचीनता दूसरी शताब्दी ई० मानना समीचीन प्रतीत होता है। कुछ वर्ष पूर्व अशोक के अभिलेख की अमरावती से सम्प्राप्ति के आधार पर यह सभाव्य प्रतीत होता है कि अमरावती का मूल स्तूप सम्भवतः अशोक द्वारा निर्मित कराया गया होगा। इस प्रकार अमरावती का क्रमिक विकास प्रमाणित है।

प्रथम युग : इस युग मे अमरावती स्तूप का निर्माण हुआ तथा कुछ अलकारिक अभिप्रायों से इसे सजाया गया। सामान्यतया ये अलकारिक अभिप्राय भरहुत कला शैली के सन्निकट प्रतीत होते है। इस युग की कलाकृतियो मे बुद्ध के मूर्ति का अंकन प्राप्त नहीं होता अपितु उन्हें प्रचलित विविध प्रतीको के माध्यम से उनकी उपस्थिति का बोध कराया गया है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्यों को यहाँ विशेष रूप से उत्टंकित किया गया है इनमे प्रमुख रूप से बुद्ध द्वारा गृहत्याग अर्थात् महाभिनिष्क्रमण[95] इसमे बुद्ध की मूर्ति को न दिखा कर अपने पूर्ववर्ती कलाकृतियो के समान बिना सवार के घोडे द्वारा प्रतीकात्मक रूप से दिखाने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त सम्बोधि प्राप्त बुद्ध का पूजन, चूडामह अर्थात् बुद्ध के केशों का स्वर्ग को परिवहन, पात्रमह[96] यहाँ भगवान बुद्ध के भिक्षा–पात्र को एक टोकरी में रखकर मध्य में एक मनुष्य जुलूस के साथ जा रहा है। इसके अतिरिक्त भार द्वारा बुद्ध की तपस्या भंग करने हेतु किये गये प्रयास का दृश्यांकन[97] विभिन्न पशुओं द्वारा स्तूप पूजा का प्रदर्शन, बन्दरों द्वारा बुद्ध को मधु प्रदान करने

---

[95] वही, पृ० 154, चि०फ०सं०–19।

[96] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, द बुद्धिस्ट आर्ट ऑँव नागार्जुनकोण्डा, दिल्ली, प्रथम सस्करण, 1994 चि०फ०स०–156।

का दृश्य, बुद्ध का निरजना नदी में स्नान,[98] जटिलो का धर्म परिवर्तन,[99] बुद्ध के पादुका का पूजन[100] इसके अतिरिक्त बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् शरीर अवशेष के विभाजन को लेकर उठे विवाद को अपने पूर्ववर्ती सॉची की कला की तरह यहॉ भी दिखाने का प्रयास किया गया है।[101] इसके अतिरिक्त अगूलीमाल डाकू की कथा का भी अंकन यहॉ से प्राप्त होता है।[102]

इस युग की कला मे पशुओ का अंकन भी बहुतायत मात्रा मे हुआ है, उन्हे स्वाभाविक एव काल्पनिक दोनों रूपों मे दर्शाया गया है। इनमे स्वभावजनित चौकडी भरते हिरण की चचलता और सतर्कता मनमोहक है काल्पनिक पशुओ मे हाथी के मस्तक से युक्त घटोदर या लम्बोदर यक्ष मूर्तियॉ है, जिनसे कालान्तर मे गणेश मूर्तियो का विकास हुआ।[103] ईहागृग पशुओ मे श्येनव्याल अर्थात् गरुड मस्तक के साथ सिह शरीर की आकृतियॉ बलिष्ठ और प्रभावशाली है। इसके अतिरिक्त वेदिका के उष्णीष पर महामाल्यो को कन्धो पर वहन करती हुई छोटी यक्ष मूर्तियॉ गजानन यक्ष के अतिरिक्त अन्य यक्ष–यक्षिणी आकृतियॉ भी अमरावती की कला मे रूपायित है।

यहॉ की कला में स्त्री और पुरुषों को प्रभावशाली वस्त्र एव आभूषण के द्वारा सुसज्जित दिखाया गया है। वस्त्र एवं आभूषणों के अध्ययन की दृष्टि से तद्युगीन कला अतीव महत्व रखती है। पुरुषों के सिर पर वृहदाकार पगडी, कानो मे कर्णाभूषण, व प्राकार शैली के कुण्डल, ग्रीवा में अनेक प्रकार के हार, स्त्रियो के कटि में चौडी मेखलाएँ, पैरों में भारी आभूषण, पुष्प, लता एवं अन्य अलंकारिक अभिप्रायों का यहॉ खुलकर अकन हुआ है।

---

97 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, पृ० 152–53, चि०फ०स०–15, चि०स०–3।

98 वही, पृ०–152।

99 वही, चि०फ०स०–14, चि०स०–1, पृ० 155–56।

100 राय, निहार रजन, मौर्य तथा मौर्योत्तर कला, प्रथम सस्करण, 1979, (अुनवाद गोरख प्रसाद पाण्डेय, मैकमिलन प्रकाशन) दिल्ली, चि०फ०स०79।

101 राय, अनामिका, अमरावती स्तूप पृ० 123, चि०फ०स०–41, शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, पृ० 157, चि०फ०स०–14, चि०स०2, राय, उदयनरायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर–जीवन, (द्वितीय सशोधित तथा परिवर्द्धित सस्करण) 1998, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चि०फ०स०–18, आकृति–1।

102 बर्जेस, जे०, द बुद्धिस्ट स्तूपाज ऑव अमरावती एण्ड जगय्यपेठा इन द कृष्णा डिस्ट्रिक्ट, मद्रास प्रेसिडेन्सी, सर्वेयेड इन 1882, ए०एस०एस०आई० न्यू इम्पिरियल सीरिज, भाग–1, लदन 1887, चि०फ०सं०–48, चि०स०–4।

103 अग्रवाल, वी०एस०, पूर्वोक्त, पृ० 303–304, चि०सं०–466।

द्वितीय युग

विकास की दूसरी अवस्था अमरावती स्तूप को अनेक अलकारिक अभिप्रायो से युक्त अनेक शिलापट्टो से अलंकृत किया गया। यह वासिष्ठी पुत्र पुलमावी का काल था जब महान सातवाहन सस्कृति अपने पूरे रूप में चमक रही थी। साम्राज्य का वैभव पूर्वी और पश्चिमी समुद्र के बीच व्याप्त था। अस्तु वैभव एव अभिजात्य सस्कृति का प्रभाव, कला पर पडना स्वाभाविक ही था। इस समय तक आते–आते बौद्ध धर्म में उदारवादी विचार धारा महायन का उदय हो चुका था, अस्तु तद्‌युगीन कला मे बुद्ध को प्रतीको के अतिरिक्त मानवीय रूप मे भी उत्टकित किया गया। यद्यपि अभी भी प्रतीकात्मक रूप की ही प्रधानता परिलक्षित होती है, और बुद्ध मूर्ति का अकन यदा कदा ही दृश्याकित है। विषय वस्तु की दृष्टि से अभिप्रायो की सख्या में बृद्धि तथा शैली मे परिवर्द्धन एव स्वाभाविक लक्षणो का समावेश इस युग मे किया गया। बुद्ध तथा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित, इस युग की कला में अनेक दृश्यों का अंकन हुआ इनमे बुद्ध का अभिनिष्क्रमण,[104] रामग्राम स्तूप का उद्‌घाटन,[105] बोधिवृक्ष के प्रतीक के रूप में सम्बोधि[106] बुद्ध का पूजन, बुद्ध द्वारा धर्म–चक्रप्रवर्तन,[107] बुद्ध द्वारा नागराज को धर्मोपदेश[108] एवं स्तूप की पूजा, माया का स्नान।[109]

विकास की इस दूसरी अवस्था मे अंकन की शैली अधिक स्वाभाविक है। आकृतियों मे नवीन मुद्राओं तथा भावपूर्ण चेहरे का विकास परिलक्षित होता है। यहॉ पर अकित बुद्ध का रूप पूर्वयुगीन आकृतियो मे तपस्वी आकृतियों के अकन से प्रभावित जान पडता है। केश मुण्डित सिर तथा वस्त्राभूषित स्कध वाले तपस्वी आकृतियों मे प्रभामण्डल और सघाटि का संयोजन कर बुद्ध को रूपायित किया गया

[104] शिवराममूर्ति सी०, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–19 चि०स०–1 (यहॉ नगर–द्वार का अकन हुआ है। यह सॉची के स्तूप स०–1 के तोरण द्वारो जैसा देखने मे प्रतीत होता है, जिस से एक घोडा बिना सवार के निकले हुए दिखाया गया है।

[105] बर्जेश, जे०, भाग–1 चि०फ०सं०–41, चि०स०–2।

[106] शिवराममूर्ति सी०, पूर्वोक्त चि०फ०स०–21, चि०स०–1।

[107] वहीं, चि०फ०स०–20, चि०सं०–2।

[108] वहीं, पूर्वोक्त चि०फ०सं०–22 चि०स०–1।

[109] वही, चि०फ०स०–24, चि०सं०–3, पृ० 164–65 (स्त्रियों के पैर के आभूषण तथा साडी के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण)।

है। इसमे मथुरा के मांसल शरीर तथा विशालकाय बुद्ध मूर्ति की समानता प्रकट होती है।[110]

तृतीय युग

अमरावती की कला मे तीसरी अवस्था उस परिपक्व काल का प्रतिनिधित्व करती है, जब सातवाहनो की साम्राज्य लक्ष्मी सौन्दर्य, सम्पत्ति और यश के परमोच्च शिखर पर विराजमान थी। महाचैत्य के महेशाख्य स्वरूप का विकास शिल्पियो की मौलिक सूझ एवं भिक्षुओ और उपासको की गम्भीर धार्मिक भावना, दृढ भक्ति तथा अनन्य श्रद्धा का परिणाम था। त्रिकलिगाधिपति सम्राटो का अमित ऐश्वर्य ने भी महास्तूप के रूप सम्पादन मे अपनी महती भूमिका निभाई।

इस युग मे बौद्ध आचार्य नागार्जुन की प्रेरणा स्वरूप स्तूप की भूमिस्थ 13 फुट ऊँची महावेदिका का निर्माण हुआ, जिसमें अनेक उर्ध्वपटों पर विविध प्रकार के अनेक दृश्य आडी तथा खडी पक्तियों मे विभिन्न उभारवाली तथा लयबद्ध आकृतियो से सज्जित की गयी। इनके स्तम्भ एवं सूचियॉ पद्मक, उष्णीष और बेष्टिनी अनेक प्रकार के अलंकारिक अभिप्रायो से अलकृत किये गये।

कथा दृश्यो मे आकृतियो का सयोजन, दृष्टिगत भाव की विद्यमानता प्रत्येक भाग की सजीवता, भाव प्रधानता, कथावस्तु के अनुरूप रूपायित है। बुद्ध तथा इनके जीवन से सम्बन्धित अनेकश. दृश्यों का अकन यहॉ के कलाकारो ने बडी सजीवता के साथ उकेरने का प्रयास किया है। इन दृश्यों मे बुद्ध को प्रतीको के अतिरिक्त मानवीय रूप मे भी उत्टकित किया गया है।

प्रमुख रूप से इन दृश्यों में मायादेवी का स्वप्न तथा उसकी व्याख्या[111] अवक्रांन्ति अर्थात् बुद्ध का श्वेत हस्ति के रूप मे अवतरण,[112] राहुल का जन्म,[113]

---

[110] उपाध्याय, डा० वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एव मन्दिर (द्वितीय संस्करण) 1989 प्रकाशक, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ० 73।

[111] शिवराममूर्ति, सी, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–1 चि०स०–1।

[112] वहीं, चि०फ०स०–30, चि०सं०–1।

[113] वही, चि०फ०स०–41, चि०स०–1।

महाभिनिष्क्रमण,[114] बुद्ध का निरजना नदी के तट पर किया गया चमत्कार,[115] संबोधि यहॉ बुद्ध का दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे तथा बायॉ, जघा पर स्थित है। मारघर्षण के इस दृश्य मे बुद्ध को उष्णीष तथा प्रभामण्डल से युक्त दिखाया गया है। एक शिलाखण्ड पर बुद्ध सत्वपर्यंकासन मुद्रा मे बैठे सघाटि से ढके दोनो कधे एव वक्ष के दाहिने भाग तक उठे दाहिने हाथ के साथ दर्शाये गये है।

इसके अतिरिक्त बुद्ध का प्रथम प्रवचन तथा देवो द्वारा उनकी अराधना[116] त्रयस्त्रिश स्वर्ग से बुद्ध द्वारा अपनी माता को उपदेश[117] बुद्ध के भिक्षापात्र का समारोह सहित देवलोक को परिगमन[118] चूडामह, मद्दवग्गिय युवकों का धर्म परिवर्तन,[119] अशोक वाटिका मे शुद्धोधन तथा मायादेवी की उपस्थिति,[120] नलरिगज का वशीकरण की कथा बडे विस्तार से रूपायित है। यहॉ शिल्प स्तम्भ पर बुद्ध द्वारा इस गज को वश मे करने के दृश्य में उन्मत्त गज के भय से भागते हुए लोगो की भयपूर्ण मुद्राओ का सफल अकन हुआ है। यहॉ सडको के दोनो किनारो पर निर्मित भवनो की खिडकियो से भयमिश्रित आश्चर्य से नर–नारी इस दृश्य का अवलोकन करते रूपायित है। नगर के भीतरी दृश्यों के अध्ययन की दृष्टि से यह दृश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[121] अन्य दृश्यो मे धातु बॅटवारे को लेकर विवाद[122] तथा कुशीनगर के घेरे का अकन यहॉ सॉची की तरह बडे विस्तार से हुआ है। यह दृश्यांकन नगर तथा नगर जीवन के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त उदयन तथा उसकी रानी की कथा,[123] आजातशत्रु द्वारा बुद्ध का दर्शन तथा जीवक से मन्त्रणा,[124] सुमन नामक माली की कथा,[125] अॅगूलीमाल की

[114] वही, चि०फ०स०–58, चि०स० 5।
[115] राय, अनामिका पूर्वोक्त, चि०फ०स० 107।
[116] वही, चि०फ०स०–37, चि०स० 3।
[117] वही, चि०फ०स०–32 चि०सं०–3।
[118] वही चि०फ०स०–26, चि०स०–1।
[119] वही चि०फ०स०–29, चि०स०–4।
[120] राय, अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–96, बर्जेश, पूर्वोक्त, 1, चि०फ०स०–18, चि०स०–2।
[121] दे० चि०फ०स०–13।
[122] शिवरामूर्ति, सी०, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–43, चि०स०–1 तथा 2, बर्जेश, जे०पूर्वोक्त चि०फ०सं०–25, चि01 तथा 2।
[123] वही चि०फ०स०–34, चि०स०–1 तथा चि०फ०सं०–35, चि०स०–1।
[124] बर्जेस, जे०पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–23, चि०स० 3 तथा 1।
[125] शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–49, चि०स०–1।

कथा,[126] मन्धाता की कथा,[127] इत्यादि का दृश्याकन बडे सुन्दर ढग से हुआ है।

इस युग की कला मे जातको का दृश्यांकन यहॉ के स्तम्भो पर देखा जा सकता है। यहॉ से ज्ञात जातको मे प्रमुख रूप से छदन्त जातक,[128] चुल्लबोधि जातक,[129] चुल्लधम्मपाल जातक,[130] दूत जातक,[131] महिलामुख जातक,[132] लोसक जातक,[133] महापद्यम जातक,[134] मत्तग जातक,[135] सोमणस्स जातक,[136] विदुर पण्डित जातक,[137] सुरूचि जातक,[138] बेसत्तर जातक,[139] कविकुमार जातक[140] प्रमुख है।

जातको के दृश्याकन मे यहॉ अपने पूर्ववर्ती कला शैली की अपेक्षा परिष्कार दृष्टिगत होता है। यहॉ रूढिबद्धता के दोष से रहित आकृतियो को निकट तथा दूरी के परिप्रेक्ष्य मे छोटा अथवा बडा करके दिखाया गया है, जिसका पूर्ववर्ती भरहुत एव सॉची की कला में प्राय. अभाव दिखाई देता है।

दृश्याकनो में मानव, पशु तथा अलकारिक अभिप्रायो की सहज अनुकृति दृष्टिगत होती है। यहॉ के शिल्पियो ने नर–नारी के आकारात्मक स्वरूप, शरीर विज्ञान एव सहज सौन्दर्य के मापदण्ड के अनुरूप उकेरने का सफल प्रयास किया है। स्त्रियों की विविध मुद्राओ मे मनमोहक रूप सज्जा तथा पुरुषो के रूपांकन मे उनके वस्त्राभूषण से उस युग की वैभवशालिता तथा अभिजात्य नगरीय जीवन का परिज्ञान होता है।

---

[126] वही चि०फ०स०–31, चि०स०–1 तथ चि०फ०स०–40, चि०स०–2, बर्जेश, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 23 चि०स०–4।
[127] वही चि०फ०स०–37, चि०स०–1।
[128] वही चि०फ०स०–25, चि०स०–2।
[129] बर्जेस, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–11, चि०स०–2।
[130] वही चि०फ०स०–6, चि०स० 1 तथा 2।
[131] शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०111 चि०स०–2।
[132] बर्जेस, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–27 चि०स०–2 तथा चि०फ०स० 49, चि०स०–1।
[133] शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–46, चि०स०–2।
[134] बर्जेस, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–27, चि०स०–3।
[135] शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–52, चि०स०–1।
[136] वही, चि०फ०सं०–27, चि०सं०–2।
[137] वहीं, चि०फ०स०–29, चि०सं०–2।
[138] वहीं, चि०फ०स०–55, चि०स०–1, 2, 3।
[139] वही, चि०फ०स०–25, चि०सं०–2।
[140] राय अनामिका, अमरावती स्तूप, चि०फ०स०–86।

चतुर्थ युग

इस युग की कला को अपने पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा उतार के लक्षण के रूप मे व्याख्यायित किया गया है, जिसमे अब पहले जैसी गतिशीलता न थी, शिल्पियो की कल्पनागत स्वतन्त्रता मानो बन्धन मे आ गई थी और उनके नए विचारो की शक्ति और नए रूप–विधान की भावना कुण्ठित हो गई थी। मानव आकृतियॉ इस युग में लम्बी और छरहरी हो गयीं और उन पर मोतियो के हार एवं झुग्गो की बहुलता दिखाई देने लगी। यहॉ सटे मकरमुखो से निस्सृत मोतियो के गुच्छों की अनुकृति इस काल की अमरावती की कला की निजी देन है। बुद्ध से सम्बन्धित प्रमुख दृश्याकनों में माया देवी का स्वप्न तथा उसका फल कथन,[141] सुजाता द्वारा बुद्ध को खीर खिलाना,[142] मार का प्रलोभन,[143] नन्द की धर्म दीक्षा,[144] राहुल का उत्तराधिकार,[145] नागो द्वारा रक्षित राम ग्राम स्तूप,[146] बुद्ध के जीवन दृश्य,[147] अन्य दृश्यो में जैसा कि ब्रिटिश म्यूजियम संख्या 79 मे दृश्याकित महाभिनिष्क्रमण, प्रथम प्रवचन, माया देवी का स्वप्न तथा निरजना नदी का अकन प्राप्त होता है।[148] इसी प्रकार ब्रिटिश म्यूजियम स० 73 मे मार का प्रलोभन, प्रथम प्रवचन, बुद्ध का निर्वाण, को दर्शाया गया है।[149] जातको में बेसत्तर जातक का अकन महत्वपूर्ण है।[150]

विद्वानों ने इस चतुर्थ युग की कला मे उतार के लक्षण भले ही देखा हो, किन्तु जैसा कि डा० अनामिका राय का विचार है कि कला का यह तृतीय तथा चतुर्थ युग पूर्णतया एक नगरीय जीवन को दर्शाता है। विशेष रूप से चतुर्थ स्तर, जहॉ हमें रोम के व्यापार का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। बुद्ध के चचेरे भाई नन्द की पत्नी सुन्दरी अनेकशः विदेशी केश विन्यास में दिखाई देती है। उसमे सबसे

---

141 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–64, चि०स०–3।
142 वही, चि०फ०स०–60, चि०स० 2।
143 वही, चि०फ०स०–60, चि०स० 1।
144 वही, चि०फ०स०–62, चि०सं०–1 तथा चि०फ०सं०–63, चि०सं०–2।
145 बजेस, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–42 चि०स०–5।
146 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–61, चि०स० 3।
147 बर्जेस, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–48, चि०स० 4।
148 राय, अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 150।
149 वही, चि०फ०स०–154।
150 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–63, चि०स०–5।

महत्वपूर्ण दृश्य वह है जहॉ वह हाथ में दर्पण लेकर बैठी हुई है।[151] यह दृश्य इतना अधिक लोकप्रिय था कि अफगानिस्तान के बैग्राम[152] से भी इसी प्रकार का दृश्य और चित्र फलक प्राप्त हुआ है। दोनो ही चित्रो मे इतनी अधिक समानता है कि ये दोनों एक ही कला परम्परा से उद्भूत जान पडते है। यही दृश्य नागार्जुनकोण्डा[153], मे इक्ष्वाकु रानी वर्मभट्टा के स्मृति स्तम्भ पर भी रूपायित है।

बैग्राम से लेकर नागार्जुनकोण्डा तक इस दृश्य का रूपांकन ही शिल्पियो की एक सशक्त परम्परा को द्योतित करता है। यहॉ यह प्रश्न नही है कि इस दृश्य का अंकन किसके प्रभाव से हुआ, अपितु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कला की यह परम्परा अफगानिस्तान से लेकर अमरावती तक फैली हुई थी। जो एक नगरीय जीवन के सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण को उद्घाटित करती है।

अमरावती की कला में स्थापत्य की दृष्टि से तो नगर का प्रवेशद्वार, राजप्रासाद तथा उसका भीतरी कक्ष, कुशीनगर की दुर्ग व्यवस्था, गवाक्ष, श्रावस्ती के बौद्ध बिहार, छदन्त जातक के दृश्यांकन मे नगर–द्वार का अकन, कुशीनगर के धातु युद्ध में दुर्ग व्यवस्था, महाभिनिष्क्रमण मे नगर–द्वार का अकन प्राप्त होता है।

अमरावती की कला विशेषतया नगर को न दिखाकर नगरीय जीवन के हलचल, कौतुहल और कोलाहल को दिखाने मे है। इस कला के प्रेरक तत्वो मे जैसा कि प्रारम्भ मे उल्लेख किया गया है, इसमे उस समुदाय विशेष द्वारा दिये गये दान के अतिरिक्त रोम के व्यापार का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। यह वही समय था (द्वितीय, तृतीय शताव्दी ईस्वी) जब दक्षिण–पूर्वी तटीय प्रदेश का रोम के साथ प्रगाढ व्यापारिक सम्बन्ध था। रोम के मद्य पात्र के अवशेष, तथा रोमन सिक्को की अरिकामेडु से प्राप्ति, सातवाहनो के जहाज प्रकार के सिक्के इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक है।

इसके अतिरिक्त अमरावती के अभिलेखो से प्राप्त होने वाले अभारतीय नाम, टेर से प्राप्त होने वाली हाथी दॉत की प्रतिमा के आधार पर यह सुझाव रखा गया

---

[151] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–153।
[152] वही, चि०फ०सं०–235

है कि वहॉ पर विदेशी शिल्पियो का कोई उपनिवेश था। इस सन्दर्भ मे डा० अनामिका राय ने 'यवनिका' खण्ड पॉच मे एक 'नागबू' नामक यवन शिल्पी का उल्लेख किया है। जिसके नाम को सन्दर्भित करने वाले अनेक प्रस्तर खण्ड एव शिलाखण्ड प्राप्त हुए है। यह सुझाव रखा गया है कि यह यवन शिल्पियो का प्रमुख रहा होगा।

स्तूप के अलकरण में शिल्पियो का दान अन्तत. महत्वपूर्ण रहा है यहॉ तक कि सॉची के उत्तरी तोरणद्वार पर सातवाहन नरेश के शिल्पी प्रमुख आनन्द का दिया गया दान तथा विदिशा के हाथी दॉत के शिल्पकारो के दान का उल्लेख प्राप्त होता है। यवन तथा यवन शिल्पियो का यहॉ निवास यह सिद्ध करता है कि नगरीय जीवन का यहॉ वर्चस्व रहा होगा।

इस सम्पर्क एव सम्बन्ध ने इस क्षेत्र मे एक यवन उपनिवेश की स्थापना तक कर डाली थी। जिसका प्रभाव कला पर दिखाई देना तो अपरिहार्य ही था। द्वितीय और तृतीय शताब्दी की अमरावती की कला में इसका व्यापक प्रभाव केश विन्यास, वेश विन्यास, वस्त्र एवं आभूषण, भाव, खान–पान सबमें एक नगरीय जीवन प्रदर्शित होता है। ए० के० कुमारस्वामी ने जिस जीवन को आह्लादपूर्ण जीवन बताया था, दूसरे ढंग से उसे नगरीय जीवन भी कह सकते है।

इस युग की कला विशेषत तृतीय शताब्दी ईस्वी (चतुर्थ युग) की कला एक नवीन आयाम प्रस्तुत करती है, जो निश्चय ही उथल–पुथल वाले सामाजिक जीवन की ओर संकेत करती है। इस समय की कला को एक असमजस कोलाहल और भाग दौड वाली कला कहा गया है। यह स्थिति मात्र अमरावती तक ही सीमित नहीं थी, अपितु अन्य कला केन्द्रों जिन्होने यहाँ की कला का सूत्र ग्रहण किया था, वहॉ पर भी यह स्थिति दिखाई देती है; यथा नागार्जुनकोण्डा तथा गुलवर्गा में इसी समय सन्नति नामक स्थल पर बौद्ध कला विकसित हो रही थी, एक विदेशी मूल्य से प्रभावित समाज का दृश्य प्रस्तुत करती है। यहॉ तक कि पीतलखोरा एवं ऐलोरा के गुहा प्रवेश द्वारों पर भी ट्यूनिक बूट और ट्यूनिक धोती पहने द्वारपाल दिखाई देते

---

[153] वही, चि0फ0सं0–230।

है। वस्तुत. इन विदेशियो के कारण स्थापत्य पर यदि कोई अन्तर आया तो वह कला मे दृष्टिगत नही होता, परन्तु समाज जो प्रभावित हुआ था, जिसे पौराणिक साहित्य में कलियुग की संज्ञा दी गयी थी, वह अत्यन्त स्पष्ट है।

अमरावती की कला मे मद्यपान का दृश्य, अन्त पुर मे पारदर्शी वस्त्र पहनी महिलाए, मोती के आभूषणों का बाहुल्य, रोम के सम्पर्क एवं व्यापार को प्रमाणित करता है। क्योंकि रोम से व्यपार में इस समय प्रचुर मात्रा मे मोती भारत आ रहा था। ब्रिटिश संग्रहालय मे सुरक्षित एक फलक[154] (सं077), जहॉ नन्द की पत्नी सुन्दरी दर्पण देखते हुए अकित है इसकी वेश भूषा पूर्णतया नगरीय है, दूसरे फलक में एक प्रहरी दम्पत्ति उत्टकित है[155]। दोनो ही युगलो के वेश–भूषा में रोमन प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐसे ही ब्रिटिश सग्रहालय (स079) मे एक स्त्री पूर्णतया विदेशी केश विन्यास तथा वेशभूषा में अंकित है[156]। इसी प्रकार विदेशी वस्त्र एवं वेश भूषा नागार्जुनकोण्डा[157] तथा सन्नति की कला मे भी प्राप्त होती है।

अमरावती की कला मे लोक जीवन से नगरीय जीवन का एक क्रमिक विकास परिलक्षित होता है। अमलानन्द घोष द्वारा प्रकाशित 'स्टेला' के द्वितीय पार्श्व मे जहॉ जेतवन, आम्रवन के विक्रय का दृश्याकन हुआ है, वहॉ तो हम बैलगाडी तथा विश्राम करते वृषभो मे एक लोक–जीवन का दृश्य पाते है[158]। यहॉ तक कि 'शवथी' जो इसी पार्श्व के ऊपर अंकित अभिलेख है, उसमे भी श्रावस्ती के बिहारो मे लोक–जीवन का दृश्य रूपायित है[159]। तृतीय पार्श्व जहॉ धान्यकटक का अभिलेख मिलता है वहॉ तक अभी लोक–जीवन ही परिलक्षित हो रहा है[160]।

इससे कुछ समय बाद का 'स्टेला' जो मद्रास सग्रहालय में संग्रहित है जिसका प्रकाशन सी० शिवराममूर्ति ने किया था, इसमें सुप्रसिद्ध कुशीनगर के दुर्ग व्यवस्था तथा धातु के लिए संघर्ष का दृश्याकन है, यहॉ पर नगरीय जीवन

---

[154] दे0राय, अनामिका, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–24।
[155] वही, चि0फ0स0–25।
[156] वही, चि0फ0स0–150।
[157] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–232।
[158] राय अनामिका, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–35,36।
[159] वही, चि0फ0सं0–37।
[160] वही, चि0फ0स0–39।

परिलक्षित होने लगता है। गवाक्षों से झाकती पुर सुन्दरियॉ तथा अश्वों से आने–जाने वाले सैनिक पूर्णतया एक नगरीय हलचल को प्रदर्शित करते है[161]।

इस प्रकार हम सम्पूर्ण कला का अध्ययन इस तरह कर सकते है–

प्रारम्भ मे यहॉ की कला मे लोक जीवन का अकन प्रमुख है। बाद मे चलकर नगरीय जीवन का हलचल दिखाई देने लगती है। प्रारम्भ मे नगर स्थापत्य मे भवन के ही दृश्य महत्वपूर्ण है, बाद मे चलकर नगर प्रवेशद्वार तथा विभिन्न सुरक्षा साधनो का भी अकन प्राप्त होता है।

नगरीय जीवन मे विशेषकर केश एव वेश विन्यास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन चौथे युग की कला से प्राप्त होता है, जब विदेशियो का अकन दिखाई देने लगता है, विदेशी वस्त्रो तथा केश विन्यास, यहॉ तक की बुद्ध परिवार की स्त्रियॉ जैसे–सुन्दरी[162] अथवा माया के स्वप्न के दृश्य मे भी विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक स्थलो पर स्वय बुद्ध गान्धार शैली में उत्तरीय पहने दर्शाये गये हैं न कि विशिष्ट अमरावती शैली में।

इस प्रकार इस चौथे युग की कला मे एक अभिजात्य नगरीय जीवन का अकन हमें प्राप्त होता है। भले ही इस समय की कला को इतिहासकारो ने अमरावती शैली के पतन के रूप मे व्याख्यायित किया है, किन्तु जहॉ तक नगरीय जीवन के अध्ययन का प्रश्न है यहॉ जैसा कि विवेचन से स्पष्ट है। इस युग की कला नये आयामों के साथ हमारे सामने उपस्थित होती है।

नागार्जुनकोण्डा स्तूप

वेगी प्रदेश का अन्य महान स्तूप नागार्जुनकोण्डा; आन्ध्रप्रदेश के गुन्टूर जिले के पलनाडु तालुके मे मारचला स्टेशन से 22 किलोमीटर दूर कृष्णा नदी के दक्षिणी

---

[161] वही, चि0फ0स0–40,41।
[162] रोजेनस्टोन, पूर्वोक्त चि०फ०स०–153।

तट पर स्थित है[163]। इस स्थल को प्रकृतिक रूप से सुरक्षा सुलभ थी। तीन ओर से पहाडियो की रक्षा पंक्ति तथा चौथी तरफ से सुरक्षा कृष्णा नदी द्वारा उपलब्ध करायी गयी थी। कदाचित् इस सुरक्षा को ध्यान मे रखकर ही इक्ष्वाकु राजाओ ने इस स्थल को अपनी राजधानी के रूप मे चुना था, इनके लेखो मे यह स्थल विजयपुरी के नाम से अभिज्ञात है। यह स्थल इक्ष्वाकु नरेशो के समय मे अपने बौद्ध महास्तूप के लिए प्रख्यात था किन्तु, अद्यतन अमरावती की भॉति अब इसके मूल स्थान पर कुछ भी शेष नहीं है।

यह स्थल सर्वप्रथम 1926 ई० मे प्रकाश में आया तथा 1927–31 ईस्वी के मध्य ए० एच० लौगहर्स्ट के उत्खनन के परिणाम–स्वरूप यहॉ अनेक विहार, स्तूपो के ध्वंसावशेष, धातु–मजुषाएं तथा अनेकशः दृश्यो से अलंकृत शिला पट प्राप्त हुए। पुन. इस स्थल पर श्री रामचन्द्रन ने 1930–40 ई० में उत्खनन कराया तथा दूसरी बार 1954 से 1959 ई० तक नागार्जुन सागर बॉध के निर्माण के पूर्व उत्खनन कराया, जिसमे शिल्प–सामग्री, बिहार, स्तूप, शिलामण्डप, चैत्यगृह, हरीति, कार्तिकेय और शिव के मन्दिर प्रकाश मे आये। अद्यतन इनमे से काफी शिल्प सामग्रियॉ यहॉ के स्थानीय संग्रहालय मे सुरक्षित हैं।

नागाजुर्नकोण्डा के महास्तूप का निर्माण इक्ष्वाकु शासक चान्तिमूल (क्षान्तिमूल) की भगिनी चान्तिसिरी (क्षान्तिसिरी) ने मठारी के पुत्र सिरि वीर पुरिसदत्त के छठें राज वर्ष में चैत्य तथा अठारहवे वर्ष मे बिहार का निर्माण कराया था, जैसा कि यहॉ से प्राप्त दान परक अभिलेखों से अभिज्ञात होता है। चान्तिसिरी के अतिरिक्त इक्ष्वाकु राजवंश के अन्य महिलाओ ने भी अपने प्रभूत दान एव सहयोग से स्तूप के निर्माण एवं रूप संपादन मे महती भूमिका निभायी।

यहॉ उल्लेखनीय है कि इक्ष्वाकु नरेश स्वयं वैदिक ब्राह्मण धर्मानुयायी थे, जबकि उनकी रानियॉ बौद्ध धर्म से अनुरक्त थीं। इस प्रकार एक ही राजवंश के एक

---

[163] लौंगहर्स्ट, ए०एच० मेम्वायर्स, ऑव द आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, 54, द बुद्धिष्ट, एण्टिक्यूटिज ऑव नागार्जुनकोण्डा, मद्रास प्रेसीडेन्सी, दिल्ली 1938 पृ०सं०–1, रामचन्द्र, पी० आर०, आर्ट ऑव नागार्जुनकोण्डा, मद्रास, रचना, 1956, पृ०सं०–1, अग्रवाल, वी० एस० पूर्वोक्त पृ०स० 312, कृष्णमूर्ति; के०, नागार्जुनकोण्डा ए कलचरल स्टडी, प्रथम सस्करण, 1977, कन्सेप्ट पब्लिसिग कम्पनी, दिल्ली पृ०–1।

ही परिवार मे एक ही समय मे दो पृथक–पृथक धर्मो का अनुयायी होना उस अकाट्य ऐतिहासिक तथ्य का सक्षम साक्षी है कि इक्ष्वाकु राजा जिस समय वैदिक ब्राह्मण धर्म पालन मे रत थे, अपनी रानियों की धार्मिक स्वतन्त्रता, बौद्ध धर्म मे आस्था और निष्ठा के स्वतन्त्र रूप से पालन करने मे उन्होने किसी प्रकार की सकीर्णता की मनोवृत्ति नही दिखाई।

कृष्णा घाटी की इस कला के उन्नयन मे राज वर्ग के प्रभूत दान के अतिरिक्त जन सामान्य एवं विविध राजकर्मचारियो, महादण्डनायक, कोष्ठागरिक तथा उपासको एवं उपासिकाओं द्वारा दिया गया दान यहॉ के दानपरक लेखो मे सुरक्षित है, जो इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक है कि यहॉ के स्तूप निर्माण मे पूर्ववर्ती सॉची तथा अमरावती की कलाकृतियों की भॉति राज वर्ग से लेकर सामान्य वर्ग के व्यक्तियो ने अपना सहयोग प्रदान किया था।

इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियो के प्रभूत दान एव सहयोग से निर्मित नागार्जुनकोण्डा के स्तूप के कलात्मक साक्ष्य, अमरावती की चतुर्थ युग की कला से अत्यधिक समानता रखते है, कदाचित् जब नागार्जुनकोण्डा स्तूप निर्माण मे इक्ष्वाकु रानियो का संरक्षण मिला, उसी समय शिल्पियो ने अमरावती का परित्याग कर नागार्जुनकोण्डा मे कार्य प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि नागार्जुनकोण्डा मे अमरावती से एक उधार ली गयी शैली और विषय–वस्तु प्राप्त होती है।

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगरीकरण एव नगर जीवन के साक्ष्यो के अकनार्थ यहॉ की कला महती महत्व रखती है। जो मूर्तिकला विषय सामग्री तथा यही से उपलब्ध शिलापटो के अंकन के रूप मे अभिज्ञात है।[164] यहॉ पर उत्टंकित दृश्यों में विषय–वस्तु की दृष्टि से अपनी पूर्ववर्ती अमरावती से कोई विशेष अन्तर नहीं है, यहॉ भी बुद्ध के जीवन दृश्यो तथा उनसे सम्बन्धित प्रमुख घटनाओ तथा कथानकों की ही अधिकता है तथापि प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्यांकित नगरीकरण

[164] लौंगहर्स्ट, ए० एच० पूर्वोक्त, रामचन्द्रन, टी० एन० मेम्वायर्स ऑव द आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, सख्या 71, सरकार, एच० और मिश्र, बी० एन०, 'नागार्जुनकोण्डा' (दिल्ली, 1987), शिवराम मूर्ति, 'नागार्जुनकोण्डा', मार्ग, 9 (2) पृ० 70–71, शिवराममूर्ति, 'इण्डियन स्कल्पचर्स, पृ० 49–50, अग्रवाल बी० एस०, पूर्वोक्त,' पृ० 312–320।

एव नगरजीवन के विविध पक्षो के बेहतर समझ के लिए इन दृश्यों का सम्यक् अवलोकन नितान्त महत्वपूर्ण है।

यहॉ से प्राप्त बुद्ध से सम्बन्धित प्रमुख दृश्यों मे, तुषितस्वर्ग की कथा निरूपण करते हुए अर्धमहाराजलीसन मे बैठे बुद्ध अपने चतुर्दिक उपस्थित आठ देवताओ की प्रर्थना को स्वीकार करते हुए प्रदर्शित है। इनके दाहिने हाथ की मुद्रा से यह भाव व्यक्त होता है। गर्भावक्रान्ति के दृश्य मे छत युक्त सिहासन पर बैठे गज को यक्ष के सहारे अवतरित होते दिखाया गया है।[165] मायादेवी के स्वप्न[166] तथा स्वप्न के प्रतीकात्मक महत्व पर विचार करने के लिए शुद्धोधन, मायादेवी, गर्भ रक्षार्थ बैठे चार देव तथा ब्राह्मण वेषधारी भविष्यवक्ता और इन्द्र की उपस्थिति दर्शायी गयी है।

अगली घटनाओं मे जन्म और सप्तपदी में शालवृक्ष के नीचे खडी माया देवी छत्र द्वारा अभिव्यक्त बुद्ध, स्नानघट, सप्तपदी चिन्हो से अंकित उत्तरीय लिए खडे लोकपाल तथा चामर धारिणीयो को दर्शाया गया है।[167] जन्मोपरान्त बृद्ध ब्राह्मण आसित बुद्ध जन्म का समाचार सुनकर राजप्रासाद आये और उन्होने राजा की प्रार्थना पर जन्मकुण्डली बनाई और बालक के जीवन की अगत घटनाओं की चर्चा की। दाये तरफ फलक पर बालक को लेकर माता–पिता का कपिलवस्तु से बाहर शाक्यवर्धन चैत्य की पूजा के निमित्त जाना तथा तत्सबधी दृश्य विस्तृत रूप मे दृश्याकित है।[168]

इसके अतिरिक्त राजकुमार सिद्धार्थ का आनन्ददायक बगीचे में बिहार[169], जीवन के प्रमुख दृश्यो में उन चार दृश्यो का अंकन जिसके कारण बुद्ध अन्तत. राजसी जीवन से विरक्त हो गये थे इनमें मृत व्यक्ति के शव को देखने का अंकन हुआ है। यहॉ एक मृत व्यक्ति दिखाया गया है इसके साथ ही यहॉ नगर द्वार का अंकन महत्वपूर्ण है।[170] इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ द्वारा विलासी जीवन से विमुख

---

[165] लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त चि० फ० स० –29 d।
[166] राय अनामिका, पूवोक्त, चि०फ०स०–198।
[167] रोजेन स्टोन, एलिजावेथ, पूर्वोक्त, चि० फ० स०–188।
[168] लौंगहर्स्ट, पूर्णोक्त, चि० फ० स० – 21 a।
[169] वहीं, चि० फ० स०–36 a।
[170] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूर्वोक्त, चि० फ० स०–224।

होकर रत्नत्याग, महाभिनिष्क्रमण का दृश्य, इनमे बुद्ध द्वारा वस्त्राभूषण, सारथी छदक को प्रदान कर वन गमन[171] तथा दूसरे में छदक द्वारा इस घटना का विवरण प्रस्तुत करने का दृश्याकन हुआ है।[172] चूडामह के दृश्यांकन मे तीन देवो को रत्न–जटित केशराशि को पात्र मे रख कर स्वर्ग ले जाते हुए दर्शाया गया है।[173]

इसके अतिरिक्त मारघर्षण का दृश्य जिसमे मार द्वारा बुद्ध के तपस्या को भंग करने का असफल प्रयास दिखाया गया है, इसके रूपाकन मे छायामण्डल सहित पद्मासन मे बैठे आसीन देव के दाहिनी ओर अपने प्रयास मे विफल होने से खिन्न मार और उसकी दो पुत्रियॉ तथा बायी ओर विकटाकृति वाले मार के आयुधधारी अनुचर है।[174] इसके अतिरिक्त मुचलिन्दनाग द्वारा बुद्ध की रक्षा,[175] बुद्ध द्वारा मृगदाव (सारनाथ) मे प्रथम उपदेश के दृश्य जिसमे बुद्ध को ऊँचे पद्मासन मे बैठे दिखाया गया है। इनके आसन के समीप दो मृग है और उभय पार्श्व में दो चमरग्राही, दो भिक्षु और दो राजकुमार है। इसके अतिरिक्त राजा कप्पिन की धर्म दीक्षा के दृश्य[176], नलगिरि हाथी को वश मे करना[177], नागराज अपलाल पर बुद्ध की विजय,[178] नन्दसहित बुद्ध का स्वर्गगमन,[179] बुद्ध का परिनिर्वाण,[180] इत्यादि घटनाएँ अपने विविध रूप एव पृष्ठभूमि के साथ रूपायित है।

इसके अतिरिक्त जातक कथाओ के अनेक अंकन नागार्जुनकोण्डा की कला में व्यक्त हैं। यहॉ दृश्यांकित प्रमुख जातको मे चांपेय जातक,[181] मंधातुजातक, इसमें नगर प्रवेश द्वार का बडा सुन्दर अकन प्राप्त होता है, जिसमे दो लकडी के खडे स्तम्भो पर ऊपर क्षैतिज स्तम्भ रखे गये है, पुन· उसके ऊपर पॉच पलते ठीहे लगे है और उन ठीहों पर पुन एक क्षैतिज स्तम्भ लगा हुआ है। प्रवेश द्वार के दाहिनी

---

171 राव, पी० आर० रामचन्द्र, द आर्ट ऑव नागार्जुनकोण्डा, (प्रथम सस्करण) 1956, रचना, मद्रास, पृ० 52, चि० फ०स०–9।
172 वही, पृ० 128, चि० फ० स०–46।
173 वही, पृ० 60, चि० फ० स०–13, रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूवोक्त, चि० फ० स०'191।
174 लौंगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 22.b।
175 लौंगहर्स्ट, पूवोक्त, चि०फ०स०–23 b।
176 राव, पी०आर० रामचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ० 137, चि०फ०स० 52।
177 रोजेन स्टोन, एलिजबेथ, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–262।
178 रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–217 तथा 219।
179 लौंगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–35 कृष्णमूर्ति, के०, पूर्वोकित, चि०फ०स०–7।
180 लौगहस्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–29सी
181 लौंगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०सं०–38 b।

तरफ बडे ईंटों से निर्मित दीवार का अंकन प्राप्त होता है।[182] घट जातक के दृश्यांकन मे महल के भीतरी भाग का अकन प्राप्त होता है, जो तत्कालीन भवन निर्माण सम्बन्धी तकनीक पर प्रकाश डालता है।[183] दीधितिकोसल जातक,[184] दशरथ जातक,[185] महापदम जातक,[186] शिविजातक,[187] इत्यादि जातको का अकन नागार्जुनकोण्डा की कला में हुआ है इन जातको से तत्कालीन भवन निर्माण सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

नागार्जुनकोण्डा की कला से अनेक अलकारिक अभिप्राय भी प्राप्त होता है। इनमे बौद्ध प्रतीक चिन्ह के अलावा अन्य प्रकार के अलकरण यथा त्रिरत्न, पद्म, स्वास्तिक, पूर्णघट आदि प्रतीक से युक्त यहॉ अनेक शिलापट सुशोभित है। पशु आकृतियों मे व्याघ्र, सिंह, गज, वृषभ, मृग पक्तियॉ तथा मकर, हस आदि के मनोहारी रूप उत्टकित हैं। नवकर्म्मिकों द्वारा निर्देशित, पाषाणिकों द्वारा निर्मित नागार्जुनकोण्डा की सम्पूर्ण कला राशि मे दुर्लभ कला सौन्दर्य व्याप्त है।

एक अन्य अभिप्राय जो नागार्जुनकोण्डा की कला मे बहुशः प्राप्त होता है, वह है, 'मिथुन' का अंकन। प्रायश. यहॉ से प्राप्त फलकों मे एक दृश्य को दूसरे दृश्य से अलग करने के लिए 'मिथुनो' का अंकन किया गया है। नागार्जुनकोण्डा की कला मे मिथुन इतने अधिक लोकप्रिय हो गये कि कही–कही इनका अंकन विषयवस्तु से बिल्कुल हटकर बनाये गये प्रतीत होते हैं, इसलिए इस स्तूप के उत्खननकर्ता ए०एच० लौंगहर्स्ट ने इन्हें अलंकरण मात्र माना, परन्तु जैसा कि रोजेन स्टोन एलिजाबेथ का विचार है कि आयक स्तम्भ के फलक के अंकन की दृष्टि से यदि इनका अध्ययन किया जाय तो ये बौद्ध परम्परा से बिल्कुल अभिन्न प्रतीत होते है। जैसा कि डा० अनामिका राय का विचार है कि वस्तुतः ये मांगलिक चिन्ह है। जिस प्रकार पूर्णघट, श्री लक्ष्मी उर्वरता की प्रतीक है, उसी प्रकार 'मिथुन दम्पत्ति' या

[182] राव, पी०आर० रामचद्र पूर्वोक्त पृ० 134, चि०फ०सं०–50।
[183] कृष्णमूर्ति, के० नागार्जुनकोण्डा, चि०फ०स०–2
[184] लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–47a।
[185] वही, चि०फ०सं०–45a।
[186] वही, चि०फ०स०–40 a-b।
[187] राव, पी0आर0 रामचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ० 100 चि०फ०स०–33

'विराज' मांगलिक चिन्ह है। इनका अकन प्रारम्भिक बौद्ध स्तूप से प्रारम्भ होता है, और मध्यकालीन हिन्दू मन्दिरो तक इनका अकन चलता रहता है।

प्रारम्भ में कोई भी मांगलिक चिन्ह अथवा मिथुन दम्पत्ति का अकन स्तूप के अण्ड पर नही हुआ था, परन्तु आन्ध्र देश मे पूरे स्तूप अलकरण की परिकल्पना ही बदली हुई प्रतीत होती है। यह एक सक्रमण काल से गुजर रही थी। वस्तुत मिथुन दम्पत्ति एक मांगलिक चिन्ह के रूप मे अमरावती की प्रारम्भिक कला मे अप्राप्त है, तथापि अमरावती के अन्तिम चरण से इसका अकन प्रारम्भ होता है जो नागार्जुनकोण्डा का आरम्भिक चरण था।

शिवराममूर्ति ने नागार्जुनकोण्डा के मिथुन दम्पत्ति के लिए काव्यात्मक उद्धरण बताया है। वस्तुत' हम इन मिथुन युगल की ऐतिहासिक पहचान कर सके या नही, यह अलग प्रश्न है, परन्तु इनका अकन इतनी सुन्दरता के साथ हुआ है कि ये हमे काव्यात्मक विवरण ढूढने के लिए प्रेरित करते है। जैसा कि अमरावती मे उपलब्ध, गौतम बुद्ध के गृह नगर आगमन पर उनके पुत्र राहुल द्वारा उठाए गये प्रश्न पर डा० अनामिका राय ने 'राहुल का उत्तराधिकार' नामक काव्य की रचना की है।

जहॉ तक नागार्जुनकोण्डा की कला पर विदेशी प्रभाव का प्रश्न है अमरावती की भॉति यहॉ की कला भी विदेशी प्रभाव से मुक्त न रह सकी, जैसा कि कलाकृतियो मे उत्टकित विभिन्न प्रकार के केश विन्यास एव वेश विन्यास से निष्कर्षित होता है। राजाप्रासाद के क्षेत्र से ज्ञात दो स्तम्भों पर दाढी वाले कंचुकियो को दर्शाया गया है। उन्हें लम्बा पायजामा, पूर्ण आस्तिन का कोट तथा शिरस्त्राण धारण किये उत्टंकित किया गया है। एक मद्यगोष्ठी का अकन यहॉ से प्राप्त होता है जिसमे सुरापान हेतु श्रृंग लिए, कटि प्रदेश तक वस्त्र विहीन एक पुरुष आकृति की पहचान डायोनिसियस के रूप मे करने का सुझाव रखा गया है, यहॉ दृश्य के नीचे ढंका हुआ सुरापात्र भी प्रदर्शित है।

इक्ष्वाकु कालकृतियों पर विदेशी (शक) प्रभाव परिलक्षित होता है तो इसका कारण स्वभाविक है। दोनों राजसत्ताओं मे वैवाहिक संबंध का परिज्ञान इक्ष्वाकु शासक वीर पुरिसदत्त की राजमहिषी रूद्रभट्टारिका के नागार्जुनकोण्डा लेख से होता

है, जिसमे उसे उज्जैनी के महाराज की बालिका बताया गया है। इससे दोनो सस्कृतियों की समीपता स्वभाविक रूप से स्वीकार्य जान पडती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पशुओ के पक्तिबद्ध अंकन मे यहाँ की चन्द्र शिलाओ पर लका की कला का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जहाँ तक नागार्जुनकोण्डा के कला का प्रश्न है इस विषय मे सामान्य तौर पर यही कहा जाता है कि यह अमरावती की कला परम्परा को ही आगे ले जाती है और इसे अमरावती एव गुप्त कला के सेतु के रूप में माना जाता है। नागार्जुनकोण्डा के विषय मे यह माना जाता है कि यह अमरावती कला के अन्तिम, यानी चतुर्थ स्तर से ही परिलक्षित होने लगती है। वस्तुत अनेक विषयवस्तु जो नागार्जुनकोण्डा की कला मे पाये जाते है, वे ही है, जो अमरावती की कला मे।

इस तथ्य का यह तात्पर्य नहीं है कि नागार्जुनकोण्डा की अपनी कोई अलग पहचान नही है, वस्तुत मुख की आकृति मानव शरीर के अवयव नागार्जुनकोण्डा मे अमरावती से नितान्त भिन्न प्रतीत होते है। वस्तुत· अमरावती में अपूर्ण रही कुछ कलाकृतियो को नागार्जुनकोण्डा मे पूरा किया गया इसीलिए प्रायः अभिलेखो और मूर्तियों के अंकन मे कही–कही तादात्म्य नहीं बैठता।

यह ठीक है कि अमरावती शैली और उसकी अलंकरण योजना ने नागार्जुनकोण्डा की कला को विविध आयाम दिये। कला की दृष्टि से अमरावती के शिल्पियो ने जिस तकनीक का प्रयोग किया था, वह अभी तक बौद्ध शिल्प में सर्वथा नवीन था। जिन आकृतियो का अकन हुआ है वे अत्यन्त निचाई तक उकेरी गयी है, और उनकी कटान मे इतनी अधिक गहराई है कि वे पृष्ठभूमि से बिल्कुल अलग प्रतीत होती है। अमरावती की यह तकनीक आन्ध्र देश के अन्य घरानों में प्रयोग मे नही लायी गयी थी। और इस तकनीक ने जैसा कि रोजेन स्टोन[188] का विचार है अमरावती को आन्ध्र देश के अन्य कला केन्द्रों से भिन्न रखा। जहाँ तक नागार्जुनकोण्डा का प्रश्न है, रेखिय समायोजन का तो अनुकरण किया गया था, परन्तु अमरावती जैसी गहरी कटान यहाँ की कला में नहीं मिलती।

[188] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, पूर्वोक्त, पृ० 23

इस सन्दर्भ में कला इतिहासकारो ने यह मत रखा है कि अमरावती की कला तकनीक बनाने के लिए अधिक दक्षता की आवश्यकता थी जो शिल्पियों से अधिक समय की मॉग करती थी। जब की नागार्जुनकोण्डा की तकनीक अतिशीघ्रता से उकेरी जा सकती थी।

नागार्जुनकोण्डा की कला धार्मिक थी, इसके साथ–साथ लौकिक कला के रूप में हमे, स्मृति या स्मारक स्तम्भ स्थापित करने की परम्परा दिखाई देती है जिसका अमरावती मे पूर्णतया अभाव था। यद्यपि आयक स्तम्भ दोनो स्थलो पर प्राप्त होते है किन्तु स्मारक स्तम्भ स्थापित करने की परम्परा नागार्जुनकोण्डा की अपनी निजी विशेषता है। यहॉ से वीर पुरिसदत्त के शासन काल के स्मारक स्तम्भ की सम्प्राप्ति के आधार पर इक्ष्वाकु शासक वीर पुरूषदत्त की तिथि और शैली का निर्धारण किया गया है।

नागार्जुनकोण्डा से प्राप्त स्मारक स्तम्भ तथा अन्य शिल्प अधिकाशतया सफेद चूना पत्थर (लाइम स्टोन) से बने हुए है। प्रारम्भ मे यह माना गया कि स्मारक स्तम्भ स्थापित करने की परम्परा नागार्जुनकोण्डा की अपनी निजी विशेषता है परन्तु धीरे–धीरे ये स्मारक स्तम्भ सन्नति एव जेवारगी तथा अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुए है। वीर पुरिसदत्त के स्तम्भ पर प्राप्त होने वाले विजय शब्द के अकन के आधार पर वीर पूजा से जोडा गया था परन्तु सन्नति के स्मारक स्तम्भ व्यापारी 'सेण्ह' की स्मृति मे स्थापित किया गया अतः इन स्तम्भो को पूर्णतया वीर पूजा से नही जोडा जा सकता।

जहॉ तक इक्ष्वाकु कला परम्परा के अन्त का प्रश्न है, इसकी सीमा हम सिर्फ नागार्जुनकोण्डा से ही नहीं मान सकते अपितु इक्ष्वाकोत्तर कला भी दृष्टान्त के रूप में लिए जा सकते हैं, इन्ही दृष्टान्तों ने नागार्जुनकोण्डा और अजन्ता की कला के मध्य एक सेतु का कार्य किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार इस अध्याय मे नगरीकरण एव नगर–जीवन को सन्दर्भित करने वाले प्रारम्भिक बौद्ध कला के साक्ष्यो के अवलोकन के पश्चात् निष्कर्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि भरहुत, सॉची, अमरावती एवं नागार्जुनकोण्डा के स्तूप प्रारम्भिक बौद्ध कला के स्मारकीय गौरव के प्रतीक है। इनके रूप सज्जा एव अलकरण में हमे कलात्मक विकास एव एक क्रमश विकसित होती हुई शैली के दृष्टान्त उपलब्ध है। भरहुत की कला शैली में शिल्पियो के आरम्भिक प्रयास मे शैलीगत परिष्कार की प्रारम्भिक अवस्था के दर्शन होते है। भरहुत मे प्राप्त होने वाले विभिन्न बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कथानको एव दृष्टान्तो के दृश्याकन के साथ उत्कीर्ण किये गये परिचयात्मक लेख का आशय शायद इन दृश्याकनो से जनता को परिचित करना ही प्रतीत होता है। किन्तु इसके पश्चात् विकसित होने वाली सॉची की कला के साथ हमे इस प्रकार के लेख प्राप्त नहीं होते, शायद अब जनता बौद्ध धर्म के इन कथानको से परिचित हो गयी थी, अस्तु अब इसकी आवश्यकता सॉची की कला मे महसूस नही की गई।

भरहुत की कला जहॉ कला के प्रारम्भिक स्तर को प्रदर्शित करती है वही इस कला शैली का चरम विकास हमे सॉची की कला मे दिखाई देता है। जहॉ हाथी दॉत के शिल्पकारो के हस्त कौशल की दक्षता के परिणाम स्वरूप तत्कालीन भारतीय नागरिक जीवन की पुष्कल व्याख्या कला के माध्यम से रूपायित हुई है।

जहॉ तक आन्ध्र देश के प्रारम्भिक बौद्ध कला का प्रश्न है, निश्चय ही अमरावती की कला एक श्रेष्ठ कला परम्परा को प्रमाणित करती है। यहॉ हम इसके विकास मे एक चरणबद्ध उत्तरोत्तर विकास की परिकल्पना कर सकते है, जिसके कला का प्रभाव नागार्जुनकोण्डा की कला परम्परा पर भी दिखाई देता है, जिसने अमरावती की कला से अपना सूत्र ग्रहण किया था।

यह ठीक है कि इन समस्त प्रारम्भिक बौद्ध कला मे, केन्द्रिय विषयवस्तु लगभग एक ही है। कुछ अन्तर एवं शैलीगत विभिन्नता के साथ इन समस्त कला

विधाओ में बुद्ध तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कथानकों, दृष्टान्तों तथा जातकों का अंकन प्रायश सभी स्थलों पर रूपायित हुआ है, परन्तु यदा–कदा अन्य ऐतिहासिक दृश्याकनो, मनोरंजन के दृष्टान्तो तथा अन्य अलंकरण अभिप्रायो का भी अकन प्रसगवश अथवा स्वतत्ररूप से हुआ जान पडता है। यद्यपि इन समस्त कलाओ की अपनी कुछ निजी विशेषताएँ है, जो प्रत्येक कला को उसे अपनी एक अलग पहचान एव चरित्र प्रदान करती है।

जहॉ तक इन प्रारम्भिक बौद्ध कलाओ मे दृश्यांकित नगरीकरण तथा नगरजीवन का सम्बन्ध है, इनमें हमे प्रत्येक कला मे कुछ विशिष्ट तत्वो की अलग–अलग प्रधानता परिलक्षित होती है, जो समग्र रूप से तत्कालीन नगरीकरण एव नगर–जीवन के विभिन्न पक्षो के अध्ययन की दृष्टि से विशेषतः महत्वपूर्ण बन बैठती है।

जहॉ भरहुत की कला मे नगरीय जीवन के वेश–विन्यास एवं केश–विन्यास विशेषतया वस्त्र एवं विविध आभूषणो की बहुप्रकार बहुलता की भरमार दिखाई देती है, वही सॉची की कला इन सबके साथ विशेषतया नगरों तथा नगर–दृश्यो, उनके विविध वास्तु अगो, सुरक्षा के विभिन साधनों से सयुक्त हो कर हमारे सामने उपस्थित होती है। सॉची की कला मे राजगृह, वैशाली, कुशीनगर, श्रावस्ती एव कौशाम्बी जैसे विभिन्न नगर अपने विविध आयामो के साथ यहॉ रूपायित है।

जहॉ तक अमरावती एवं नागार्जुनकोण्डा की कला का सम्बन्ध है यहॉ की कला मे विशेषतया नगरों को न दिखाकर नगरीय जीवन के हलचल एवं कौतुहल को दिखाने का प्रयास किया गया है। यहॉ की कला मे राजप्रासाद तथा अन्य नागरिक शालाओ के अंकन तथा इनके भीतरी कक्षों के दृश्य बहुतायत मे उपलब्ध हैं।

यूँ तो विदेशी नागरिकों की उपस्थिति का मान सॉची की कला से ही प्राप्त होने लगता है तथापि अमरावती एवं नागार्जुनकोण्ड की कला में इनकी उपास्थिति के कारण यदि स्थापत्य पर अन्तर आया तो वह स्थापत्य कला में दृष्टिगत नहीं होता तथापि इनके कारण सामाजिक जीवन पर जो प्रभाव पड़ा वह यहॉ की कला में नितान्त स्पष्ट परिलक्षित होता है।

विशेष रूप से मद्यपान के दृश्य, वस्त्रों के अंकन तथा केश विन्यास के विविध प्रकारो एव अवगुठन[189] युक्त विदेशी स्त्रियो के अकन के रूप मे स्पष्ट दिखाई देता है।

यद्यपि इन समस्त प्रारम्भिक बौद्ध कलाओ का उद्देश्य बौद्ध धर्म तथा इससे सम्बन्धित कथानको, सिद्धान्तो तथा दृष्टान्तो से जनसामान्य को परिचित कराना ही था, तथापि यहाँ उत्कीर्ण विभिन्न कथानक मे प्राचीन भारत के नगरीकरण एव नगर–जीवन से सम्बन्धित तथ्यो के अध्ययन की दृष्टि से ये कलात्मक अवशेष नितान्त महत्वपूर्ण बन बैठते है।

OOO

---

[189] रोजेन स्टोन, एलिजाबेथ, द बुद्धिस्त आर्ट ऑव नागार्जुनकोण्डा के चि०फ०स०–49, (मे दृश्याकित सबसे बाये स्त्री के सन्दर्भ में)

अध्याय चार
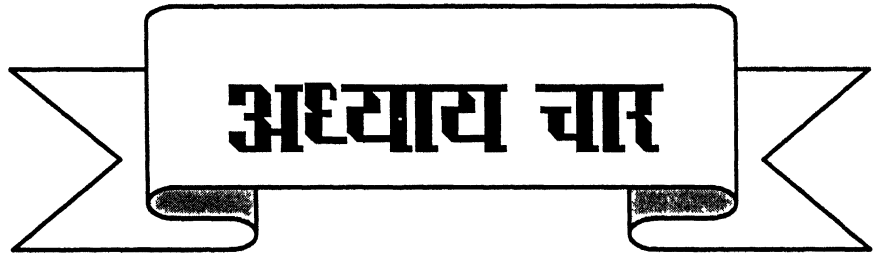
प्रारम्भिक बौद्ध कला में अंकित नगर तथा नगर–जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन

(क) नगर–स्थापत्य

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनुशीलन से प्राचीन भारत के नगर स्थापत्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। इसमें नगर–सुरक्षा के लिए बनाए जाने वाले विभिन्न साधन यथा–परिखा, प्राकार, अट्टालक, नगर–द्वार, द्वार–कोष्ठक, इन्द्रकोश के अतिरिक्त राजप्रासाद एव नागरिक शालाओ का विधान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपलब्ध शिलाकित दृश्य नगर–विन्यास की दृष्टि से, प्राचीन भारतीय साहित्य मे वर्णित विभिन्न नगर–स्थापत्य सम्बन्धी विवरणो को अक्षरश पालन करते हुए प्रतीत होते है। यह समानता इस तथ्य का सक्षम साक्षी है कि प्रारम्भिक बौद्ध कला के शिलांकित दृश्य, कलाकारों के हस्त कौशल तथा मानसिक परिकल्पना के परिणाम मात्र न थे, अपितु इनका उत्टकन ठोस ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित था। इस तथ्य की सम्पुष्टि विभिन्न उत्खनित एव समीकृत ऐतिहासिक नगरो के स्थापत्य पुरावशेषो से भी हो जाती है।

(1) परिखा

प्राचीन भारतीय नगर सुरक्षा की दृष्टि से, नगर के चतुर्दिक परिखा का निर्माण, नितान्त महत्वपूर्ण जान पडता है। मिलिन्दपन्हो से ज्ञात होता है कि शिल्पाचार्य नगर–विन्यास मे परिखा के साथ अपना काम प्रारम्भ करते थे। परिखाओं की सख्या एक[1], तीन[2] से लेकर सात[3] तक हुआ करती थी। परिखा का विधान अनेक प्राचीन भारतीय नगरों यथा अयोध्या[4], लंका[5], इन्द्रप्रस्थ[6], मथुरा[7], द्वारका[8],

---

1 मेक्रिण्डिल, खण्ड 26, पृ0 67–68।
2 जातक सख्या 546।
3 ब्रह्मवैवर्त पुराण अध्याय 27, पक्ति 15 एव 'सप्तहि पाकोरेहि'–महावस्तु, 275।
4 दुर्गगम्भीर परिखा दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।"
प्राकार परिखोपेता सूरयूतीर शोभिता।।" – रामायण–बालाकाण्ड सर्ग5, पक्ति 25।
5 रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग2, पक्ति 26।
6 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 119, पक्ति 57।
7 प्राशु प्राकार बसना परिखा कुल मेखला। – हरिवश ,हरिवशपर्व, अध्याय 54, पक्ति 116।

पाटलिपुत्र[9], अवन्ति[10], मदुरा[11], कॉची[12] जैसे नगरो के साथ किया गया था।

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित नगर दृश्यो मे भी परिखा का विधान नगर के चतुर्दिक प्राकार के बाहर दिखाई पडता है। सॉची स्तूप सख्या एक के दक्षिणी–तोरण द्वार के निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर कुशीनगर आकारित है। इस दृश्याकन मे प्राकार के बाहर परिखा का अकन हुआ है, जिसमे कमल तथा उनके बीच तैरते राजहस आकारित है।[13] ठीक इसी प्रकार के परिखा का अकन उत्तरी तोरण–द्वार के पृष्ठ भाग के मध्यवर्ती बडेरी के वामपार्श्व भाग पर वेसन्तर जातक कथा का निरूपण करते हुए, वेसन्तर की राजधानी 'जेतुत्तर' नगर के साथ प्राप्त होता है। यहॉ जलपरिखा उत्टकित है जिसमे नगर की सुरक्षा के साथ नगर की सुन्दरता की अभिबृद्धि हेतु कमल तथा उसमें तैरते राजहंस दृश्याकित है।[14] कौटिल्य ने इस प्रकार की परिखा को 'पद्यवती परिखा' कहा है[15]। अन्यत्र पद्यवती परिखा का अंकन पश्चिमी तोरण द्वार के मध्यवर्ती बडेंरी के पृष्ठ तल पर 'धातु युद्ध' का दृश्याकन करते हुए कुशीनगर के साथ देखा जा सकता है[16]।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रारम्भिक बौद्ध कला मे परिखा का विधान न सिर्फ नगर की सुरक्षा हेतु किया गया है, अपितु इसका निर्माण नगर के सुन्दरता की अभिबृद्धि हेतु भी किया जाता था जिससे कमल कुमुदनी आदि जल पुष्प लगाए जाते थे। रामायण में पद्म तथा उत्पल आदि से अलंकृत परिखाओं का उल्लेख हुआ है।[17] हरिवंश के अनुसार 'द्वारका' की परिखा कमल तथा हस दोनो से सुशोभित थी।[18] ठीक इसी प्रकार का उल्लेख नवसहसांकचरित मे उज्जयिनी की

---

8 वही, विष्णु पर्व, अध्याय 98, पक्ति 22। तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय 72, पक्ति 13।

9 मेक्रिण्डिल, खण्ड 26 पृ0 67।

10 दृढ़य–त्रालिद्वारा परिखाभिरलकृता।" अमातियस्या परिखा नितम्बे।"–नवसाहसाक चरितम्, सर्ग 1 अक 25।

11 अय्यर, 'टाउन प्लैनिग इन एशेण्ट डकन, पृ0 38।

12 वही, पृ0 60।

13 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0 'द मान्यूमेन्ट्स आव सॉची (3 खण्ड) भाग–2 फलक स0 153, दे0 फलक स0–18।

14 वही, फलक स0 31, दे0 फलक स0–20।

15 अर्थशास्त्र पृ0 स0 51, (शास्त्री अनुदित)

16 मार्शल, जे0 तथा फूशे ए0, पूर्वोक्त, फलक स0 622।

17 परिखाभि सपद्माभि सोत्पलभिलकृताम्।
–सुन्दरकाण्ड, सर्ग2, पक्ति 26।

18 पद्यखड कुलभिश्च हस सेवित वारिभि।
–हरिवश, विष्णुपर्व अध्याय 98 पक्ति 11।

परिखा के साथ किया गया है, जिसमे कमल पक्ति के साथ हंस समूह सुशोभित थे।[19]

परिखा का निर्माण सुरक्षा, नगर की सुन्दरता के अतिरिक्त उपयोगितावादी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। परिखा के जल का नागरक आवश्यकता पडने पर उपयोग करते थे। जैसा कि जतुत्तर नगर[20] तथा कपिलवस्तु[21] की परिखाओ से स्पष्ट है, यहाँ परिखा से जल भरने के उद्देश्य से दो नगर स्त्रियाँ हाथ मे जलपात्र लेकर खडी है। दूसरी तरफ परिखा का निर्माण नगर की सफाई इत्यादि की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। इन परिखाओ में कभी–कभी नालो का अशुद्ध जल गिराया जाता था। तमिल ग्रन्थों के अनुसार वंजी की परिखा में परिवाहों की गन्दगी गिरायी जाती थी।[22] सभवत. इन्ही विभिन्न उपयोगितावादी दृष्टिकोण से प्राचीन भारतीय नगरों के साथ एक से अधिक परिखाओ का निर्माण किया जाता था।

(2) प्राकार :

प्राकार प्राचीन भारतीय नगरो की सुरक्षा मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। यही कारण है कि विभिन्न प्राचीन भारतीय नगर प्राकार द्वारा परिवेष्ठित थे, यथा इन्द्रप्रस्थ[23], द्वारका[24], मथुरा[25], अवन्ति[26], मदुरा[27], कॉची[28],पाटलिपुत्र[29], वाराणसी[30], कपिलवस्तु[31], वैशाली[32], राजगृह[33], मिथिला[34], चम्पा[35], शाकल[36], आदि। प्राकार का निर्माण परिखा के ठीक पीछे, उससे लगा हुआ किया जाता था।

---

19 आमजुगुजत्कल हस पक्तिर्विस्वराभोजरज पिशगा ।
— नवसाहसाकचरितम्, सर्ग 1 श्लोक 28।

20 मार्शल, जे0 तथा फूशे ए0, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स०–3।

21 वही, पूर्वोक्त, फ0 स0 40 2।

22 अययर, पूर्वोक्त, पृ0 34।

23 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय, 199 पक्ति 59।

24 वही, सभापर्व, अध्याय 57, पक्ति 9।

25 'सापुरी परमोदारा साट्ट प्रकार तोरणा'
— हरिवश, हरिवश पर्व, अध्याय 54 पक्ति 115।'

26 '''दृढ प्राकारतोरणा–ब्रह्मपुराण, अध्याय 41, पक्ति 59।

27 अययर, पूर्वोक्त, पृ0 38।

28 वही, पृ0 70।

29 'पाटलिपुत्रका प्राकाश'
—महाभाष्य, भाग दो, पृ0 321। (कीलहर्न)

30 जातक, I, 98।

31 महावस्तु, 275।

32 "वेसालीनगरम् गवुतगावुन्तरे तिहि पाकारेहि परिक्खितम्।"
—जातक–I, 504।

33 वाटर्स, 2, 153।

प्राकारों की संख्या सामान्यतया एक होती थी, परन्तु बडे नगरों के साथ एक से अधिक प्राकारों का निर्माण, नगर–सुरक्षा के अनुरूप किया जाता था। अर्थशास्त्र मे कई प्राकार बनाने का निर्देश किया गया है।[37] मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह नगर तीन प्राकारो द्वारा परिवेष्ठित था। जातको से वैशाली नगर के चतुर्दिक तीन प्राकार विद्यमान होने की सूचना प्राप्त होती है।[38] पालिग्रन्थो के अनुसार कपिलवस्तु नगर सात प्राकारो द्वारा परिवेष्ठित था।[39]

प्रारम्भिक बौद्व कला के अनुशीलन से, दृश्याकन नगरो के साथ प्राकार की योजना दिखाई देती है। अमरावती की कला मे वाराणसी नगर के साथ प्राकार की योजना दिखाई पडती है।[40] अन्यत्र कुशीनगर के साथ नगर प्राकार को देखा जा सकता है।[41] सॉची की कला, में नगर प्राकार की योजना दिखाई पडती है।[42] प्राकार का निर्माण ईंटों अथवा गढे हुए पत्थरो के द्वारा किया जाता था। कभी–कभी प्राकार के निर्माण में लकडी के खम्भो का प्रयोग किंया जाता था। जैसा कि सॉची मे 'महाभिनिष्क्रमण' का दृश्याकन करते हुए 'कपिलवस्तु' का नगर प्राकार प्रदर्शित है।[43] इस प्राकार का निर्माण प्रामाणिक रूप से लकडी के खम्भो से किया गया है।[44] पुरातात्विक प्रमाण के रूप मे कुमार स्वामी सूचित करते है कि पाटलिपुत्र मे मिट्टी एवं लकडी के खम्भो द्वारा निर्मित प्राकार था।[45]

किन्तु प्रारम्भिक बौद्ध कला में दृश्यांकित अधिकाश नगर–प्राकारो के प्रदर्शन मे ईंटो अथवा गढे हुए प्रस्तर खण्डो का प्रयोग किया गया है। सॉची में स्तूप संख्या एक के उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के निचली बडेरी पर उत्टंकित वेसन्तर की राजधानी 'जेतुत्तर नगर' के नगर–प्राकार को देखा जा सकता है, इसका

---

[34] महाउम्मग जातक, स0 546।
[35] जातक, VI, 32।
[36] कनिघम, ऐन्शेण्ट ज्याग्राफी, पृ0 369।
[37] अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शस्त्री अनु0)
[38] ""तिहि पाकारेहि परिक्खितम्।
— जातक, I, 504।
[39] "सप्तहि पाकारेहि
— महावस्तु, 2, 75।' "
[40] कुमार स्वामी ए0के0 ईस्टर्न आर्ट, जिल्द–22, 1930, पृ0 223।
[41] वही, अर्ली इण्डियन आर्किटेक्चर , सीटीज ऐण्ड सिटीगेट्स, चि0 फ0 स0 125, चि0 स0 15।
[42] मार्शल, जे0 तथा फुशे, ए0, पूर्वोक्त चि0 फ0 स0, 15 3,31,35a1, 34b1, 40 2, 61 1, 61 2।
[43] वही, चि0 फ0 स0 40.2।
[44] कृष्ण मूर्ति, के0, मैटिरीयल कल्चर आव सॉची, पृ0 13।
[45] कुमार स्वामी, ए0के0, पूर्वोक्त, पृ0 213।

निर्माण ईंटो अथवा प्रस्तर की बनाई हुई समान आकार की ईंटो के द्वारा किया गया है।[46] इसी नगर का भव्य रूप उत्तरी तोरण द्वार के पृष्ठभाग की मध्यवर्ती बडेरी के वामपार्श्व भाग पर मिलता है। यहाँ प्राकार का निर्माण स्पष्टत ईंटों द्वारा किया गया है जिसका उपरी भाग समतल न बनाकर क्रमश· पिरामिडाकार बनाया गया है।[47] अर्थशास्त्र में ऐसे प्राकार को 'ऐण्टक प्राकार' कहा गया है।[48] समरांगणसूत्रधार में भी कहा गया है कि प्राकार के निर्माण में ईंटो का प्रयोग किया जाय।[49]

सॉची की कला में उत्टंकित अन्य नगरो के साथ भी प्राकार का विधान किया गया है, स्तूप संख्या एक के दक्षिणी तोरण द्वार की निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर, जहाँ "कुशीनगर' का घेरा दिखाया गया है।[50] यह दृश्याकन दीघनिकाय के महापरिनिब्बानसूत्त के उस घटना पर आधारित है जिसके अनुसार महात्मा बुद्ध की मृत्यु की खबर सुनकर विभिन्न नरेशो ने 'धातु–अवशेष' के लिए अपना दावा पेश करते हुए कुशीनगर पर आक्रमण के उद्देश्य से उसको घेर रखा था। इसी घटना को दृश्याकित करते हुए कुशीनगर के प्राकार का अंकन यहाँ हुआ है, यह इष्टका प्रकार प्रतीत हो रहा है।[51] इसी नगर का द्वितीय भव्य रूप पश्चिमी तोरण के उपरी बडेरी के पृष्ठ तल पर आकारित है। यहाँ कुशीनगर के बहिर्मुख का रूपायन करते हुए नगर प्राकार के एक भाग का अकन हुआ है। प्राकार के निर्माण मे पत्थरो की चिनाई की गई है। प्राकार का शीर्ष भाग कगूरे से युक्त बनाया गया है।[52] पुनः इसी तोरण–द्वार के मध्यवर्ती बडेरी पर 'धातु युद्ध' को दृश्याकित करते हुए 'कुशीनगर' उत्टकित है। यहाँ नगर प्राकार का बडा सुन्दर अंकन हुआ है समान आकार की

---

[46] मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, पृ0 23 a1, 27 कुमारस्वामी, ए0 के0 पूर्वोक्त चि0 फ0 स0 123 चि0 स0 5 कृष्णमूर्ति, के0, पूर्वोक्त, चि0 फ0 स036, पृ0 13।

[47] मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0 फ0 स 31, कुमारस्वामी, के0 ए0,पूर्वोकत, चि0 फ0 स0 124 चि0 स0 9 राय उदय नारायण, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 1, आकृति 1।

[48] अर्थशास्त्र, पृ0 52, (शास्त्री)

[49] समरागसूत्रधार, पृ0 13।

[50] मार्शल, जे0 तथा फूशे ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 153, मार्शल तथा फूशे , पूर्वोक्त,, भाग–एक, पृ0 117, आनन्द के0 कुमारस्वामी, पूर्वोक्त, चि फ0स0 126 चि0 स0 61।

[51] दे0 दे०चि०फ०स०–18, 19।

[52] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 61 1, कृष्णमूर्ति, के0 पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 35a, राय उदयनारायण पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0–7 (उपरी बड़ेरी), मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त भाग–एक, पृ0 115।

गढी हुई प्रस्तर की ईंटें एक दूसरे पर दृढता से न्यस्त है।[53] प्रो0 उदय नारायण राय ने इसकी तुलना कौटिल्य के 'पाषाणवेष्टका' से की है।[54]

सॉची की कला में श्रावस्ती नगर को भी प्राकार द्वारा परिवेष्ठित दिखाया गया है। उत्तरी तोरण के मुख्यभाग के पूर्वी स्तम्भ पर श्रावस्तीनगर के द्वार का बडा भव्य अकन हुआ है। आलोचित दृश्याकन मे राजा प्रसेनजित को घोडे पर सवार होकर नगरद्वार के बाहर निकलते हुए दिखाया गया है। नगरद्वार के दाहिनी तरफ प्राकार का शीर्ष भाग दिखाई दे रहा है, यह ईंटो द्वारा बना हुआ प्रतीत होता है।[55]

उत्तरी तोरण–द्वार के पूर्वी स्तम्भ के मुख्य भाग पर श्रावस्ती नगर के द्वार से कोसल राजा प्रसेनजित को रथ पर सवार होकर नगर–द्वार से बाहर निकलते हुए उत्टकित किया गया है। यहॉ प्राकार का उत्तरी भाग दिखाई दे रहा है जो ईंटो अथवा समान आकार की प्रस्तर खण्डों से निर्मित है।[56]

नगर–प्राकार के अध्ययन की दृष्टि से सॉची स्तूप सख्या एक के उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग का पश्चिमी स्तम्भ महत्वपूर्ण है। यहॉ पलिवस्तु के बहिर्मुख का अकन करते हुए नगर–द्वार से लगा हुआ प्राकार का निर्माण किया गया है। यह इष्टका प्राकार प्रतीत होता है, जिसका ऊपरी हिस्सा समतल न बनाकर क्रमश पिरामिडाकार, फॉकदार बनाया गया है।[57]

इन नगर–प्राकारों मे युद्ध के समय सुरक्षा हेतु छिद्रो का निर्माण किया जाता था, जैसा कि विश्वत्तरा जातक के प्रदर्शन मे राजा शीवि की राजधानी 'तेतुत्तर' के प्राकार को छिद्रयुक्त बनाया गया है।[58] पुन उसी नगर का दृश्याकन करते हुए उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग की निचली बडेरी पर शिल्पित 'जेतुत्तर नगर' के

---

[53] 53 दे0चि0फ0स0–26 मार्शल चि0फ0स0 तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि9फ्थ0स0 61 2,आनन्द के0 कुमार स्वामी, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 124 चि0से08, कृष्णएामूर्ति, के0 पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 35b।

[54] राय,उदय नरायण, पूर्वोक्त, पृ0 347।

[55] दे0चि0फ0स0–21, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–34b1, कृष्ण मूर्ति, के0 पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 11a

[56] मार्शल फूशे, पूर्वोक्त चि0फ0स0 35b2 आनन्द के0 कुमार स्वामी पूर्वोकत चि0फ0स0 125, चि0स012।

[57] दे0चि0फ0से0–22 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ्थ0स0 35a1

[58] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 23a1, 27, कुमारस्वामी, ए0के0,दे०चि०फ०स० 23,चि0से05।

प्राकार छिद्रयुक्त बनाए गए है।[59] सॉची मे छिद्र युक्त प्राकार के अन्यत्र भी उदाहरण प्राप्त होते है।[60]

इन छिद्रों का प्रयोग सुरक्षा सैनिक वाण, इत्यादि आयुध द्वारा नगर पर आक्रमणकारियों के आक्रमण को विफल करने के लिए करते थे। मेगस्थनीज ने उल्लेख किया है कि पाटलिपुत्र की दीवाल मे छिद्र बने हुए थे, जिनके द्वारा किले के भीतर से वाण बाहर फेका जाता था।[61] पुरातात्विक प्रमाण भी छिद्रयुक्त प्राकार के उदाहरण प्रस्तुत करते है। जैसा कि शिशुपालगढ के पुरावशेषो से स्पष्ट है, यहॉ के प्राकार मे प्रत्येक दो फीट की दूरी पर छिद्र बने हुए थे।[62]

पुरातात्विक प्रमाण के रूप मे अद्यतन एवं अधुनादतन शोध परक साक्ष्य प्राचीन भारतीय नगरो के साथ प्राकार निर्माण परम्परा की पुष्टि करते है। मथुरा के चारों तरफ मिट्टी के प्राकार के चिन्ह अब भी अवशिष्ट रह गये है।[63] इसी प्रकार पत्थर के बडे–बडे टुकडे तथा मिट्टी से निर्मित प्राकार के अवशेष राजगृह मे आज भी देखा जा सकता है।[64] भीटा के उत्खनन से भी ज्ञात होता है कि यहॉ के निर्मित प्राकार मे ईंटों की चिनाई की गई थी।[65] शिशुपालगढ की खुदाई से ज्ञात होता है कि यहॉ दो प्राकार विद्यमान थे।[66] ईंटों द्वारा निर्मित प्राकार के उदाहरण राजघाट से प्राप्त हुए है।[67] निश्चय ही ये प्राकार बहुत चौडे तथा ऊँचे होते थे जैसा कि कौशाम्बी के पुरातात्विक प्रमाणों से स्पष्ट है।[68] इसके अतिरिक्त श्रावस्ती, वैशाली, उज्जैन, राजघाट, पाटलिपुत्र, चम्पा आदि नगरो के चतुर्दिक प्राकार बने होने के पुरातात्विक प्रमाण होते है।

---

59 दे0दे०चि०फ०स०–20, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स०–31 कुमार स्वामी, ए0के0,पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 124, चि0स0 9।

60 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 34 1, 35 1, 61 2।

61 मेक्रिण्डिल, पूर्वोक्त, पृ0 26।

62 ऐन्शेण्ट इण्डिया, स0 5, पृ0 57।

63 अग्रवाल, बी०एस०, पाणिनि कालीन भारत वर्ष, पृ० 144।

64 सौन्दराजन, के. वी., मकेनिक्स ऑफ सिटी एण्ड बिलेज इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, दिल्ली 1986 पृ0 139।

65 आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1911–12, पृ0 30।

66 लाल, बी बी., शिशुपालगढ़ 1998 : एन अर्ली हिस्टारिकल फोर्ट इन इस्टर्न इण्डिया' ऐशेण्ट इण्डिया स0 5 पृ0 74–75।

67 सिह, बी पी., पूर्वोक्त, पृ० 30–33।

68 शर्मा, जी आर., द एक्सकेवेसन्स एट कौशाम्बी, 1957–59 इलाहाबाद (1960) पृ० 22–23।

(3) बुर्ज

नगर प्राकारों मे यथा स्थान बुर्ज का निर्माण किया जाता था। जातक कथाओ से ऐसे बुर्ज के निर्माण के बारे मे महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। इन कथाओ मे इन्हें 'अट्टाला' अथवा 'अट्टालक' कहा गया है।[69] समरागणसूत्रधार मे भी कहा गया है कि नगर–प्राकार के प्रत्येक दिशा मे बुर्जों का निर्माण किया जाय।[70] अर्थशास्त्र से भी बुर्ज के निर्माण की सूचना प्राप्त होती है।[71]

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनुशीलन से प्राकार में यथा स्थान बुर्जो के निर्माण की सूचना प्राप्त होती है। सॉची स्तूप सख्या एक के दक्षिणी तोरण–द्वार के पृष्ठ तल पर जहॉ कुशीनगर का घेरा दिखाया गया है, यहॉ नगर का दृश्याकन करते हुए प्राकार आकारित है, जिसमे यथा स्थान बुर्ज का निर्माण किया गया है।[72] इसी प्रकार उत्तरी तोरण द्वार के मुख्यभाग की निचली बडेरी पर वेसन्तर जातक कथा का अंकन करते हुए 'जेतुत्तर नगर' का अकन किया गया है। यहॉ नगर प्राकार मे बुर्ज का निर्माण दिखाई देता है।[73] अट्टालकों (बुर्जों) की सख्या के विषय में मेगस्थनीज के यात्रा विवरण से सूचना मिलती है। उसने पाटलिपुत्र के प्राकार मे 570 बुर्जों के होने का उल्लेख किया है।[74] किन्तु यह कोई निश्चित संख्या न थी। नगर के आकार एवं सुरक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बुर्जों की सख्या का निर्धारण किया जाता था।

दो बुर्जों के मध्य जो स्थान बचता था उसमे इन्द्रकोश का निर्माण किया जाता था। यह एक प्रकार का कमरा होता था जिसमे तीन धनुषधारी सुरक्षा सैनिकों के बैठने के लिए आसन की व्यवस्था होती थी।[75] प्रारम्भिक बौद्ध कला मे 'इन्द्रकोश' के निर्माण का महत्वपूर्ण उदाहरण सॉची के स्तूप सख्या एक के पश्चिमी तोरण द्वार के पृष्ठ तल की मध्यवर्ती बडेरी पर धातुयुद्ध का दृश्यांकन करते हुए 'कुशीनगर' के प्राकार में इन्द्रकोश का भव्य उदाहरण प्राप्त होता है, नगर–द्वार के दाहिनी तरफ

---

[69] जातक II , 40।
[70] "प्रकारेऽट्टालकास्तस्मिन् दिक्षु दिक्षु चतुर्दिशम्।"–समरागणसूत्रधार, भाग 1, पृ० 41, श्लोक 31।
[71] अर्थशास्त्र, पृ० 52 (शास्त्री)।
[72] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि फ. स, 153, दे चि फ स–18।
[73] वही, चित्र फ स 23a1।
[74] मेक्रिण्डल, पूर्वोक्त, खण्ड 26, पृ० 67

प्राकार के ऊपर इन्द्रकोश का निर्माण किया गया है जिसके चारों तरफ वेदिका बनाई गयी है। वेदिका के निर्माण में काष्ट शिल्प की अनुकृति साफ झलकती है इन्द्रकोश के भीतर दो सुरक्षा प्रहरी बैठे हुए दिखाई दे रहे है। इन्द्रकोश की छत खम्भो के सहारे वेसर शैली में बनाई गयी है।[76]

(4) नगर द्वार

प्रकार के निर्माण के साथ ही नगर मे प्रवेश करने के लिए प्राकार मे स्थान–स्थान पर नगर–द्वारो का निर्माण किया जाता था। इन द्वारो मे कपाट लगे होते थे।[77] जो दिन तथा शान्ति के समय खुले रहते थे, जबकि रात्रि या आक्रमण की स्थिति मे इन्हें बन्द कर दिया जाता था।[78] भारतीय साहित्य से नगर द्वारो के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त होती है। अर्थशास्त्र में 'नगर–द्वार' को 'गोपुर' कहा गया है।[79] अमरकोश[80] तथा शिशुपाल वध[81] में भी पुर–द्वार को 'गोपुर' कहा गया है।

जहाँ तक इनकी सख्या का सवाल है प्रधान नगर–द्वारो की संख्या चार होती थी।[82] किन्तु अपेक्षाकृत कुछ बडे नगरों मे इनकी सख्या सौ से भी अधिक हो सकती थी।[83] मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के प्रकार मे चौसठ द्वार होने का उल्लेख किया है।[84] इससे स्पष्ट होता है कि चार प्रधान द्वारो के अतिरिक्त अन्य गौण द्वार भी होते थे, कदाचित अर्थशास्त्र मे ऐसे गौण द्वारो को ही 'प्रतोलि' कहा गया है।[85] पाणिनि ने भी पाटलिपुत्र के परकोटे मे 'प्रतोलि–द्वार' होने का उल्लेख किया है।[86] इन प्रतोलि–द्वारो की चौडाई प्रधान–द्वारो की अपेक्षा काफी कम होती थी, जैसा कि

---

75 अर्थशास्त्र, प्रकरण 21, पृ० 33 (यौली)

76 दे चि फ स 622, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चित्रफस 612 कृष्णमिर्ति के पूर्वाक्त, चि फ स 35 bI, कुमार स्वामी, ए के पूर्वोक्त चि फ स 124, चि स 8।

77 कपाटा सर्वद्वारेषु– अपराजितपृच्छा पृ० 173।

78 जातक II, 412, VI 406।

79 अर्थशास;त्र पृ० 53 (शास्त्री)

80 'पुरद्वार तु गोपुरम्।''–अमरकोश, पृ0 77।

81 शिशुपालवध, सर्ग 13, पृ0 27।

82 'नगरस्य चतुसु द्वारेसु।'– जातक I, 262।

83 कुमार स्वामी, ए के इस्टर्न आर्ट भाग दो (1930) पृ0 209।

84 मेक्रिण्डिल, पूर्वोक्त, खण्ड 26, पृ0 66

85 अर्थशास्त्र, पृ0 53 (शास्त्री)

86 अग्रवाल, वी एस, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ0 145।

अर्थशास्त्र मे कहा गया है कि प्रधान नगर–द्वार की चौडाई प्रतोलि की छह गुनी हो।[87]

जहॉ तक प्रारम्भिक बौद्ध कला का सवाल है, इसमें उत्टंकित विभिन्न नगर दृश्यो के प्राकार मे यथा स्थान प्रवेश द्वार (गोपुर) का निर्माण किया गया है। बनावट के आधार पर नगर–द्वार दो प्रकार के प्राप्त होते है (क) तोरण तथा (ख) गोपुर। तोरण सजावटी द्वार होते थे जिसमें दरवाजे नही लगे होते थे। ये सम्भवत बाहरी द्वार होते थे, जिसे 'वहिर्द्वार' भी कहा जाता था।[88] इस प्रकार के तोरण द्वार अमरावती की कला मे देखा जा सकता है।[89] यह एक साधारण निर्माण है जिसमे दो पार्श्व–स्तम्भों के ऊपर बडेरियॉ बनी है, जो ठीहो द्वारा एक दूसरे से अलग की गयी हैं। सॉची की कला मे भी तोरण द्वारो के उदाहरण प्राप्त होते है। 'महाभिनिष्क्रमण'[90] का दृश्याकन करते हुए कपिलवस्तु नगर के साथ इस प्रकार का तोरण–द्वार दिखाई पडता है। नागार्जुनकोण्डा मे भी साधारण प्रकार का द्वार दिखाई पडता है जिसमे दो पार्श्व स्तम्भो के ऊपर आडी धरन रखकर बनाया गया है।[90A] इसी प्रकार के तोरण का निर्माण महाकपि जातक[90B] प्रदर्शन मे देखा जा सकता है। एक अन्य प्रकार का तोरण द्वार इन्द्र भ्रमण[91] दृश्यांकन मे उत्टकित है। यहॉ तोरण द्वार से इन्द्र अपनी पत्नी शची के साथ एरावत हाथी पर सवार होकर तोरण द्वार से निकलते हुए प्रदर्शित हैं किन्तु तोरण द्वार का महत्वपूर्ण उदाहरण स्तूप स0 एक के पूर्वी तोरण–द्वार के मुख्य भाग की मध्यवर्ती बडेरी पर शाक्य राजधानी कपिलवस्तु के नगर–प्राकार में दिखाया गया है। अन्य नगरो से भिन्न यहॉ तोरण द्वार का अकन हुआ है।[92]

दूसरे प्रकार का नगर–द्वार जिसे साहित्यिक ग्रंथो मे 'गोपुर' कहा गया है। प्रारम्भिक बौद्ध कला में नगर–प्राकार के साथ इसके उदाहरण दृष्टव्य है। सॉची के

---

87 "प्रतोलि षट्तुलानतर द्वार कारयेत्।"– अर्थशास्त्र, पृ0 53 (शास्त्री)

88 अमर कोश, पृ0 77।

89 कुमार स्वामी, ए0 के0 पूर्वोक्त, सिटी एण्ड सिटी गेट्स' चि फ सं 125, चि स 14, 16 शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन द मद्रास गर्वमेण्ट म्यूजियम मद्रास 1977 चि फ स 48 चित्र 1, 37 b।

90 मार्शल, जे तथा फूशे, ए. पूर्वोक्त, चि फस 16.1।

90A लौगहस्ट।, ए एच0, द बुद्धिस्ट एन्टीक्यूटी ऑव नागार्जुनकोण्डा मद्रास प्रेसीडेन्सी, ए एस आई न54 (दिल्ली 1938) चि फ स 30– e।

90B वही, पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 46 a।

91 वही दे०चि०फ०स० 18 a3।

दक्षिणी तोरण द्वार के निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर जहाँ कुशीनगर का घेरा दिखाया गया है। यहाँ एक प्रभावशाली प्रवेश द्वार का अकन हुआ है यहाँ शिल्पित नगर प्राकार मे दो प्रवेश–द्वार स्पष्टत· देखे जा सकते है।[93] दाहिनी तरफ के प्रवेश–द्वार में कपाट लगे हुए दिखाई दे रहे है। इसी प्रकार उत्तरी तोरण के मुख्य भाग की निचली बडेरी पर जेतुत्तर नगर' के नगर प्राकार मे नगर–द्वार का अकन हुआ है।[94] अन्यत्र उत्तरी तोरण द्वार के ही पृष्ठ भाग के मध्यवर्ती बडेरी के वाम पार्श्व पर जेतुत्तर नगर का अंकन किया गया है, यहाँ निर्मित इष्टा–प्रकार मे नगर–द्वार देखा जा सकता है जिसके सामने दो पुर ललनाए परिखा मे से जल भरने के उद्देश्य से हाथ में घडे लेकर निकलती हुई दर्शायी गई है।[95] पुन· इसी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पूर्वी स्तम्भ पर 'श्रावस्तीनगर' के वहिर्मुख का अकन प्राप्त होता है। जहाँ नगर–द्वार से राजा प्रसेनजीत को घोडे पर सवार होकर बाहर निकलते हुए दिखाया गया है।[96] पुन. इसी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पश्चिमी स्तम्भ पर नगर–द्वार का अकन हुआ है। नगर–द्वार से एक घोडा बिना सवार के आगे चलाता हुए प्रदर्शित है, उसके पीछे नगर–द्वार के बीच मे दो घोडो से जुते रथ पर हाथ मे छत्र लिए सारथी बैठा है। नगर–द्वार से लगा हुआ इष्टका–प्राकार प्रदर्शित है।[97]

उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग पर कोसल की राजधानी श्रावस्ती का अकन मिलता है। यहाँ नगर–द्वार से प्रसेनजित को रथ पर सवार होकर नगर–द्वार से निकलते हुए देखा जा सकता है। निश्चय ही ये नगर–द्वार बहुत चौडे होते रहे होगे, क्योकि प्रसेनजित के साथ नगर–द्वार से एक साथ बाहर निकलते हुए पैदल सैनिक, हाथी, रथ इत्यादि को दिखाया गया है।[98] भरहुत मे भी इसी प्रकार चौडे नगर–द्वार को देखा जा सकता है।[99] सॉची स्तूप संख्या एक के पूर्वी तोरण–द्वार के

---

[92] वही, दे०चि०फ०स० 40 2, कुमारस्वामी, पूर्वोक्त, चि0फ0स 123, चि स0 4A,, राय, उदयनरायण पूर्वोक्त, चि0फ0 स0 4 आकृति1।

[93] दे चि फ स 18, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि फ स– 15 3, कुमारस्वामी, ए के पूर्वाक्त, चि फ स 123, चि. स 6, तथा चि स c पृ0 17।

[94] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि फ. स 23 al, कुमार स्वामी, ए के पूर्वोक्त, चि फ स 123 चि स 5।

[95] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि.फ.स 31, कुमारस्वामी ए के, पूर्वोक्त, चि फ स 124 चि स 9।

[96] दे चि फ. स–21, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि.फ स 34 b1, कुमारस्वामी, ए. के पूर्वोक्त चित्र फ स 124, चि स 10।

[97] दे चि फ स–22, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि फ स 35 al।

[98] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 35 b2 कुमारस्वामी, ए के, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 125, चि0स0 12

[99] दे०चि०फ०स०–10, बरूआ, पूर्वोक्त, चि०फ०सं० 50 चि0स0 52।

उत्तरी स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर 'कपिलवस्तु' के नगर–द्वार से राजा शुद्धोधन को दो घोडो से युक्त रथ पर आरूढ होकर प्रधान नगर–द्वार से बाहर निकलते हुए दर्शाया गया है। रथ के पीछे हाथी पर सवार उनके अनुचर तथा कुछ पैदल सैनिक चलते हुए उत्टंकित है।[100] पुन· इसी तोरण–द्वार के दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ के मुख्य भाग पर 'राजगृह' के नगर–द्वार का अंकन हुआ है। यहॉ अजातशत्रु को रथ पर सवार होकर नगर–द्वार से बाहर निकलते हुए दर्शाया गया है।[101] इसी प्रकार सॉची के पश्चिमी तोरण के उपरी बडेरीं के पृष्ठतल पर कुशीनगर का नगर–द्वार उत्टकित है जो प्रस्तर प्राकार के मध्य बनाया गया है।[102] पुन. इसी तोरण द्वार के पृष्ठ तल के मध्यवर्ती बडेरी पर 'धातु युद्ध' का दृश्याकन करते हुए प्राकार मे नगर–द्वार शिल्पित है।[103] सॉची के अतिरिक्त प्रारम्भिक बौद्ध कला मे भरहुत तथा अमरावती से भी नगर निर्माण योजना के अन्तर्गत नगर–द्वारो का दृश्याकन हुआ है।

अमरावती की कला में भी 'गोपुर' प्रकार के नगर–द्वार का अकन हुआ है। इस प्रकार का नगर–द्वार बनारस नगर के साथ दिखाई पडता हैं।[104] एक अन्य शिला–पट्ट पर कोशल नरेश प्रसेनजित को हर्षित मुद्रा मे अस्थि कलश को हाथी पर लिए हुए कुशीनगर के प्रधान नगर द्वार से श्रावस्ती की ओर जाते हुए दर्शाया गया है।[105]

(5) द्वार कोष्ठक

परिखा, प्राकार, अट्टालक, इन्द्रकोश, नगर–द्वार के साथ ही नगर सुरक्षा की दृष्टि से, नगर–द्वार के ठीक ऊपर 'द्वार–कोष्ठक' का निर्माण किया जाता था। चूॅकि गहरी परिखा और ऊॅचे प्राकार को बेध कर नगर में प्रवेश अत्यन्त दुष्कर था, नगर–द्वार ही इसके लिए सर्वसुलभ मार्ग था। अस्तु इस का प्रयोग शत्रु न कर सके इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय शिल्पाचार्यों ने नगर–द्वार के ठीक ऊपर

---

[100] दे०चि०फ०स०–23(तृतीय) मार्शल तथा फूशे, दे०चि०फ०स०, 50a
[101] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 51b कुमार स्वामी, ए के., पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 124, चि० स० 11।
[102] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स०, 61 1।
[103] दे०चि०फ०स०–26 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 61 2 कुमार स्वामी, ए के पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 124 चि०स० 8।
[104] कुमारस्वामी, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 125 चि०स० 13।
[105] वही, दे०चि०फ०स० 125 चि०स० 15, राय उदय नरायण पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स०–19 आकृति 1, शिवरामामूर्ति, सी., पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 44

'द्वार–कोष्ठक' का विधान किया था, जिसमें तैनात सुरक्षा प्रहरी नगर मे प्रवेश करने वालो पर हमेशा निगाह रखते थे। इस प्रकार द्वार–कोष्ठक का निर्माण नगर सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनुशीलन से द्वार–कोष्ठक के निर्माण की परम्परा का अभिज्ञान होता है इसका निर्माण नगर–द्वार के ठीक ऊपर किया जाता था, जिसमे नगर सुरक्षा हेतु विभिन्न आयुद्धो से युक्त सुरक्षा प्रहरी तैनात किया जाते थे। 'द्वार–कोष्ठक' एक[106], दो[107], अथवा कभी–कभी तीन[108] मंजिलों वाले बनाए जाते थे। सॉची की कला से इस प्रकार के 'द्वार–कोष्ठक' के निर्माण की सूचना प्राप्त होती है। सॉची के दक्षिणी तोरण–द्वार के निचली बडेरी के पृष्ठ तल पर उत्टकित कुशीनगर के ऊपर द्वार–कोष्ठक का निर्माण किया गया है, यहॉ दो प्रकार के द्वार–कोष्ठक का निर्माण है। पहले प्रकार के द्वार–कोष्ठक की छत को समतल बनाया गया है जिसके किनारे सुन्दरता हेतु कगूरे बने हुए है। इसमे तीन सुरक्षा प्रहरी धनुष बाण तथा अन्य शस्त्रो के साथ तैनात है।[109] इस प्रकार के समतल छत वाले द्वार–कोष्ठक के उदाहरण बहुत कम प्राप्त होते है। सामान्यतया बेसर शैली के बेलनाकार छत युक्त द्वार–कोष्ठक के उदाहरण प्राप्त होते है। जैसा कि इसी दृश्याकन में बांयी तरफ निर्मित द्वार–कोष्ठक की छत बेसर शैली में स्तम्भो के सहारे बनाई गई हैं जिनमे सुरक्षा प्रहरी बैठे हुए दिखाई दे रहे है, सामने की ओर वेदिका निर्मित है।[110] जिसके निर्माण मे काष्ठ शिल्प की अनुकृति साफ झलकती है।

अन्यत्र द्वार–कोष्ठक का महत्वपूर्ण उदाहरण विश्वन्तर–जातक प्रदर्शन मे देखा जा सकता है इसकी छत बेलनाकार बेसर शैली में निर्मित है जिसमे चैत्य गावाक्ष बनाये गये है। छत स्तम्भो के सहारे बनाई गई है।[111] इस समय तक द्वार–कोष्ठक दो मंजिला बनने लगे थे जैसा कि इसी उत्तरी तोरण–द्वार के पृष्ठ

---

[106] दे०चि०फ०स० 18, 23, 24, 22, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 153, 35 a1, 50 a1, कुमारस्वामी, एके पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 123 चि०स० 6 ।

[107] दे०चि०फ०स० 20, 26 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 31, 61 2, कुमारस्वामी, एके दे०चि०फ०स० 124 चि०स० 9, 8।

[108] दे०चि०फ०स० 21, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 34 b1, कुमार स्वामी, एके पूर्वोक्त, दे०चि०फ०स० 124 चि० स० 10।

[109] दे०चि०फ०स० 18,मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 153।

[110] दे०चि०फ०स० 19।

[111] मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त चि०फ०स० 23 a1, कुमार स्वामी, एके पूर्वोक्त दे०चि०फ०स० 123 चि०स० 5।

भाग के मध्यवर्ती बडेरी के वाम पार्श्व पर उत्टंकित जेतुन्तर नगर के द्वार–कोष्ठक से स्पष्ट है।[112]

पुन उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पूर्वी स्तम्भ पर श्रावस्ती नगर के नगर–द्वार का बडा भव्य अकन हुआ है, द्वार के ऊपर तिमजिला द्वार–कोष्ठक का निर्माण किया गया है जिसका ऊपरी छत बेसर शैली मे निर्मित है। सामने की ओर चैत्य गावाक्ष लगे हुए है। छत को सहारा देने के लिए स्तम्भो का निर्माण किया गया है। इसके निचले तल मे कुछ सुरक्षा प्रहरी वेदिका के पीछे बैठे हुए दिखाई दे रहे है।[113] पुन इसी तोरण–द्वार के मुख्य भाग के पश्चिमी स्तम्भ पर द्वार–कोष्ठक का बडा सुन्दर अकन हुआ है, यह एक तलवाला द्वार कोष्ठक है, जिसमे कोई सुरक्षा प्रहरी दिखाई नही दे रहा है, सामने वेदिका बनी है तथा बेसर शैली मे बने इसके चैत्य गावाक्ष युक्त छत को स्तम्भो के सहारे बनाया गया है।[114]

सॉची स्तूप सख्या एक के पूर्वी तोरण द्वार के उत्तरी स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर क्रमानुसार तीसरे दृश्याकन मे राजा शुद्धोधन को रथ पर सवार होकर नगर–द्वार से बाहर निकलते हुए दर्शाया गया है, यहॉ नगर–द्वार के ऊपर 'द्वार–कोष्ठक' का अकन प्राप्त होता है। यह एक तलो वाला निर्माण है, जिसकी छत वेसर शैली में निर्मित है जिसमें चैत्यगावाक्ष लगे हुए हैं। छत स्तम्भो पर आधारित है, द्वार कोष्ठक मे सुरक्षा प्रहरी बैठे हुए है।[115] इसी प्रकार के द्वार कोष्ठक का निर्माण इसी तोरण–द्वार के दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ के मुख्य भाग पर राजगृह के नगर–द्वार के ऊपर भी प्राप्त होता है।[116]

पुनः द्वार–कोष्ठक के निर्माण का प्रमाण पश्चिमी तोरण द्वार के ऊपरी बडेरी के पृष्ठ तल पर कुशीनगर के वहिर्मुख का अकन करते हुए दर्शाया गया है।[117] ठीक इसी प्रकार का द्वार–कोष्ठक इसी तोरण के मध्यवर्ती बडेरी पर 'धातु–युद्ध'

---

[112] दे०चि०फ०स० 20, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स०31 कुमार स्वामी, ए के चि०फ०स०124 चि०स० 9

[113] दे०चि०फ०स० 21, कुमारस्वामी, ए के , दे०चि०फ०स० 124 चि०स० 10, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 34 bl ।

[114] दे०चि०फ०स० 22, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि०फ०स० 35a

[115] दे०चि०फ०स० 23, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि०फ०स० 50a1, कृष्णमूर्ति के0 पूर्वोक्त, चि०फ०स० 6a

[116] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 51b, कुमारस्वामी, ए०के० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 124, चि०स० II, 11, कृष्णमूर्ति, के० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 15b

[117] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 61 I

का दृश्याकन के साथ उत्टकित है। ये दोनो एक तल वाले 'द्वार–कोष्ठक' है तथा स्तम्भो पर टिकी इनकी छत बेसर शैली मे निर्मित है।[118]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रारम्भिक बौद्ध कला मे अभिचित्रित नगर विभिन्न सुरक्षा वास्तुअगो से युक्त बनाये गये है, इनमे परिखा, प्राकार, बुर्ज, नगर–द्वार, द्वार–कोष्ठक का निर्माण नगर सुरक्षा की दृष्टि से नितान्त महत्वपूर्ण था। इन सुरक्षा साधनों की उपयोगिता के सम्बन्ध में जातक कथाओ मे एक घटना का उल्लेख मिलता है– जब आक्रमणकारियो का एक समूह नगर पर आक्रमण करने के लिए नगर परिखा मे मौजूद था, तो अट्टालक मे तैनात सुरक्षा सैनिक विभिन्न आयुद्धों–बाण, भाला, जवलीग पत्थर इत्यादि फेक कर उन्हे विध्वस करते थे।[119] महाभारत से भी ज्ञात होता है कि 'इन्द्रप्रस्थ' नगर के दीवालों के ऊपर तरह–तरह के आक्रमणकारी यन्त्र रखे गये थे तथा इनके प्रयोग हेतु निपुण योद्धाओ की तैनाती की गई थी।[120] अर्थशास्त्र इस प्रकार के यन्त्रो की तालिका प्रस्तुत करता है।[121] जिनका प्रयोग नगर पर आक्रमण के समय सुरक्षा प्रहरी प्राकार शिखर से इन यन्त्रो को शत्रु के ऊपर फेकते थे।[122]

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगरो के विभिन्न सुरक्षा वास्तु अगो का निर्माण जिस सजगता और तन्मयता के साथ प्राचीन भारतीय शिल्पाचार्यों ने किया है, कदाचित् इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन राजनैतिक स्थिति बहुत स्थायित्व को प्राप्त न कर सकी थी। आपसी राजनीतिक रजिश के कारण सुरक्षा उपायो की उपेक्षा नगर पर आक्रमण का कारण हो सकती थी, अस्तु प्राचीन भारतीय शिल्पाचार्यों ने नगर को विभिन्न सुरक्षा साधनो से युक्त कर, नगर की सुरक्षा सुनिश्चित की थी।

---

118 दे०चि०फ०स० 26 मार्शल तथा फूशे, चि०फ०स० 61 2, कुमार स्वामी ए0के0, पूर्वोक्त, चि०फ०स0 124 चि०स० 8, कृष्णमूर्ति के०, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 35b

119 जातक, VI, 400 (ई०वी० कावेल, कैम्ब्रिज 1895)।

120 महाभारत, आरिपर्व, अध्याय 199, श्लोक 32–33।

121 तासुपाषाण कुद्दालकुठारीकाण्ड कल्पना ।
मुसुष्ठिमुद्गरा दण्ड चक्रयन्त्रशतघ्नय॰।।
कार्या कर्मारिकाश्शूला वेधनाग्राश्चवेणक॰।
उष्ट्रव्याऽग्निसयोगा॰ कुप्पकुल्पे च योऽवधिः।
– अर्थशास्त्र, पृ0 54 (शास्त्री)

122 वहीं, पृ० 56 (शास्त्री)।

(6) प्रासाद :

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनुशीलन से राजप्रासाद एवं अन्य उच्च वर्गीय नागरिकों के निवास हेतु बनाये गये नागरिक शालाओ के बारे मे महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। जातक कथाओ मे प्रासाद के लिए कई शब्दो का प्रयोग हुआ है जैसे– 'निवास–प्रासाद, राजभवन, राजा–गेहा, राज–निवास, अन्तेपुरा[123] इत्यादि। प्रासाद एक या उससे अधिक तलो वाले होते थे, जैसे एक भूमिक, द्विभूमिक, त्रिभूमिक से लेकर नव भूमिक[124] तक। किन्तु जहॉ तक प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगरों का सम्बन्ध है यहॉ त्रिभूमिक तक ही प्रसाद दिखाई पडते है। भूमि पर बने हुए फर्श को 'अदि–तल', बीचवाले तल को 'अर्द्धतल' तथा तीसरे तल को त्रि–तल्ला', कहा जाता था।[125]

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगरों के अनुशीलन से तत्कालीन नगरो मे निर्मित राजमहल तथा अन्य नागरिक शालाओं के निर्माण एव तत् सम्बन्धी तकनीकि के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इनका निर्माण ठोस आधार (नीव) पर किया जाता था। महल को मजबूती प्रदान करने के लिए स्तम्भो का बहुलास प्रयोग दिखाई पडता है।[126] इन स्तम्भों की सख्या भवन की बनावट तथा तल्लो पर निर्भर थी। इनका प्रयोग एक निश्चित दूरी के अन्तराल पर किया जाता था जो प्रासाद की संरचना को मजबूती प्रदान करते थे। कहना न होगा कि इस प्रकार के स्तम्भो का प्रयोग आज भी बहुतायत मात्रा मे भवन निर्माण मे किया जाता है।

सामान्यतया राजप्रासाद दो भागों मे विभाजित होते थे 'हेट्ठ–प्रासाद' तथा दूसरा 'उपरि–प्रासाद'। नीचे के हिस्से को चतु:शाला भी कहा जाता था। इसके मध्य एक छतदार मण्डप होता था तथा चारों ओर शालाएं या कमरे बने होते थे।

---

123 जातक VI 412 , VI 456, IV 182, VI 428, 455, VI 428, 429
124 जातक, I 58, 89, 304; IV 105, 378, 379, VI 382
125 अर्थशास्त्र, अध्याय, 21।
126 दे०चि०फ०स० 3, 7, 8, 18, 20, 21 (क्रमानुसार तीसरे दृश्य में) 22।

उपरि–प्रासाद में पहुँचने के लिए सीढियॉ बनी होती थी।[127] उपरि–प्रासाद राजा का व्यक्तिगत अन्तेपुरा होता था जिसमें राजा–रानी निवास करते थे।[128]

भरहुत की कला में प्रासाद के महत्वपूर्ण उदाहरण प्राप्त होते है। इनके निर्माण मे स्तम्भो का बहुलाश प्रयोग हुआ है। इनके वातायन चैत्य प्रकार के है, जिनके किनारे कुछ निकले हुए दिखाए गये है। यहॉ छत की बनावट बेसर शैली मे है। यहॉ से प्राप्त अधिकाश प्रासादो मे वेदिका का निर्माण किया गया है[129], जिनके निर्माण मे काष्ठ शिल्प का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

भरहुत की कला मे त्रि–भूमिक प्रसाद का महत्वपूर्ण उदाहरण प्राप्त होता है। यहॉ तीन मजिले स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है। प्रासाद के सबसे निचले भाग मे दो सुदृढ स्तम्भ दृष्टिगत होते है। दूसरी मजिल में तीन वातायन बने हुए है। इन वातायनो के किनारे कुछ आगे की तरफ निकले हुए है। सबसे ऊपरी मंजिल पर दो वातायन लगे हुए हैं तथा इसकी छत बेसर शैली मे निर्मित है।[130] भरहुत मे पाए जाने वाले प्रासाद सामान्यतया द्वि–भूमिक एव त्रिभूमि प्रासाद के उदाहरण है।

सॉची की कला मे दृश्यांकित नगर दृश्यो मे प्रासाद एवं अन्य नागरिक शालाओ का महत्वपूर्ण अकन प्राप्त होता है। इनमे उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पूर्वी स्तम्भ पर आकारित श्रावस्ती नगर के राजप्रासाद तथा नागरिक शालाओ का अंकन महत्वपूर्ण है।[131] यहॉ त्रिभूमिक प्रासाद दृष्टव्य हैं, सामने की ओर छत को आधार प्रदान करने के लिए स्तम्भों का निर्माण किया गया है, यहॉ सात स्तम्भ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है, जो ऊपरी मंजिला को मजबूत आधार प्रदान किए हुए है। ऊपर बायीं तरफ एक छोटे कमरे का निर्माण किया गया है, जिसमें हवा एव प्रकाश के लिए एक छोटी खिडकी बनाई गई है। कमरे के छत को चपटा बनाया गया है तथा छत के किनारे पिरामिडाकार फॉकदार निर्माण प्रासाद की सुन्दरता मे अभिवृद्धि हेतु बनाई गयी है। चैत्यगावाक्ष के विपरीत यहॉ छोटी चौकोर गावाक्ष का

[127] जातक I 175, 348, IV 428
[128] जातक III 122, IV 105
[129] दे०चि०फ०स० 5, 7, 8।
[130] दे०वि०फ०स० 7
[131] दे०चि०फ०स० 21 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि०फ०स० 34b1

निर्माण है तथा तत्कालीन बेसर शैली में निर्मित होने वाले छत के स्थान पर इसकी छत समतल बनाई गई है। सामने खुली छत है जिसके आगे वेदिका का निर्माण किया गया है। इसके पीछे पुन· एकतल का निर्माण है जिसके छत को आधार प्रदान करने के लिए चार स्तम्भो का निर्माण किया गया है इसकी छत बेसर शैली मे निर्मित है। इसके बॉयी तरफ पुन एक नागरिक शाला का प्रथम तल दिखाई देता है, जिसकी छत चार स्तम्भो पर टीकी हुई है तथा सामने वेदिका का निर्माण किया गया है। उसके ऊपर दूसरा तल का निर्माण है, जिसकी छत समतल दिखाई दे रही है भवन की सुन्दरता के लिए ऊपरी छत के किनारे फॉकदार पिरामिडनुमा आकृति का निर्माण प्राप्त होता है। यह नगर दृश्यांकन भवन निर्माण तकनीकि की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण हैं।

इसी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पश्चिमी स्तम्भ पर कपिलवस्तु नगर के नागरिक शालाओ का अंकन हुआ है।[132] जिसका प्रथम तल दिखाई दे रहा है जिसका निर्माण स्तम्भो के सहारे किया गया है, छतके सामने वेदिका निर्मित है। सबसे बॉये निर्मित नागरिक शाला की छत पर नागरक बाहर के दृश्य का अवलोकन करते हुए आकारित है इसके उपर द्वितीय तल का निर्माण किया गया है जिसकी छत बेसर शैली मे बेलनाकार बनाई गई है।

सॉची स्तूप संख्या एक के पूर्वी तोरण–द्वार के उत्तरी स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर सबसे ऊपर कपिलवस्तु के राजप्रासाद के ऊपरी भाग का अंकन हुआ है। यहॉ माया देवी सोई हुई हैं।[133] इनके सिर की तरफ एक छोटा सा कमरा दिखाई दे रहा है । कमरे मे हवा एव प्रकाश के लिए एक चौकोर वातायन का निर्माण किया गया है, जिसमें छोटे–छोटे छिद्र बने हुए है। ऊपर छत है जिसके छज्जे कुछ बाहर की तरफ निकले हुए है। ऊपर सुन्दरता हेतु पिरामिडाकार आकृति बनी हुई है। माया देवी के पीछे भी प्रासाद के द्वितीय तल का अंकन है इसकी छत बेसर शैली मे निर्मित है जिसके सामने की ओर चैत्य गावाक्ष लगा हुआ है। छत पर वेदिका का निर्माण है, जिस पर बॉयीं तरफ एक मोर बैठा हुआ दर्शाया गया है। इसी के

---

[132] दे०चि०फ०स० 22, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 35 al
[133] दे०चि०फ०स० 23, 34 मार्शल तथा फूशे, चि०फ०स० 50 a.l

दाहिनी तरफ एक दूसरी नागरिकशाला का अकन है, जिसमें स्तम्भो के सहारे अलिन्द (वालकनी) का निर्माण किया गया है, सामने वेदिका निर्मित है जिसमे छत भी वेदिका युक्त बेसर शैली मे निर्मित है जिसमे सामने की ओर दो चैत्य गावाक्ष का अंकन है। इस दृश्याकन के नीचे दो तल्लो वाला भवन का अकन हुआ है। इसके छत को सहारा देने के लिए स्तम्भो का प्रयोग किया गया है। दोनो तल पर सामने की ओर वेदिका का निर्माण देखा जा सकता है इसकी ऊपरी छत परम्परागत बेसर शैली मे निर्मित है।[134]

एक द्विभूमिका प्रासाद 'जल क्रीडा' प्रदर्शन मे शिल्पाकित है[135], यहाँ ऊपर एक छोटी आलिद का निर्माण किया गया है जिसके सामने वेदिका बनाई गई है। अन्यत्र आलिन्द युक्त द्विभूमिक प्रासाद का निर्माण "महाभिनिष्क्रमण"[136] के दृश्याकन मे दृश्याकित है जिसकी छत बेसर शैली मे निर्मित है।

पुन. पूर्वी तोरण–द्वार के दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ के मुख्य भाग पर मगध की राजधानी राजगृह के नागरिक शालाओ का अंकन हुआ है।[137] भवन को मजबूती प्रदान करने के लिए स्तम्भों का प्रयोग हुआ है। यहाँ एक त्रिभूमिक प्रासाद दिखाई दे रहा है जिसकी पहली मंजिल चार स्तम्भों पर आधारित है तथा सामने की ओर वेदिका का निर्माण किया गया है। इसके ऊपरी तल पर तीन तरफ से तीसरी मजिला का निर्माण किया गया है बीच में बरामदा है, तथा दायी तथा बायीं ओर चार–चार स्तम्भो पर आधारित ऊपरी तल बेसर शैली में निर्मित है। सामने का छत खुला दिखाया गया है। सबसे ऊपरी मजिला पर दायी तथा बायीं ओर छोटे–छोटे कमरे बने हुए है जिनमें चैत्य गावाक्ष लगे है। इन कमरे की छत बेसर शैली मे निर्मित है। इसी भवन के दाहिनी तरफ एक दूसरी नागरिकशाला का अंकन हुआ है, जिसमें भवन को मजबूती प्रदान करने के लिए भवन की नीव से ही लम्बे–लम्बे स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। इन स्तम्भों को अष्टपहला बनाया गया है दाहिनी तरफ चैत्यगावाक्ष का प्रयोग हुआ है, ऊपर की छत वेदिका युक्त है। भवन निर्माण

---

[134] दे०चि०फ०स० 23 (द्वितीय दृ02)
[135] दे० मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 12.2।
[136] मार्श तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 40 2, कुमार स्वामी ए0के0, पूर्वोक्त, चि०फ०स0 123, चि०स० 4, कृष्णमूर्ति, के० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 5b

तकनीक की दृष्टि से आलोचित दृश्याकन अतीव महत्वपूर्ण है। इससे प्राचीन भारतीय नगरो के भवन निर्माण के उच्च तकनीकि का पता चलता है।

पुन. भवन निर्माण तकनीकि की दृष्टि से सॉची के स्तूप संख्या एक के उत्तरी तोरण–द्वार के मुख्य भाग की नीचली बडेरी[138] तथा मध्यवर्ती बडेरी के पार्श्व भाग पर अकित 'जेतुत्तर नगर' के भवन महत्वपूर्ण है[139] इसी प्रकार पश्चिमी तोरण की ऊपरी बडेरी के पृष्ठ तल पर आकारित कुशीनगर[140] तथा इसी तल के मध्यवर्ती बडेरी पर शिल्पित 'धातु युद्ध'[141] प्रदर्शन में निर्मित भवन महत्वपूर्ण है यहॉ द्विभूमिक तथा त्रिभूमिक प्रासादों का अकन हुआ है, चैत्य गावाक्ष से युक्त छत बेसर शैली मे निर्मित है।

अमरावती की कला मे भी द्विभूमिक[142] तथा त्रिभूमिक प्रासाद के उदाहरण प्राप्त होते है यहॉ भी प्रासाद निर्माण मे स्तम्भो का प्रयोग दिखाई देता है तथा यहॉ चैत्य गावाक्ष के अतिरिक्त आयताकार गावाक्ष का भी अंकन हुआ है।[143] अमरावती मे राजा शुद्धोधन के राजप्रासाद का अंकन करते हुए प्रासाद को एक दीवाल के सहारे विभाजित किया गया है प्रासाद के बाये प्रकोष्ठ मे उनकी पत्नी माया को चित्रित किया गया है कमरे में रानी की दासियाँ सो रही हैं। दायें कोष्ठ मे राजा शुद्धोधन को स्वप्न की व्याख्या सुनते हुए दिखाया गया है।[144]

नागार्जुनकोण्डा की कला मे भी प्रासाद निर्माण के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, यहॉ भी प्रासाद का निर्माण स्तम्भों के सहारे किया जाता था। जैसाकि 'घाट–घट जातक[145] से स्पष्ट है[146]। एक दूसरे प्रदर्शन में प्रासाद की छत बेलनाकार बनाई गयी हैं।

---

137 मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त, चि०फ०स० 51b कुमार स्वामी, ए०के०, चि०फ०स० 124, चि०स० 11, कृष्णमूर्ति, के०, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 15b

138 मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त चि०फ०स० 23a।

139 दे०चि०फ०स० 20।

140 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 61 1।

141 दे०चि०फ०स०–26, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० – 62 2, कुमार स्वामी, ए०के० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 124, चि०स० 8।

142 कृष्णमूर्ति, के०, अर्ली इण्डियन सेकुलर आर्टिटेक्चर, दिल्ली 1987, चि०स० 9 6 तथा 11।

143 वहीं, चि०स० 12।

144 राय अनामिका, 'अमरावती स्तूप' (द क्रिटीकल कम्प्रीजन ऑव इपिग्राफिक आर्किटेक्चर एण्ड स्कल्पचरल, एवीडेन्स 1994, दिल्ली चि०फ०स० 70।

145 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 46–a

146 रामचन्द्र, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 34।

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टंकित नगर–दृश्यो के अवलोकन से न सिर्फ प्रासाद के बारे मे अपितु इसके निर्माण तकनीकि के विषय मे भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है निश्चय ही इन प्रासादो एवं नागरिक भवनो के निर्माण मे तत्कालीन शिल्पाचार्यों ने इसकी उपयोगिता के साथ–साथ इसकी मजबूती तथा सौन्दर्य पर पर्याप्त ध्यान दिया था। कदाचित् इनकी तकनीकि सत्यता का सातत्य आज भी भवन निर्माण मे देखा जा सकता है।

(7) बाजार :

नगर मे बाजार का महत्पूर्ण स्थान था। जातकों से भी अभिज्ञात होता है कि नगर वीथियों के दोनों किनारो पर आपण (दुकाने) हुआ करती थी, जिनमे नागरिको की आवश्यकतानुसार विक्रय के निमित्त वस्तुए सजा कर रखी जाती थी।[147] विभिन्न व्यवसायो के अनुरूप विभिन्न वीथियो का निर्माण किया जाता था।[148]

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे भी बाजार का दृश्यांकन हुआ है। भरहुत की कला मे बाजार का दृश्य प्राप्त होता है। यहॉ तीन दुकानें एक साथ दर्शायी गयी है इनके सामने एक ग्राहक हाथ मे थाली लिए खडा है, जिसमे दुकानदार भाण्ड को पलटकर उसमे रखी वस्तु खाली कर रहा है। बगल मे एक दूसरा व्यक्ति अकित है जिसके हाथ मे एक बहंगी है। जिसके दोनो शिराओं पर मटके लट रहे है, इनके मुॅह ढक्कन द्वारा बन्द किये गये है। यह सम्भवत· मधु की दुकान है।[149] यहॉ की कला में एक दूसरी दुकान का दृश्य उत्कीर्ण है, यहॉ दो व्यापारी बैठे हुए है जिनके सामने बर्तन मे कुछ रखा हुआ है। नीचे सामने की ओर केले की घौद रखी हुई है। दुकान के सामने दो ग्राहक जो सम्भवत. माल खरीदना चाहते हैं आपस मे कुछ सलाह कर रहे हैं।[150]

---

[147] जातक II, 267, III, 198, 406।
[148] जातक I 320।
[149] बरुआ, वी एम. पूर्वोक्त, चि०फ०स० 95 चि०स० 145।
[150] बरुआ, पूर्वोक्त, चि०फ०स०95 चि०स० 143।

बाजार के दृश्य सॉची[151] तथा अमरावती की कला मे भी प्राप्त होते है। यहॉ एक दुकानदार अपनी सामग्री को बेचने के लिए ग्राहको को बुला रहा है। इस प्रकार के दृश्य आज भी भारत मे तीर्थ स्थलो पर देखने को मिल जाता है। पुरातात्विक साक्ष्यो से भी नगरो मे बाजार होने की सूचना मिलती है। इनमे तक्षशिला[152], भीटा[153], मथुरा[154], नागार्जुनकोण्डा[155] इत्यादि नगरो से बाजार होने के साक्ष्य मिले है।

(ख) विविध वस्त्र एवं परिधान

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक अवशेषो का सम्यक अध्ययन तत्कालीन नगरो में प्रचलित नागरिकों एव नगर–स्त्रियो के विविध वस्त्र एव परिधानो की समुचित जानकारी उपलब्ध कराते है। सामान्यतया स्त्री और पुरुषों द्वारा दो वस्त्रो का प्रयोग किया जाता था।[156] निम्न भाग को ढकने के लिए 'अन्तरीय' का प्रयोग किया जाता था, जबकि 'उत्तरीय' का प्रयोग शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिए किया जाता था। शरीर का शेष भाग लगभग अनावृत्त ही दिखाया गया है।[157]

सामान्यतया नागरिक अपने उर्ध्वभाग को ढकने के लिए 'उत्तरीय' का प्रयोग करता था जो कदाचित कन्धे से होता हुआ कांध के नीचे से निकाल लिया जाता था अथवा कन्धे पर रख लिया जाता था।[158] किन्तु उत्तरीय का प्रयोग लोग अवसर विशेष अथवा स्थान विशेष पर ही करते थे[159] अन्यथा शरीर का ऊपरी भाग सामान्यता अनावृत्त ही रहता था।

निम्न भाग को ढकने के लिए नागरिक 'अन्तरीय' के रूप मे धोती का प्रयोग करता था, जिसके एक सिरे को लॉग के रूप में पीछे खोल लिया जाता था।

---

[151] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चित्र फ०स० 18 b2
[152] मार्शल, तक्षशिला, भाग एक पृ० 140।
[153] ए एस आर 1911–12 पृ० 34–38।
[154] हरबर्ट हॉर्टेल, सम, रिजल्ट्स ऑव द एक्सकेवेशम एट सोख' जर्मन स्कॉलर्स ऑन इण्डिया, भाग दो पृ० 76।
[155] सरकार, एच और मिश्र, बी. एन 'नागार्जुनकोंडा, पृ० 20–21।
[156] मोती चन्द प्राचीन भारतीय वेशभूषा, इलाहाबाद 1950, पृ० 56।
[157] वही, पृ० 8।
[158] दे० मार्शल तथा फूशे, चि०फ०स० 50 a1 (राजा दो के सारथी का चित्र), 18 b (सबसे नीचे) बरुआ, बी एम. पूर्वोक्त चि०फ०स० 47 चि०स०–47 (पीठ पीछे करके बैठे लोग)
[159] दे० चि०फ०स०–30 (दाहिनी तरफ हाथ जोड़े खड़े लोग), राय, अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 98।

पणिनि ने ऐसी धोती के लिए 'उपसव्यान' शब्द का प्रयोग किया है।[160] कभी–कभी पुरुष अपनी धोती को कमर के चारों ओर लपेट कर नीचे तक लटका कर पहनता था।[161] ऐसी धोती के लिए अष्णध्यायी मे 'आप्रपदीन' शब्द का प्रयोग हुआ है।[162] प्राय. धोती नीचे न ले जाकर घुटने तक ही पहनी जाती थी।[163]

तत्कालीन नागरिक 'उत्तरीय' के अतिरिक्त अपने सिर पर पगडी धारण करता था, जिसे नाना कलात्मक रूप प्रदान किया जाता था।[164] उनकी पगडियॉ झालरदार, लाट्दार, चूनदार, पुष्पों और विभिन्न अलकरणो से अलकृत हुआ करती थी। प्राय शीश पर वृहदाकार पगडी बाधी जाती थी, जो शीश के पूरे भाग को अच्छादित कर लेती थी। पगडी के दो फेटे बॉधे जाते थे जो मध्य में जाकर खुस जाते थे। सॉची के शिल्पगत साक्ष्यो में दृश्यांकित नागरिकों की पगडियॉ अत्यन्त आकर्षक और मनोहारी है, जिनमे भरहुत की तरह चित्ताकर्षक फुलने और झालरे लगी हैं।[165]

प्रारम्भिक बौद्ध कला के शिल्पगत साक्ष्य तत्कालीन नागरिक समाज में विदेशी प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है जैसा कि उत्टकित दृश्याकनों मे पुरुषों को कभी–कभी कोट पहने हुए दर्शाया गया है।[166] जिसके सामने का भाग खुला हुआ है। निम्न भाग को ढकने के लिए विदेशी नागरिक चुस्त पाजामा का प्रयोग करते थे। यह मध्य एशिया का बहुत लोकप्रिय पहवाना था, जो शको द्वारा पहना जाता था।[167] वाण ने हर्षचरित् में कोट तथा पाजामे का उल्लेख किया है। यहॉ कोट के लिए 'चोलक' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसे लोग सब प्रकार के बस्त्रों के ऊपर धारण करते थे।[168] पाजामे के लिए बाण ने 'स्वस्थान' शब्द का प्रयोग किया है। यह एक तंग मोहरी का पाजामा होता था जो पिंडलियों पर कसा रहता

---

160 अष्टाध्यायी, 1 1 36 (बहिर्योगोप सव्यानयो)।
161 मार्शल तथा फूशे, चि०फ०स० 67, 110, 119 आदि।
162 अष्टाध्यायी, 5 3 8।
163 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 18।
164 कनिघम, ए 'स्तूप आफ भरहुत' लन्दन, 1879, चि०फ०सं०, 14, 21, 34 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि०फ०स० 35a1, 50a1 (क्रमानुसार तीसरे तथा चौथे दृश्याकन) 34b1, 34a2, 34a3, 15.3 (हाथियो तथा रथो पर आरुढ़ सम्राट), 61.2 (हाथियो तथा रथो पर आरुंढ़ नरेश तथा उनके अनुचर)
165 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 3, 11, 24, 26, 23, 27, 30।
166 बरुआ, बी एम पूर्वोक्त, चि०फ०स० 20, 62, 71, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त भाग III, चि०फ०स० 97।
167 कृष्णमूर्ति मैटिरियल कल्चर आव सॉंची, पृ० 39।
168 अग्रवाल, वी एस हर्षचरित एक सास्कृति अध्ययन, पृ० 151।

था।[169] कोट के उदाहरण भरहुत[170], सॉची[171], अमरावती तथा, नागार्जुनकोण्डा से प्राप्त हुए है। कोट ओर पाजामा के उदाहरण भारतीय मुद्राओ से भी प्राप्त होते है। गुप्त मुद्राओ पर गुप्त शासक कोट पहने प्रदर्शित है।[172] एक मुद्रा पर समुद्रगुप्त को चूडीदार पाजामा पहने हुए दिखाया गया है।[173]

तत्कालीन नागरिक सिर पर पगडियो के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के टोपियो का धारण किये हुए प्रदर्शित है।[174] ये टोपियॉ विदेशी प्रभाव को सूचित करती है अथवा स्वयं इन नगरो मे विदेशी नागरिकों की उपस्थित का बोध कराती है। ये टोपियॉ गोलाकार, लम्बादार, पच्छिल्लेदार और कुलाहनुमा होती थी।[175] गुम्बदाकार टोपी जिसका बाहरी किनारा घेरे की तरह होता था, यह विदेशी नागरिको द्वारा धारण किया जाता था, विशेषकर आरकेस्ट्रा के अवसर पर इसे धारण करते थे।[176]

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला के शिल्पगत साक्ष्य इस तथ्य के सक्षम साक्षी है कि तत्कालीन समय मे शक मध्य एशिया से आकर भारत के तत्कालीन नगरो मे रहने लगे थे, जिनकी उपस्थिति का बोध सॉची, भरहुत, अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा के दृश्याकनो से हो जाता है। निश्चय ही ये विदेशी गॉवों की अपेक्षा समसामयिक आधुनिक सुविधाओ से युक्त नगरो मे ही रहना पसन्द करते रहे होगे।

नागरिको की तरह नगर स्त्रियो के भी लिबास दो प्रकार के होते थे। उत्तरीप का प्रयोग ऊपरी भाग को ढकने के लिए किया जाता था।[177] सामान्यतया इसे ओढनी भी कहा जा सकता है। इसका बार्डर बहुत सुन्दर होता था जो सिर के

---

169 वही, पृ० 148।
170 बरुआ, बी एम. पूर्वोक्त, भाग दो, चि०फ०स० 20, 62, 71।
171 मार्शल, तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 24।
172 एनल, कैटलाग ऑव द व गुप्ता क्वाएन्स, पृ० 43।
173 वही, चि०फ०स० 1।
174 माशर्ल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 6, 31 (प्राकार के पीछे खड़े नागरक)।
175 मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त, चि०फ०स० 36 Cl।
176 वही, चि०फ०स० 36 C 1।
177 रोजने स्टोन, एलिजावेथ, 'द बुद्धिस्ट आर्ट आव नागार्जुनकोण्डा, 1994 दिल्ली, चि०फ०स० 190 (राजा के दाहिनी तरफ खडी स्त्री) 197 (हाथ जोड़े स्त्रियॉ)

पीछे लटकता रहता था।[178] यह ओढनी सिर मेखला से सुरक्षित होती थी।[179] कभी–कभी ओढनी का शिखर बिन्दु पंखे की तरह व्यवस्थित होती थी।[180]

दूसरा वस्त्र जिसे स्त्रियॉ अपने कटि के नीचे धारण करती थी, आधुनिक शब्दो में साडी कहा जा सकता है। भरहुत, सॉची, अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा इत्यादि के शिल्पगत साक्ष्यो में नगर–स्त्रियॉ साडी पहने हुए प्रदर्शित है। परन्तु ये साडियॉ पैरो तक न पहुँच कर घुटनो तक ही रहा करती थी। कमर मे ये साडियॉ कमरबन्ध से बंधी होती थी।[181] भरहुत[182], सॉची[183], अमरावती[184] तथा नागार्जुनकोण्डा[185] मे इस प्रकार के 'अन्तरीय' को रानी माया द्वारा पहने हुए दर्शाया गया है। यह 'अन्तरीय' बहुत पतले कपडे का बना हुआ है। कभी–कभी दोनो पैरो के बीच लटकते हुए ऐसे पटके धारण करने की प्रथा भी इस काल मे विद्यमान थी, जो कमरबन्ध से खुसे रहते थे।[186] ये पटके प्राय. लहरियादार होते थे, जिनमे मनके भी पिराये जाते थे। किन्तु सामान्यतः स्त्रियॉ दो ही वस्त्रों ओढनी और साडी का प्रयोग करती थी। इनके कटि के ऊपर का भाग प्रायः वेढका दर्शाया गया है।

जहॉ तक पहनावे मे विविधता का प्रश्न है इस दृष्टि से सर्वसामान्य, राजा एवं उच्चवर्ग के लोगो में कोई विशेष अन्तर दिखाई नही देता। छोटी चादर एव पगडी सर्वत्र दिखती है। यहॉ तक कि ग्रामीण तथा झोपडियो में रहने वाले लोग भी इन्हीं वस्त्रो का प्रयोग करते थे, जैसा कि 'उरविला गॉव'[187] एवं अन्य शिल्पगत साक्ष्यो से स्पष्ट है किन्तु अवश्य ही इनके निर्माण सामग्री एव तकनीकि मे अन्तर रहा होगा। राजवर्ग एव धनी वर्ग के वस्त्र में बहुमूल्य रत्नो कीमती मनको, स्वर्ण पत्रो, इत्यादि का प्रयोग किया जाता रहा होगा इसके विपरीत जन–सामान्य के

---

178 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स०44, 45, 46।
179 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि०फ०स० 47, 48, 49।
180 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 53, 54।
181 कनिघम, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 21, 22।
182 बरुआ, बी एम। चि०फ०स० 26 चि०स०–21–24, जिमर, एच०, द आर्ट ऑव इण्डियन एशिया, भाग दो, चि०फ०स०–31d, दे०चि०फ०स०–4।
183 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 50 a1 दे०चि०फ०स० 23 (सबसे ऊपरीदृश्याकन मे माया देवी)
184 एलिजाबेथ, रोजेन स्टोन, 'द बुद्धिस्ट आर्ट आफ नागार्जुनकोण्डा, 1994, दिल्ली, चि०फ०स०–84, दे०चि०फ०स०–28।
185 वही, चि०फ० 83।
186 मोती चन्द, पूर्वोक्त, पृ० 38।
187 दे०चि०फ०स० 25a1, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 52a1

वस्त्र मे साधारण मनकों का, अथवा सादा एव सामान्य कपडे का प्रयोग किया जाता होगा। क्योकि आर्थिक स्तर उन्हे अतिव्ययता एव विलासिता की इजाजत नही देता।

(ग) विविध आभूषण

प्राचीन काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य–प्रेमी रहा है। स्त्री और पुरुष दोनो वर्ग के लोग अपने शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रो के अतिरिक्त, बहुअलंकृत, अलंकारों का भी प्रयोग करते रहे है। उसकी इसी श्रृगांर प्रियता ने उसे अनेक प्रकार से शरीर के विविध अगो को अलकृत करने की प्रेरणा प्रदान की। प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक अवशेषो मे उत्टंकित नगरो के नागरिक भी इसके अपवाद नही है। उत्टकित नगर दृश्यों मे दृश्याकित नागरिक एव नगर–स्त्रियो का समाज मे अपनी स्थिति के अनुसार बहुअलकृत रत्नजटित भारी आभूषणो के साथ दर्शाया गया है, जो तत्कालीन नगर–वासियो के आभूषण प्रियता का परिचायक है। ये आभूषण विभिन्न अगों पर धारण किए जाते थे यथा– मस्तक, कान, ग्रीवा बॉह, कलाई, कमर तथा पैर इत्यादि अंगो से सम्बन्धित होते थे।

(1) मस्तक आभूषण

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक अवशेषो से ज्ञात होता है कि तत्कालीन नागरिक एवं नगर–स्त्रियॉ दोनों ही वर्ग के लोग विभिन्न प्रकार के बहुअलकृत, रत्न जटित एवं भारी शिरोभूषण धारण करते थे। भरहुत, सॉची, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा इत्यादि के कलात्मक अवशेष उपर्युक्त तथ्य का भली–भॉति समर्थन करते है।

इन मस्तकाभूषण मे सर्वप्रथम 'अगरपट्टा' तथा 'ललाट पट्टा' का उल्लेख किया जा सकता है। यह आभूषण तत्युगीन समाज के सम्भ्रान्त एवं राजकुलो मे प्रचलित शिरोभूषण का परिचायक प्रतीत होता है। अगरपट्टा सामान्यतया रत्नजटित अलंकृत महीन वस्त्र अथवा पतले धातु का बना हुआ प्रतीत होता है। यह आभूषण नागरिक एवं नगर–स्त्रियों में सामान्य रूप से प्रचलित था, किन्तु इनमें एक अन्तर

स्पष्ट है, जो अगरपट्टा स्त्रियॉ धारण करती थीं उनमें कतारों मे मनके अथवा मोती गुॅथे होते थे तथा इनके बीच लटकन सदृश अलंकरण लगा होता था। भरहुत के शिल्पाकन से ज्ञात होता है कि राजा, राजकर्मचारी, सम्भ्रान्त नागरिक तथा कारीगर इस प्रकार के मस्तकाभूषण का प्रयोग करते थे। जैसे 'मायादेवी के स्वप्न''[188] दृश्य, जातक कथाओ तथा प्रसेनजित स्तम्भ पर नर्तकियो के दृश्य मे ऐसा शिरोभूषण[189] प्राप्त होता है। सॉची की कला में इस प्रकार के आभूषण 'विश्वन्तरा जातक' प्रदर्शन मे देखा जा सकता है।[190] नागार्जुनकोण्डा के दृश्यांकन मे रानी यशोधरा जो राजा सिद्धार्थ के निकट बैठी है इस प्रकार के आभूषण को अपने मस्तक पर धारण की हुई है।[191]

इसी आभूषण का एक अन्य प्रकार ललाट पट्टा था जो उच्चवर्गीय लोगो द्वारा प्रयोग किया जाता था।[192] सामान्यतया इसका प्रयोग रानियॉ करती थी।[193] इस आभूषण मे भी दो पक्तियों मे मोती गुॅथे होते थे, किन्तु इन मोतियो का आकार 'अगरपट्टा' की अपेक्षा बहुत बडा होता था तथा बीच वाला लटकन सदृश अलकरण नही होता था। इस प्रकार के आभूषण का प्रयोग पुरुष भी करते थे जैसा कि सॉची की कला से स्पष्ट है।[194]

मस्तकाभूषण का एक अन्य प्रकार जो प्रारम्भिक बौद्ध कला मे प्राप्त होता है यह पतले कपडे का बना हुआ प्रतीत होता है जिसमे एक या अनेक रस्सियो मे मोती पिरोकर ऊपर लगाया गया होता था। यह आभूषण सिर के चारो तरफ बॉधा जाता था। इस प्रकार का आभूषण सॉची[195] एवं नागार्जुनकोण्डा[196] की कला में रानी माया द्वारा धारण किया गया है। इस प्रकार के आभूषण को धारण करने का उद्देश्य आकर्षण के अतिरिक्त इसका उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी रहा होगा। यह

---

188 दे०चि०फ०स० 4, जिमर, एच पूर्वोक्त, भाग दो, चि०फ०स० 31 d बरूआ, पूर्वोक्त, चि०फ०सं० 26 चि०स० 21–24 (माया देवी का स्वप्न)। बरूआ, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 34 (प्रसनजित स्तम्भ का नृत्य दृश्य)

189 जिमर द आर्ट ऑव इण्डिया एशिया भाग – 2 चि० फ०स० 36 (निचला दृश्य)

190 मार्शल, तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 23 1।

191 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 36 a।

192 वही, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 32b (रानी माया द्वारा धारण किया गया है।)

193 मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त चि०फ०स०– 18 a3।

194 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 35 b1, 40 3।

195 वही, चि०फ०स० 91 e।

196 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 32 b

सिर के बालो को एक तरह से बाधे रखता था, जिससे बाल आखो के ऊपर नही आते थे।

(2) ललाटिक

यह भी मस्तकाभूषण का एक प्रकार था इसमे एक छोटी तश्तरीनुमा बनावट होती थी जो स्वर्ण जजीर से जुडी होती थी।[197] यह सीमन्त मे लगा कर ललाट के सामने लटका कर पहना जाता था।[198] भरहुत मे स्त्रियॉ ऐसे आठ प्रकार के आभूषण को धारण किये हुए प्रदर्शित है। सॉची[199] तथा नागार्जुनकोण्डा[200] की कला मे भी यह आभूषण बहुत लोकप्रिय जान पडता है। इस प्रकार के आभूषण का उदाहरण आज भी उत्तर भारत में सुमगली स्त्रियो द्वारा धारण किए हुए देखा जा सकता है। इसे 'मांगटीका' के नाम से जाना जाता है। प्राचीन भारत में इस प्रकार के आभूषण शुंग सातवाहन तथा कुषाण काल की कला मे विशेष रूप से प्रचलित थे। जब यह बहुत छोटा आकार का होता था, जिसमे सोने की जंजीर का प्रयोग नही किया जाता था, इसे 'विन्दी' के नाम से जाना जाता था।

(3) कर्णाभूषण

प्रारम्भिक बौद्ध कला के शिल्प तत्कालीन नागरिको एवं नगर–स्त्रियो द्वारा धारण किए जाने वाले बहुविधि कर्णाभूषणो की सुन्दर झॉकी प्रस्तुत करते है। कर्णाभूषण में 'बाली' का स्थान प्रमुख था इसे स्त्री और पुरुष दोनों वर्ग के लोग धारण करते थे। यह स्वर्ण निर्मित गोल आकृति का होता था। सॉची की कला में 'विश्वन्तरा जातक' प्रदर्शन मे इस प्रकार के आभूषण मादरी को पहने हुए दर्शाया गया है।[201] इस प्रकार के आभूषण आज भी स्त्रियो को धारण किए हुए देखा जा सकता है। कभी–कभी इन बालियों में हीरे जवाहरात जडे हुए होते थे।[202] यह स्त्री तथा पुरुष दोनों वर्गों में लोकप्रिय था। 'बाली' का एक अन्य प्रकार भी प्राप्त होता

---

[197] कृष्णमूर्ति, के नागार्जुनकाण्डा–ए कल्चरल स्टडी, पृ० 60।
[198] मार्शल तथा फूशे, चि०फ०स० 30, 68।
[199] वही, 18 a1, 18b2, 24 2, 27, 30, 44 आदि
[200] लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 45 a, 46a, 20b, 21a, 35b, 29b, 33a, इत्यादि।
[201] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 29.3।
[202] मार्शल तथा फूशे, चि०फ०सं० 57।

है इसमें एक अपेक्षाकृत बडे गोलाकृति मे नीचे की तरफ मोतियों का गुच्छा लटकता रहता था, यह गुच्छा कभी–कभी कन्धे तक लटकते हुए दर्शाया गया है। इस प्रकार के उदाहरण सॉची[203], अमरावती[204], नागाजुर्नकोण्डा[205] के अतिरिक्त कन्हेरी[206], मथुरा[207] तथा गान्धार[208] की कला मे भी प्राप्त हुए है।

कुण्डल कर्णाभूषण का एक अन्य प्रकार था यह अर्द्धचन्द्रार होता था। इसका निर्माण सोने अथवा अन्य दूसरी धातुओ द्वार किया जाता था, ऐसा जान पडता है। इस प्रकार के आभूषण का महत्वपूर्ण उदाहरण नागार्जुनकोण्डा में जातक प्रदर्शन करते हुए बनारस के राजा एव उनके मंत्रियों द्वारा धारण किया गया है।[209] अन्य अमरावती[210], गोली[211] इत्यादि की कलाओं मे भी इसके उदाहरण प्राप्त होते है।

कर्णाभूषण का एक अन्य प्रकार कर्णफूल था जिसका आकार अर्द्ध खिले हुए कमल के पुष्प के समान होता था। जैसा कि सॉची की कला मे रानियों एवं राज परिवार के सदस्यों को इस प्रकार के कर्णाभूषण पहने हुए दर्शाया गया है।[212] सॉची की कला में भरहुत की ही भॉति स्त्री और पुरुषो के कर्णाभूषण मे कोई विशेष अन्तर नही मिलता। यहॉ अकित कर्णाभूषण का स्वरूप अलकृत तथा अनलकृत दोनो प्रकार का है।

कर्णाभूषण का एक अन्य प्रकार जो तत्कालीन नागरिकों द्वारा प्रयोग किया जाता था। इसे कर्णिका अथवा झुमका कहा जा सकता है। इसकी आकृति अशोक स्तम्भ पर प्राप्त उल्टे कमल के समान होती थी। इसी का लघुरूप कर्णिका अथवा झुमका होता जान पडता है। यह आभूषण बच्चो मे विशेष लोकप्रिय प्रतीत होता है यह कान के निचले हिस्से लटकता रहता था। इस प्रकार के आभूषण का महत्वपूर्ण

---

203 वही, चि०फ०स० 40 3।

204 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त चि०फ०स० 8, चि०स० 4, जिमर पूर्वोक्त चि०फ०स० 92 b

205 कृष्णमूर्ति, के , (नागार्जुनकोण्डा) चि०स० 5 16, 38 b

206 जिमर, पूर्वोक्त चि०फ०स० 84, 85

207 अग्रवाल, वी एस., मास्टर पीस ऑव मथुरा स्कल्पचर (वाराणसी, 1969) चि०फ०स० 3, 7।

208 कृष्णमूर्ति, के (गान्धार स्कल्पचर्स) चि0स० 7.20।

209 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त चि०फ०स० 38 b

210 शिवराममूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 7 चि०स० 8 तथा 13, चि०फ०स० 8 चित्र स० 5 तथा 23, जिमर, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 90,91,95 b

211 रामचन्द्रन (गोली स्कल्पचर्स) चि०फ०स० 4 तथा 6।

212 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 18 3, 18 b1।

उदाहरण सॉची के दक्षिणी द्वार पर देखा जा सकता है।[213] अन्यत्र अमरावती[214] तथा नागाजुर्नकोण्डा[215] की कला में भी इस प्रकार के आभूषण प्राप्त होते है।

छोटी तश्तरी के समान आकृति का एक अन्य कर्णाभूषण था, जो स्त्रियो तथा पुरुषो द्वारा समान रूप से धारण किया जाता था। यह सामान्यतया राज परिवार मे प्रचलित जान पडता है, इस प्रकार के आभूषण का महत्वपूर्ण उदाहरण सॉची मे अशोक के बोधगया के यात्रा का दृश्याकन करते हुए दर्शाया गया है।[216] प्रारम्भिक बौद्ध कला मे इसके उदाहरण भरहुत[217], अमरावती[218] नागाजुर्नकोण्डा[219], इत्यादि से प्राप्त हुए है। इस प्रकार के आभूषण विशेष रूप से सातवाहन काल मे अत्यन्त लोकप्रिय जान पडता है। पुरातात्विक उत्खनन इस तथ्य की पुष्टि करते है। प्राचीन धरणिकोटा जो सातवाहनो की राजधानी थी, उत्खनन में बडी मात्रा मे हाथी दॉत, मिट्टी इत्यादि से निर्मित इस प्रकार के कर्णाभूषण प्राप्त हुए है।

(4) ग्रीवा के आभूषण

अत्यन्त प्राचीन काल से ही मनुष्य द्वारा धारण किये जाने वाले आभूषण में ग्रीवा के आभूषण का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित नगर दृश्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि स्त्रियॉ अनेक प्रकार के रूप भेद वाले ग्रीवा के आभूषण धारण करती थी। इनमे हम मुख्यतः दो वर्गों मे रख सकते है। पहले वर्ग मे वह हार आते है जिनका निर्माण मनकों या मुक्ताओं के एक लडियो अथवा अनेक लडियो द्वारा किया जाता था। दूसरा वर्ग उन आभूषणों का है जिसमे पिरोये गये मनके गले में बिल्कुल चिपके हुए होते थे।

पहला जो गले में स्वतन्त्र रूप से लटकता रहता था। ऐसे आभूषण को हार कहा गया है[220], इनकी एक अथवा अनेक लडियॉ प्राप्त होती है, जिनमें मनके, मोती,

---

[213] मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त चि०फ०स०122 (कुर्सी पर बैठे राजा के सम्मुख बैठी रानी)।
[214] शिवराममूर्ति (पूर्वोक्त) चि०फ०स० 7, चि० स० 17।
[215] कृष्णमूर्ति, के0 (नागार्जुनकोण्डा) चि० 515।
[216] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 403।
[217] बरुआ, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 30, चि०फ०स० 23, चि०फ०स० 44, चि०स० 44।
[218] बैरेट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 17।
[219] कृष्णमूर्ति, के (नागार्जुनकोण्डा) चि० स० 511।
[220] कृष्णमूर्ति, के (नागार्जुनकोण्डा), पृ० 71।

अथवा मणि गुँथे होते थे। कभी–कभी बीच मे लटकन लटकता रहता था जिस पर अनेक प्रकार के फूल एवं आकृतियाँ प्राप्त होती है।

सॉची की कला में अकित स्त्रियो के ग्रीवा के आभूषण मुख्यत. भरहुत के स्त्री प्रतिमाओ के समतुल्य है। स्तूप सख्या एक के शिल्पाकन मे स्त्री प्रतिमाओ को प्राय उदर प्रान्त तक लटकती मनकों या मुक्ताओ की एक लडी का हार पहने दर्शाया गया है।[221] इसी के समानान्तर उदाहरण अमरावती[222], नागार्जुनकोण्डा[223] से भी प्राप्त होते है।

ग्रीवा का दूसरा आभूषण 'कण्ठी' था जो, हार के विपरीत गले से बिल्कुल चिपका रहता था। इसमे भी कतारो मे मोती, मनके अथवा हीरे जवाहरात गुँथे होते थे। यह आभूषण सामान्य रूप से स्त्री और पुरुष दोनो वर्गों में लोकप्रिय जान पडता है। साची के कुछ स्त्रियो में भरहुत[224] शैली मे क्रमागत तीन चार लडियों का गले से चिपका हुआ 'कण्ठी' पहने दर्शाया गया है।[225] प्राय इसे साहसी, खेलकूद से सम्बन्धी लोग अथवा जुलूस इत्यादि के अवसर पर पहना जाता था।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषकर आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही इस प्रकार के आभूषण धारण करते थे। ग्रामीण जनो का आर्थिक स्तर विलासिता और अतिव्यय की इजाजत नही देता कदाचित् इसीलिए ग्रामीण जीवन में इस प्रकार के आभूषण प्राप्त नही होते।[226]

(5) हस्ताभूषण

प्रारम्भिक बौद्ध कला में दृश्याकित नगर–दृश्यों मे प्रायः सभी स्त्री आकृतियो के भुजाओ मे आभूषण पहने हुए उत्टकित किया गया है। इनमे सर्वप्रथम चूडी का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी संख्या छः से लेकर सोलह तक प्राप्त होती है।

---

[221] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 11 (दक्षिणी तोरण द्वार पर माया देवी एव नागराज की पत्नियॉ) चि०फ०स० 35a1 (उत्तरी तोरण द्वार–कपिलवस्तु की स्त्रियाँ) चि०फ०स० 62 2 (पश्चिमी तोरण द्वार पृष्ठतल कुशीनगर की स्त्रियॉ), दे०चि०फ०स० 2।

[222] एलिजावेथ रोजेन स्टोन, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–41 (सबसे बाये के दृश्य मे खड़ी स्त्री)।

[223] कृष्णमूर्ति, के (कनागार्जुनकोण्डा) पृ० 205।

[224] दे०चि०फ०स० 13 बरुआ, बी एम पूर्वोक्त, चि०फ०स० 39 चि०स० 34, कनिघम, पूर्वोक्त चि०फ०स० 7, चि०स० 1a

[225] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 18 b2 (द० तो० द्वार अशोक की रानियॉ तथा दासी के हार एक समान है)।

[226] दे०चि०फ०स०– 25 (उरवेला गाँव का दृश्य)

किन्तु जहॉ तक चूडियॉ अधिक संख्या मे है वहॉ इनको पतला बनाया गया है और जहॉ कम संख्या में है। वहॉ इनको मोटा दर्शाया गया है। भरहुत की कला मे अधिकाश स्त्री प्रतिमाओं में परस्पर जुडी हुई सादी चूडियो का अकन हुआ है। इन्हे कुहनी के कुछ नीचे तक दर्शाया गया है। उत्टकित दृश्यो मे नर्तकियो तथा अधिकाश स्त्रियो को इस प्रकार परस्पर सलग्न चूडियो को पहने हुए दर्शाया गया है।[227]

सॉची स्तूप सख्या एक के दृश्याकनो मे आभूषणो के अध्ययन के प्रसग मे अपेक्षया अधिक मुखर है। यहॉ के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यहॉ की स्त्रियो मे भी भरहुत के समान परस्पर जुडी हुई पतली चूडियॉ पहनने की प्रथा थी। सॉची मे प्राय सभी स्त्री प्रतिमाओ को कलाई से कुहनी तक महीन चूडियॉ पहने हुए दर्शाया गया है[228]। अमरावती की कला मे भी इस प्रकार की चूडियो का अकन प्राप्त होता है। नलगिरी हस्तिदमन के दृश्याकन मे स्त्रियो को इस प्रकार के चूडियो को धारण किये हुए दर्शाया गया है।[229] किन्तु कही इनके आकार में अन्तर है। कलाई के समीप वाली चूडी को छोटा तथा ऊपर क्रमश बडा दिखाया गया है। कही–कही इनको समान आकार का बनाया गया है।[230] आज भी क्रमशः बडी छोटी चूडियो को पहनने का प्रचलन मारवाडी औरतो मे है, जबकि उत्तर भारत मे समान आकार की चूडियॉ प्रचलित है।

हस्ताभूषण का एक दूसरा प्रकार जो कलाई में धारण किया जाता था। यह चौडी पट्टी की तरह होता था, जिस पर कतारों में मोती, मणि अथवा मनको द्वारा सजाया गया होता था। यह आभूषण स्त्री एव पुरुष दोनो ही वर्गों मे लोकप्रिय प्रतीत होता है, इसको दो अथवा तीन की सख्या मे प्रत्येक हाथ मे धारण किया जाता था। भरहुत की कला में ऐसे आभूषण को दर्शाया गया है। सुप्रसिद्ध मायादेवी वाले चित्र में माया देवी को चौकोर मनकों से निर्मित तीन भारी कडे तथा उनके

[227] बरुआ, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 21 चि०स० 17 a (ध्वजली हुई अश्वरोहिणी)
[228] दे०चि०फ०स० 18 (कुशीनगर की स्त्रियाँ), 22 (कपिलवस्तु की स्त्रियॉ), 24 (मायादेवी) फर्ग्युसन, जे ट्री एण्ड सर्पेन्ट वर्शिप, 1971, दिल्ली, चि०फ०स० 24.2, 25.3, 26 1, 30 1, 34 1, 35 1–2, 37 1–2 मार्शल तथा फूशे पूर्वोक्त, चि०फ०स० 15 3, 35 a1, 50a1, 61-2, राय अनामिका अमरावती स्तूप (ए क्रिटिकल कम्प्रीजन आफ इपिग्राफिक आकिटेक्चर एण्ड स्कल्पचरल पी एल 211 एवीडेन्स, 1994, दिल्ली, चि०फ०स० 211।
[229] जिमर, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 86 b , राम, अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 9B चि०फ०स०।
[230] मार्शल तथा फूशे 57

मध्य एक सादा कडा पहने हुए दर्शाया गया है। इनके दासियो के हाथ मे भी सादे तथा एक दो मनको वाले कडे अकित है।[231] इस प्रकार के आभूषण भरहुत के अलावा सॉची[232], अमरावती[233], कार्ले[234] तथा मथुरा[235] की शुग, सातवाहन तथा कुषाण कालीन मूर्तियो के साथ देखे जा सकते है। सॉची की कला से अभिज्ञात होता है कि पुरुष वर्ग मे भी इस प्रकार के अनेक आकार प्रकार के कडे प्रचलित थे। इसके विपरीत ग्रामीण समाज के चित्रण मे पुरुषो को हाथ के आभूषण पहने नही दर्शाया गया है। सम्भवत ग्रामीण, सैनिक एव निम्न वर्ग के लोग हाथ के आभूषण नही धारण करते थे।

बॉह के आभूषण का एक तीसरा प्रकार प्रचलित था। यह आभूषण बॉह के ऊपरी भाग कुहनी के ऊपर पहना जाता था जो बॉह से बिल्कुल चिपका रहता था इसे 'भुजबन्ध' कहा जा सकता है। भरहुत की कला से अभिज्ञात होता है कि स्त्रियॉ भुजबन्ध धारण करती थी। यहॉ सर्वाधिक प्रचलित प्रकार रत्न जटित सादी पट्टी वाला भुजबन्ध था।[236] किन्तु सॉची की कला के शिल्पगत साक्ष्यो मे स्त्रियो के सन्दर्भ में भुजबन्ध अप्राप्त है। सम्भवत इस युग मे स्त्रियो मे भुजबन्ध का प्रचलन समाप्त हो गया था अथवा अत्यन्त सीमित स्तर पर विद्यमान था। किन्तु यहॉ राजा द्वारा भुजबन्ध धारण किये हुए दर्शाया गया है।[237] इसमे दो धातु के बने छल्लो के मध्य मनके अथवा मोती जिसका आकार अण्डाकार प्रतीत होता है, बीच मे पिरोये गये है। अमरावती[238] तथा नागार्जुनकोण्डा[239] तथा गोली[240] की कला मे भुजबन्ध थोडे बहुत परिवर्तन के साथ प्रदर्शित किये गये है।

---

231 बरुआ, बी एम पूर्वोक्त चि०फ०स० 26, चि0 (बॉया) के, रे निहाररजन, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 30।
232 जिमर (भरहुत) चि०फ०स० 31 b,32, 32a, 32c, 34a, 35a इत्यादि।
233 वही (अमरावती) चि०फ०स० 86 a, 87, 90, 92, 95C
234 वही (कार्ले) चि०फ०स० 82, 83।
235 वैरेट चि०फ०स० 15, 17, 23,41
236 कनिघम, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 13 (वाया चित्र), 14 (दाया चित्र), 20 (दाया चित्र) बरुआ, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 39 चि०स० 34
237 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 16 b (दक्षिणी तोरण द्वार दृश्य)
238 बैरेट, (अमरावती स्कल्पचर्स इन द ब्रिटीश म्यूजिम), चि०फ०स० 7, 10, 19, 23, 45
239 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 41–a।
240 रामचन्द्रन (गोलीस्तूप) चि०फ०स० 4।

(6) कटि के आभूषण :

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित दृश्यो का सम्यक् अध्ययन तत्कालीन नागरिक समाज मे प्रचलित कोटि के आभूषणो के बहुआयामी स्वरूप का भव्य दिग्दर्शन कराते है। साहित्यिक ग्रथो मे इस प्रकार के आभूषण को कटिसूत्र, रसना, काची आदि नामो से उल्लेख किया गया है।[241] मेखला अथवा कटिसूत्र को प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित स्त्रियॉ अपने कटि प्रदेश पर धारण की हुई प्रदर्शित हैं। ऐसा लगता है कि स्त्री समुदाय मे मेखला अथवा कटिसूत्र पहनने की विशेष अभिरूचि थी। वे विविध प्रकार की चित्ताकर्षक मेखलाओ को अपने अन्तरीय के ऊपरी छोर पर इस प्रकार से पहनती थी कि आगे अथवा पीछे कच्छ बॉधने पर वह अन्तरीय के ऊपर एवं कच्छ के नीचे सुशोभित रहती थी।[242]

मेखला अथवा कटिसूत्र पहनने का उद्देश्य जहॉ एक ओर इनका प्रयोग अपनी शोभा बढाने के लिए किया जाता था वही दूसरी ओर इनका उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी जान पडता है। क्योकि यह अन्तरीय के गॉठ के ऊपर रहता था, जो अन्तरीय को ऊपर से सृदृढ और सुव्यवस्थित रखता था।[243] तत्कालीन नगर मे स्त्रियो द्वारा विभिन्न प्रकार की प्रचलित मेखलाये दृष्टिगोचर होती हैं।

इस प्रकार की मेखलाओ का अकन भरहुत[244] सॉची[245] अमरावती[246] तथा नागार्जुनकोण्डा[247] की कला मे 'मायादेवी के स्वप्न' का प्रदर्शन करते हुए माया देवी के कटि मे दर्शाया गया है। मेखला की कई लडियॉ प्राप्त होती है इनमें कतारो मे मनकें मोती अथवा मणि जडे हुए जान पडते है। ये मनके अथवा मोती कभी–कभी गोलाकार, आयताकार, अथवा वर्तुलाकार होते थे।[248]

---

241 कनिंधम, द स्तूप आव भरहुत पृ० 37।
242 कुमार स्वामी, ए०के०, एच०आई०आई०ए०, चि०फ० स० 5, चि०स० 17, मार्शल तथा फुशे, चि०फ०स० 31।
243 वरूआ, बी०एम०, भरहुत चि०स०– 7ए, 19, 24 1, 34।
244 दे०चि०फ०स०–4।
245 दे०चि०फ० स०–24।
246 दे०चि०फ० स० 28।
247 दे0 एलिजावेथ, रोजेन, स्टोन, द बुद्धिस्ट आर्ट आव नागार्जुनकोण्डा, (बुद्धिस्ट ट्रेडिसन सीरीज) स0 ऐलेक्स वेथनैन, दिल्ली, 1994, चि0फ0स0 83।
248 बरूआ, बी0एम0, 'भरहुत' चि0स0–34।

इन मेखालाओ की कई लडियाँ प्राप्त होती है। भरहुत की कला मे जहाँ अप्सराओं का नृत्य दर्शाया गया है, एक से लेकर छः लडियो वाले मेखला का अकन हुआ है।[249] भरहुत में 'मायादेवी के स्वप्न' वाले दृश्य मे माया देवी की चिपटे गोल मनको की छ· लडियो की मेखला तथा उसके दासियो की इसी प्रकार तीन, चार लडियो वाली मेखला पहने दर्शाया गया है।[250] सॉची[251] अमरावती[252] तथा नागार्जुनकोण्डा[253] की कला मे दो लडियों वाली मेखला का बहुतायात अकन प्राप्त होता है। अशोक की बोधगया यात्रा का दृश्याकन करते हुए यहाँ उनकी रानी को दो लडियो वाली मेखला के साथ दर्शाया गया है, तथा इनकी दासियाँ गोल चिपटे मनको की चौडी मेखला धारण की हुई प्रदर्शित है।[254] विश्वन्तर जातक प्रदर्शन मे भी रानी माद्री तथा उसकी दासियो को भी इसी प्रकार दो लडियो वाली मेखला को पहने हुए उत्टंकित किया गया है।[255] उल्लेखनीय है कि सुदूर जगलो तथा ग्रामों मे रहने वाली स्त्रियाँ मेखला नहीं पहनती थी।[256]

ऐसा लगता है कि इस प्रकार के मेखला धारण करने की परम्परा केवल स्त्रियो मे विद्यमान थी पुरुषो की इसमे कोई अभिरूचि न थी। इसके बजाय पुरुष अपने कटि मे कढाईदार अलकृत कटिबध धारण करता था, जो बहुमूल्य वस्त्र से निर्मित प्रतीत होता है।[257] इसे कमर के चतुर्दिक धोती के ऊपरी भाग पर लपेटकर बॉध दिया जाता था।[258] प्रायः लोग कटिबंध को कमर मे लपेट कर सामने नाभि के नीचे इस प्रकार बॉधते थे कि उसमें गॉठ बन जाती थी तथा उसके दोनो छोर जाघों के बीच लटकती रहती थी।[259] कभी–कभी कटिबंध के एक छोर को नाभि के

---

249 द०चि०फ०स०–13 (सबसे छोटी नर्तकी एक लडि की मेखला धारण की हुई, शेष नृत्य एव वाद्य से सम्बन्धित स्त्रियाँ चार से लेकर छ तक की लड़ियो वाली मेखलाए धारण की।)
250 दे०चि०फ०स०–4, जिमर, हेनरिक, द आर्ट आफ इण्डियन एशिया, भाग दो, चि0फ0स017d।
251 दे०चि०फ०स०–22 (कपिल वस्तु नगर की महलो मे खडी स्त्रियाँ)
252 राम, अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स०।
253 लौहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 32 a तथा 36 a,43a (मान्धाता जातक में)
254 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 18 b2।
255 वही, पूर्वेक्त, चि०फ०स०–22
256 फर्ग्युसन, जे०, ट्री एण्ड सर्पेन्ट वर्शिप, 1971, दिल्ली चि०फ०स० 35 2 मे अकित स्त्रियाँ मार्शल फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 52 a (उरविला गाव की स्त्रियाँ)।
257 बरूआ, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 55,56,57,58,59,60, कनिघम, पूर्वोक्त, चि0फ0स0 21, चि0 1–2, चि0फ0स022, चि0स01–2।
258 काला, एस0सी0भरहुत वेदिका, चि0स01,5 बरूआ, पूर्वोक्त चि0स018, 23,28,33,48,62,65,118,136।
259 वहीं, चि०स० 1–5, बरूआ, पूर्वोक्त, चि०स० 58, 60, 61, 62, 63, 64, 65।

नीचे बनी गाठ मे ही इस प्रकार फसा दिया जाता था कि वह गोलाकार अथवा छल्लेदार हो जाती थी तथा इसका छोर नीचे की ओर लहराता रहता था।[260]

पुरुषो की भॉति स्त्रियॉ भी अपनी शोभा तथा अपनी अन्तरीय को सुदृढ रखने के लिए एक पतले एवं छोटे पट को कमर के चतुर्दिक् अन्तरीय के उपरी छोर पर बॉधती थी।[261] प्राय कायबधन को इस प्रकार से बॉधा जाता था कि उनमे नाभि के नीचे गाठ बन जाती थी तथा उसके दोनो छोर दोनो जाघो के बीच लटकते रहते थे।[262] प्राय पटका लहरियादार होता था,[263] इन पटको मे मनको अथवा मोती पिरोये जाते थे।[264] कुछ स्त्रियॉ अत्यत अलकृत पटको को धारण करती थी।[265]

कुछ विद्वान इस कमरबध को आभूषण की श्रेणी मे नही रखते, किन्तु यह ठीक है कि इसमे कपडे का प्रयोग किया गया है, जो मुख्य रूप से अन्तरीय को उपर से दबाये रखता था। किन्तु इसको धारण करने का उद्देश्य सौन्दर्य मे वृद्धि भी था, कदाचित् इसीलिए इनमे मोती तथा मनको द्वारा अलकृत किया जाता था।

(7) पैर के आभूषण

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्यांकित नगर तथा नगर जीवन के साक्ष्य, व्यापक स्तर पर पैर के आभूषण को धारण किये जाने का सकेत करते है । ऐसा लगता है कि पैर के आभूषण को पहनने की विशेष अभिरूचि स्त्री वर्ग मे ही था, पुरुष वर्ग में इसका प्रचलन नही था। स्त्रियॉ इस आभूषण को अपने पैरो मे घुटनो के नीचे टखनों पर इसको धारण करती थी। इन पैर के आभूषणो को उनकी संरचना तथा बनावट के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) अनलकृत मोटा कडा।

(2) अनलंकृत पतला कडा।

---

[260] बरूआ, पूर्वोक्त, चि०स० 23, 30, 44।
[261] वही, चि० 19, 72, 73, 74 कुमार स्वामी, ए०के० हिस्ट्री आव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, चि०फ०स०–3 चि०स०–8
[262] बरूआ, पूर्वोक्त, चि० 72, 73, 74, 75, 76, 78।
[263] वही, चि०स० 73।
[264] वहीं, चि०स० 72।
[265] वहीं, चि०स० 74, 76, 78।

(3) कमानीदार चक्रीय घेरा।

प्रथम वर्ग के अन्तगर्त भारी अनलकृत मोटा नुपुर का उल्लेख किया जा सकता है। यह आभूषण मोटा खोखले धातु का बना हुआ प्रतीत होता है सम्भवत इनके बीच छोटी–छोटी गोलियॉ भर दी जाती थी जो चलने पर ध्वनि उत्पन्न करती थी। सामान्यतया इसे नृत्य के अवसर पर धारण किया जाता था। भरहुत की कला मे 'माया देवी के स्वप्न' का दृश्याकन करते हुए इस प्रकार के आभूषण को माया देवी द्वारा धारण किये हुये दर्शाया गया है।[266] कभी–कभी इस आभूषण को दो–दो की सख्या में प्रत्येक पैर मे धारण किया जाता था। जैसा कि 'जेतुन्तर नगर' द्वार के सामने खडी दो स्त्रियो के पैरो को देखा जा सकता है।[267] इसके समानान्तर उदाहरण अमरावती[268] तथा नागार्जुनकोण्डा[269] से भी प्राप्त होते हैं।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत पैर का आभूषण खोखला घुमावदार होता था इसमे छोटे–छोटे पत्थर भरे जाते थे जो चलते समय ध्वनि उत्पन्न करते थे। किन्तु सामान्यतया इस प्रकार के आभूषण नगरो की अपेक्षा गॉवो में धारण किया जाता था जैसा कि उरविला गॉव मे स्त्रियो द्वारा इस प्रकार के आभूषण को धारण किये हुए दर्शाया गया है।[270] कभी–कभी इनकी सख्या पॉच तक होती थी।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत आभूषण कमानीदार चक्रीय घेरा की तरह होता था। यह अत्यन्त लोकप्रिय प्रकार था, जिसे समाज और अपने स्तर के विपरीत इसे हर स्तर के लोग धारण करते थे। प्रारम्भिक बौद्ध कला के शिल्पगत साक्ष्य इस तथ्य के सबल एवं जीवन्त प्रमाण है। देखने पर यह घुमावदार चक्राकार कुण्डलीनुमा प्रतीत होता है, अथवा इसे धातु के अनेक छल्लों को एक दूसरे पर रखकर बनाया जाता था।[271] एक ही धातु के कमानीदार चक्रों वाले ऐसे कुछ आभूषणो का निचला शिरा

---

[266] दे०चि०फ० स०–4।
[267] दे०चि०फ० स०–20।
[268] सरकार, एच० तथा नायर, एस०पी, अमरावती ए०एस० आई०, नई दिल्ली 1972, चि०फ०स०64 (नीचे खडी स्त्री के पैर में) एलिजाबेथ, रोजेन स्टोन, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 162 (नृत्यकरती नर्तकी तथा वाद्ययन्त्र लेकर उसके बाये खड़ी स्त्री के पैर में) चि०फ०स० 161 (नृत्य करती नर्तकी तथा उसके दाहिने तरफ खड़ी स्त्रियो के पैर में)।
[269] एलिजाबेथ राजेन स्टोन, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 65।
[270] दे०चि०फ०स० 25।
[271] बरुआ, पूर्वोक्त चि०स० 17ए, 19, 23, 34, 39, 73, 74, 78।

मकर–मुख सदृश होता था।[272] ऐसे आभूषणो को डॉ० शिवराम मूर्ति ने 'मजीर' पादकटक माना है।[273] कभी–कभी ऐसे आभूषण सुन्दर आकृतियो से अलकृत कर दिये जाते थे।[274] कभी–कभी यह आभूषण कमानीदार चूडियो की तरह होता था जो पैर मे ऊपर तक पहना जाता था।[275] यह सर्वाधिक प्रचलित प्रकार था। इस प्रकार के आभूषण परियों द्वारा बुद्ध को प्रलोभन देने के दृश्यांकन, मे नीचे नृत्यरत परियो के पैर में दर्शाया गया है।[276] सॉची की कला मे भी के पैर के आभूषण मे अपनी पूर्वर्ती परम्परा का निर्वाह दिखाई देता है, इस प्रकार के आभूषण रानी माया के पैरो मे देखा जा सकता है।[277] अन्यत्र इसे उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पश्चिमी स्तम्भ पर उत्टकित कपिलवस्तु के स्त्रियो के पैर मे देखा जा सकता है।[278] इसके समान उदाहरण अमरावती[279] तथा नागार्जुनकोण्डा[280] से भी प्राप्त होते है।

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नागरको एवं नगर स्त्रियो द्वारा विभिन्न प्रकार के पैर के आभूषण धारण किये जाते थे, जहॉ तक इनके शिल्पकारी एव निर्माण में भिन्नता का सवाल है इनके क़ोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता किन्तु निश्चय ही इनमे प्रयुक्त धातु मे अन्तर रहा होगा।

(घ) केश विन्यास

सौन्दर्य के प्रति आकर्षण अत्यन्त प्राचीन काल से ही मनुष्य की मनोवृत्ति रही है, कदाचित, इसी मनोवृत्ति से प्रेरित प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टकित नागरक एव नगर स्त्रियॉ अपने बालों को विभिन्न प्रकार से प्रसाधित और सज्जित करती थीं। प्रारम्भिक बौद्ध कला के कला शिल्प तत्कालीन समाज मे प्रचलित विभिन्न प्रकार के आभूषणों के समान ही बहुविधि प्रकार के केश विन्यास की सुन्दर झॉकी प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि तत्कालीन कला कृतियो में पुरुष आकृतियों के सिर पर पगडी

---

[272] वही, पूर्वोक्त चि०स० 24 एफ, कनिघम पूर्वोक्त, चि०फ०स० 51 चि०स० 41।
[273] शिवराम मूर्ति सी० पूर्वोक्त, पृ० 114।
[274] कनिघम, ए० पूर्वोक्त, चि०फ०सं० 6।
[275] वही, चि०फ०स० 51 चि०स० 4।
[276] दे०चि०फ० स० 13 (नृत्य करती हुई अप्सराओ के पैर में)।
[277] दे०चि०फ०स०–24 (सबसे उपरी दृश्य माया का स्वप्न)।
[278] दे०चि०फ०स०–22 (महल के दूसरे तल पर खड़ी स्त्रियो के पैर में)।
[279] शिवराम मूर्ति, पूर्वोक्त, चि०फ०स०–8, चि०स०–19, चि०फ०स०–9, चि०स०–5।
[280] कृष्णमूर्ति के०, नागार्जुनकोण्डा, चि०फ०स० 5ए।

(उष्णीश) तथा स्त्रियो के शीश पर शिरोभूषण होने के कारण केश–विन्यास की प्रचलित अनेक शैलियो का ज्ञान नहीं हो पाता फिर भी इनके अनेक प्रकार से प्रसाधित करने की अभिरूचि दिखाई पडती है।

प्राय स्त्रियो के लम्बे केश हुआ करते थे जिसे वे सुन्दर ढग से सवारती थी, तथा गर्दन के पीछे उनको एक[281] अथवा दो[282] चोटियो मे गाछ देते थी। इस प्रकार के केश सवारने की विधि भरहुत स्तूप के प्रसेनजीत स्तम्भ पर अकित नृत्य एव सगीतरत अप्सराओ के दृश्य मे एक अप्सरा का बाल दो चोटियो मे गाछे हुए दृष्टिगोचर होते है।

पुरुष भी लम्बे बाल रखते थे, जो गर्दन के पीछे लटकता रहता था।[283] इस प्रकार के बाल रखने की प्रथा सामान्यतया मध्यवर्ग मे प्रचलित जान पडता है। अमरावती की कला में इस प्रकार के बाल रखने की प्रथा स्त्रियों मे सामान्य थीं, किन्तु सॉची की कला में इस प्रकार के बाल पुरुष भी रखते थे। कभी–कभी पुरुष अपने बाल को आगे से पीछे की तरफ करके ऊपर की तरफ मुडावदार और घुॅघराला कर लेते थे।[284]

केश विन्यास का एक अन्य प्रकार भी प्रचलित था जिसमे बाल को शीर्ष के उपर अण्डे के आकार का बनाया जाता था।[285] अमरावती की कला मे इस प्रकार के बाल संवारने की विधि दिखाई पडती है।[286] सॉची की कला मे कुछ पुरुष इस प्रकार के केश विन्यास के साथ प्रदर्शित है। किन्तु सामान्यतया इस प्रकार के केश विन्यास बच्चों मे दिखाई देता है।[287] नागार्जुनकोण्डा से भी इस प्रकार के केश विन्यास की विधि प्राप्त होती है।[288]

---

281 बरूआ, बी०एम०, पूर्वोक्त चि०स० 68, 73, 82।
282 दे०चि०फ०स०–13, बरूआ, बी०एम०, चि०फ०स० 39 चि०स० 34।
283 मार्शल तथा फुशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 93।
284 कृष्णमूर्ति के, सॉंची चि० 1 15।
285 कृष्णमूर्ति के० हेयर स्टाईल इन ऐशयण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1982 चि०स० 7 3।
286 बैरेट, डगलस, स्कल्पचर्स फ्राम अमरावती इन द ब्रिटीश म्युजियम, चि०फ०स० 35, वर्गेश, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 15 3, 16 1 कृष्ण मूर्ति, पूर्वोक्त, चि०स० 7 3।
287 मार्शल तथा फुशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 29.3।
288 शिवराममूर्ति, नागार्जुन कोण्डा, चि०फ०स० 9 चि०स० 1 लौगहर्स्ट, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 21बी, 45बी।

केश विन्यास की एक विधि मोर पंख के आकार का होता था, इस प्रकार के केश विन्यास को कालिदास ने अपने काव्य में 'वर्हभरकेश'[289] के नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार का केश विन्यास पुरुषो की अपेक्षा औरतो मे ज्यादा लोकप्रिय था। यह सॉची[290] तथा अमरावती[291] की कला मे प्रचुरता से प्राप्त होता है किन्तु नागार्जुनकोण्डा मे इस प्रकार का केश विन्यास सामान्य न था। इस प्रकार के केश विन्यास का सबसे अच्छा उदाहरण राजघाट से प्राप्त मृण्डमूर्तियों मे प्राप्त होता है।[292]

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो में केश विन्यास की अभिरूचि अधिक थी अस्तु स्त्रियॉ अपने केशों को विभिन्न प्रकार से सवारती एव विभिन्न आकार के जुडे और वेणियॉ बनाती थी। भरहुत मे अंकित स्त्री प्रतिमाओ की वेणि को मुक्ताओ, मालाओ अथवा कभी–कभी फूलों के गजरा से ग्रंथित दिखाया गया है। सॉची मे भी फूलों के गजरा से बाल को ग्रंथित दिखाया गया है।[293] कभी–कभी बाल को पीछे की तरफ कंघा करके खुला छोड दिया जाता था।[294] अथवा बाल को दो भागों में विभाजित करके एक से अधिक वेणियॉ बनाई जाती थीं। कुछ स्त्रियॉ बाल को शीर्ष पर एकत्र करके उन्हें गॉठदार बना देती थी।[295]

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्य नागरको एवं नगर स्त्रियों के विभिन्न प्रकार के केश सज्जा के उदाहरण प्रस्तुत करते है जिससे तत्कालीन नागरिक समाज में प्रचलित केश विन्यास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। कहना न होगा कि केश विन्यास के ये विभिन्न रूप आज भी देश के विभिन्न अंचलों में देखे जा सकते है।

---

[289] कालिदास, मेघदूत 2, 47।
[290] मार्शल तथा फुशे, पूर्वोक्त, चि०स० 48।
[291] शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्चर, पृ० 106।
[292] अग्रवाल, बी०एस०, राजघाट टेराकोटाज, चि०फ०स० 1, चि०स० 11 64।
[293] कृष्णमूर्ति के० मैटिरीयल कल्चर आव सॉची, चि०फ० 3.9।
[294] कृष्णमूर्ति के० हेयर स्टाइल इन ऐशेन्ट इण्डियन आर्ट, चि०स० 10 4।
[295] बरुआ, पूर्वोक्त, चि०स० 23।

(ङ) मनोरंजन एवं आमोद–प्रमोद

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टंकित नगरो के साक्ष्य तत्युगीन समाज के बहुआयामी स्वरूप का भव्य दिग्दर्शन कराते है। इनमे दृश्याकित मनोरजन के विविध प्रकारो से तत्कालीन समाज की जीवन्तता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है इनमे जल क्रीडा, उद्यानक्रीडा, द्यूत–क्रीडा, नृत्य एव सगीत तथा विविध वाद्ययन्त्रो का उल्लेख किया जा सकता है, जिनका प्रयोग नागरक अपने मनोरजन के लिए करते थे।

जल–क्रीड़ा

नगरों मे सरोवर का निर्माण गगा–घाटी के नगर मापन का एक अभिन्न अग था। प्राचीन भारतीय साहित्य एव अभिलेखो में सरोवर के निमित्त वापी, पुष्करणी, सर तटाक, आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। नागरिकों के मनोविनोद के लिए नगरो मे जलाशय बने होते थे, जिसमे नागरिक जल–क्रीडा करते थे।[296] जल क्रीडा का ही एक अंग पद्मतडाग क्रीडा भी हुआ करता था।

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे भी नागरिकों को पद्मतडाग क्रीडा का आनन्द लेते हुए दर्शाया गया है। ऐसा लगता है कि पद्मतडाग राजा एवं रानियों में विशेष लोकप्रिय था। साची की कला मे एक जगह नागरको को पद्मतडाग का आनन्द लेते हुए प्रदर्शित किया गया है। यहाँ राजा को हाथी के गर्दन पर बैठे पैर फैलाए एक सरोवर में जाते हुए दर्शाया गया है। हाथी पर राजा के पीछे उसकी रानी बैठी हुई है। सरोवर मे कमल तथा अन्य पुष्प खिले हुए है, बगल मे एक प्रसाद का अंकन है। प्रसाद के आलिन्द से दो नगर स्त्रियो को जल क्रीडा का अवलोकन करते हुए दर्शाया गया है।[297] ठीक इसी प्रकार पद्मतडाग का आनन्द लेते हुए दृश्य का अंकन उत्तरी तोरण द्वार पर हुआ है।[298]

---

[296] राय, उदयनारायण, 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, पृ० 340।
[297] मार्शल तथ फुशे, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 12.2।
[298] वहीं, चि०फ०स० 101 3।

इसी प्रकार जल क्रीडा का अकन उत्तरी तोरण द्वार के मुख्य भाग के पूर्वी स्तम्भ पर नीचे से क्रमानुसार दूसरे दृश्याक मे देखा जा सकता है, यहॉ तालाब उत्टकित है इसमे कमल तथा अन्य जल पुष्प खिले हुए है। तालाब में हाथियो पर सवार होकर नागरक तथा नगर स्त्रियॉ पद्मतडाग का आनन्द लेते हुए प्रदर्शित है। इसमे बॉयीं तरफ अकित हाथी पर एक सवार है, जो अपने दाहिने हाथ से किसी स्त्री को हाथी पर चढने के लिए उसका हाथ पकड कर सहारा देते हुए उत्टकित किया गया है सामने दूसरी हाथी है जिस पर तीन सवार अकित है। सबसे आगे नागरक है उसके पीछे दो स्त्रियो को हाथी पर बैठे हुए दर्शाया गया है। तालाब के किनारे दो मिथुन जोडा इस क्रीडा का आनन्द लेते हुए उत्टकित है। सम्भवत यह जोडा अपनी बारी का इन्तजार कर रहा है।[299] अमरावती की कला मे भी जलक्रीडा का आनन्द लेते हुए नागरिकों को दर्शाया गया है। अमरावती स्टेला जिस पर बुद्ध द्वारा किये गये निरजना नदी पर चमत्कार का दृश्य अकित है[300], इसमें नदी का अकन प्राप्त होता है, नदी के जल के उपर स्वयं बुद्ध को न दर्शाकर उनके चरण को दर्शाया गया है। नदी के तरंगों का अंकन तथा आश्चर्य चकित नागरकों का अकन हुआ है। इसके अतिरिक्त नागरक स्नान, तैरना एव नाव खेना आदि द्वारा अपना मनोविनोद करते थे।[301]

नागार्जुनकोण्डा की कला में भी जल क्रीडा का दृश्य प्राप्त होता है। जहॉ सिद्धार्थ को आनन्ददायक बागीचे मे दिखाया गया है, यहॉ राजकुमार को पथरीली जमीन पर बैठे हुए दर्शाया गया है, इनके सामने एक तालाब दिखाई दे रहा है, जिसमे एक लडकी को तैरते हुए दर्शाया गया है यह एक बत्तख के साथ क्रीडा कर रही है। एक दूसरी लडकी जो तालाब के पानी मे खडी है अपने कलाईयों को उपर उठाए है, एक फूलो का गुलदस्ता राजकुमार की ओर फेक रही है। तालाब के दाहिने किनारे पर एक युगल जल क्रीडा का आनन्द लेते हुए उत्टंकित है।[302]

---

[299] दे०चि०फ०स०–21 मार्शल तथा फूशे चि०फ०स० 34 बी।
[300] राय अनामिका, पूर्वोक्त, चि०फ०स० 106–107।
[301] मैसी, एफ०सी०, सॉची एण्ड इट्स रिमेस, चि०फ०स० 21, चि०स० 2।
[302] लागहर्स्ट, ए० मेम्वायर्स ऑव आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया सख्या 54, 1938 चि०फ०स० 36ए।

उद्यान–क्रीड़ा

दैनिक जीवन के आपाधापी से मुक्त हो, शारीरिक एव मानसिक स्फूर्ति एव शक्ति प्राप्त करने हेतु, बुद्ध युगीन समाज के लोग प्रकृति के सुरम्य वातावरण के आश्रय मे जाते थे। प्राय नागरिको के मनोविनोद के लिए नगरो में उद्यान लगाये जाते थे। उद्यान क्रीडा, जो नगर वाटिकाओं में नागरको एव नगर स्त्रियों के मनोरजन का एक प्रिय साधन हुआ करता था। भारतीय साहित्य एवं कला मे उद्यान क्रीडा के विभिन्न प्रकार एव स्वरूप सन्दर्भित है। पालि साहित्य मे राजाओ तथा राजकुमारों, श्रेष्ठि पुत्र एवं पुत्रियों के बडे वैभव के साथ उद्यान मे मनोविनोद करने हेतु जाने का प्रसग सन्दर्भित है।[303] मृच्छकटिक मे शीतलता तथा सौन्दर्य के कारण नन्दनवन का स्मरण दिलाने वाले नगर उद्यान का उल्लेख मिलता है। उद्यान क्रीडा के सम्बन्ध मे मातंग जातक मे कहा गया है कि वाराणसी के श्रेष्ठी की पुत्री अपने सखियो के साथ दो–दो महीने तक उद्यान क्रीड़ा किया करती थी।[304] ललितविस्तार के अनुसार कपिलवस्तु के चतुर्दिक अनेक उद्यान गौतमबुद्ध के मनोविनोद के निमित्त लगाये गये थे।[305]

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक अवशेष उद्यान क्रीडा के सम्बन्ध में समुचित साक्ष्य संप्रेषित करते हैं। सॉची की कला मे एक राजा को उद्यान में कुर्सी पर बैठे हुए दर्शाया गया है, एक स्त्री छाता फैलाए हुए राजा के पास खडी है। राजा के ठीक सामने उसकी रानी दाहिने हाथ मे एक प्याला तथा बायें हाथ से अपने गले का हार पकडे हुए दर्शायी गयी हैं। उद्यान के बगल में राज प्रसाद का अंकन है, राज प्रसाद के दो तल स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं जिनके आलिन्द से तीन–तीन स्त्रियॉ खडी होकर उद्यान क्रीडा को देख रही हैं। उद्यान में विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगे हुए है।[306]

---

303 चुल्लबोधि जातक, स० 443।
304 मृच्छकटिक, अक 4।
305 ललित विस्तार, 775।
306 मार्शल, जे० तथा फूशे, ए० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 632।

अमरावती की कला में भी उद्यान के अकन का दृष्टान्त उपलब्ध है। माया द्वारा स्वप्न की व्याख्या तो राज महल मे सम्पन्न हुई थी, किन्तु रानी माया को आम्र वन मे खडी दिखाया गया है। यहाँ आम्र उद्यान का अकन प्राप्त होता है।

शालभंजिका

उद्यान क्रीडा का ही एक अग शालभजिका उत्सव, पुष्पचयन एव अशोक दोहद भी था। यह उत्सव विशेष प्रकार से मनाया जाता था, इसमे नागरिक शाल वृक्षो के नीचे खडे होकर पुष्पो को चुनते थे, तथा एक दूसरे पर फेकते तथा क्रीडा एवं मनोविनोद करते थे। अवदानशतक मे कहा गया है कि श्रावस्ती के नागरिक शालभंजिका उत्सव बडे समारोह के साथ मनाते थे। इसमे वर्णन मिलता है कि एक बार जब गौतम बुद्ध श्रावस्ती नगर के जेतवन में ठहरे हुए थे उस समय श्रावस्ती में शालभंजिका उत्सव मनाया जा रहा था। कई हजार व्यक्ति इस उत्सव मे भाग लेने के लिए एकत्र हुए और पुष्पित शालवृक्षों को चुनकर एक दूसरे के साथ क्रीडा एव विनोद करते हुए इधर–उधर मन बहलाने लगे।[307]

निदान कथा मे भी शालभजिका उत्सव का मनोरम् विवरण प्राप्त होता है। इसमे कहा गया है कि 'उन दो नगरो (कपिल वस्तु और देवहद) के बीच लुम्बिनी नामक शालवन था, जो पुष्पित शालवृक्षों एव उन पर मडराती पंचरगी तितलियों के कारण अत्यन्त मनोरम् हो गया था। उसे देखकर माया देवी के मन मे शालवन मे क्रीडा करने की कामना उत्पन्न हुई। आमात्य, देवी के साथ शाल वन आयें। रानी मांगलिक शाल के नीचे जाकर उसकी शाखा को पकडने की इच्छा की, शाल वृक्ष की शाखाएं झुककर देवी के हाथ के पहुँच के भीतर आ गयी, उसने हाथ बढाकर शाखा को पकड लिया।[308]

प्रारम्भिक बौद्ध कला में भी, पुष्प चयन शालभंजिका एवं अशोक दोहद के उदाहरण प्राप्त होते है जो तत्कालीन नागरको एवं नगर स्त्रियों के मनोरजन के

---

[307] अग्रवाल, वी०एस०, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृ० 163।
[308] वहीं, पूर्वोक्त, पृ० 163–64।

साधन थे। भरहुत स्तूप के पुरावशेषो मे अनेक युवतियों को कदंब वृक्ष[309] एवं अन्य वृक्षो[310] से पुष्पचयन करते हुए दर्शाया गया है। सॉची की कला में भी एक स्तम्भ पर एक स्त्री पाटल वृक्ष से पुष्प तोडती हुई दर्शायी गई है।[311]

जहॉ तक शालभजिका का सम्बन्ध है इसका अकन सॉची की कला में उत्तरी तोरण द्वार के पूर्वी स्तम्भ के ऊपरी भाग के पार्श्व पर शालवृक्ष के नीचे हुआ है।[312] ठीक इसी प्रकार उत्तरी तोरण के ही पश्चिमी स्तम्भ के उपरी पार्श्व पर शालभजिका का अंकन हुआ है।[313] एक अन्य उदाहरण मे शालभजिका का अंकन हुआ है यहॉ शाल का वृक्ष द्रष्टव्य है, एक स्त्री अपने दोनों हाथ से शाल वृक्ष की डालियो को पकडे हुए दर्शायी गयी है।[314]

अमरावती की कला मे भी शालभजिका का उदाहरण प्राप्त होता है यहॉ चैत्य प्रकार की खिडकी के अन्दर शालभंजिका को अंकित किया गया है। यहॉ एक स्त्री शालवृक्ष की शाखा को अपने दाहिने हाथ के पहॅुच तक उठाए हुई है और उसका बॉया हाथ स्वयं को आलिंगन करते हुए दर्शाया गया है। वृक्ष की शाखा पतली है, स्त्री उसकी छाया के नीचे खडी है।[315] इसी प्रकार एक दूसरी शालभजिका का उदाहरण अमरावती की कला मे प्राप्त होता है यहॉ चैत्य प्रकार की खिडकी के मध्य स्त्री खडी है जो अपने बॉये हाथ से शाल वृक्ष की शाखा को पकडे हुए है, तथा इसका दाहिना हाथ उसके गले के हार को पकडे हुए दर्शाया गया है।[316] अमरावती की कला मे एक स्थल पर श्रावस्ती के नागरिको द्वारा शालभजिका पर्व को बडे समारोह के साथ मनाते हुए उत्कीर्ण किया गया है। इस दृश्याकन मे गौतम बुद्ध श्रावस्ती के नागरिकों के बीच घिरे हुए देखे जा सकते हैं।[317]

---

309 बरुआ, बी०एस०, चि०स०–29।
310 वहीं, चि०स० –73।
311 मार्शल, जे० तथा फूशे, ए० पूर्वोक्त, चि०फ०स० 74ए।
312 राय, उदय नरायण, शालभजिका इन द आर्ट, फिलासफी एण्ड लिटरेचर, 1979 (प्रथम सस्करण) लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद चि०स०–11–13।
313 वही, चि0स0–14।
314 दे0चि0फ0स0–16।
315 राय, उदय नरायण, शालभजिका, चि0स0–22।
316 वही, चि0स022।
317 कुमार स्वामी, ए0के0, इस्टर्न आर्ट, भाग–एक, चि0फ0स012, चि0स0–61।

दोहद

'दोहद' स्त्री एव वृक्ष–अभिप्राय का एक लोकप्रिय प्रकार था। दोहद क्रीडा विशेष रूप से स्त्रियो का मनोरजन था। साहित्यक ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि इस क्रीडा मे सुदरियॉ वृक्षो के पास जाती थी और उनका आलिगन करके अथवा उस पदाघात करके या उन पर उपने सुकोमल मुख से मधुकी कुल्या करके या उनके नीचे नृत्य करके उन्हे पुष्पित होने का आह्वान करती थी।[318] प्रारम्भिक बौद्ध कला मे इनका बहुतायत अकन, इनके तत्कालीन लोकप्रियता का प्रमाण है।

भरहुत का कला मे रमणियो द्वारा अशोक वृक्ष के आलिंगन करने के दृश्य अकित है।[319] प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनेंक स्थलों पर शालभजिका तथा दोहद का सयुक्त रूपांकन प्राप्त होता है। भरहुत की कला मे यक्षिणी (सुदर्शना यक्षी) हाथी के पीठ पर अपने दाहिने पैर तथा उसके मस्तक पर बाये पैर को टिकाए खडी है। वह अशोक वृक्ष की शाखा अपने दाहिने हाथ से पकडे हुए है तथा वायें हाथ एवं पैर से उसके फूल को अलिंगित किये हुए प्रदर्शित है। दृश्यांकन अशोक–तरू का उर्ध्वभाग पुष्प गुच्छों से लदी शाखाओ से युक्त हैं। यह उच्चित्रण शालभजिका एव अशोक दोनो का प्रतिनिधित्व करता है।[320]

इस कला केन्द्र के वेदिका स्तम्भों पर प्रदर्शित संयुक्त मूर्तन (शालभंजिका–दोहद प्रतीक) की विधि में सुन्दरी का दाहिना पैर साज–सज्जा से अलकृत अश्व की पीठ पर तथा वाया पैर उसके मस्तक पर न्यस्त है। बॉए हाथ एवं पैर से अशोक के मूल को वह आलिगित किए हुए प्रदर्शित है। उसका दाहिना हाथ वृक्ष की शाखा को पकड़े हुए रूपायित है।[321] इसी प्रकार शालभजिका दोहद का सयुक्त अकन भरहुत के अन्य उदाहरणों में देखा जा सकता है।[322]

सॉची की कला में इस सयुक्त अभिप्राय का अकन का उल्लेखनीय दृष्टात पूर्वी तोरण द्वार के दक्षिण की निम्नतम बड़ेरी के कोष्ठक में उच्चित्रित है। इसमे

[318] काव्य प्रकाश, 9 265।
[319] बरूआ, बी0एम0, भरहुत, चि0स0–73,75,76।
[320] राय, उदय नरायण, भारतीय लोक परम्परा मे दोहद, 1997 (प्रथम सस्करण) तत्वार्थ प्रकाशन इलाहाबाद।
[321] राय उदयनरायन, पूर्वोक्त, चि0स0–5।
[322] वही, चि0स0 7, 8।

यक्षिणी आम्र–वृक्ष के नीचे खडी उसकी एक शाखा को बॉए हाथ से पकडी हुई है। दाहिने हाथ से उसके तने को आलिगित तथा बाये पैर से उसके मूल को स्पर्श करती रूपायित है। इस दृश्यांकन मे वृक्ष के उर्ध्व भाग मे पल्व गुच्छक एव आम्र गुच्छक सपूर्ण परिवेश को प्रभावित करते है।[323] इसी प्रकार पूर्वी तोरण द्वार के दाहिने स्तम्भ के ऊपर पार्श्व मे शालभजिका दोहद का अकन हुआ है। यहॉ युवती का बॉया हाथ वृक्ष को पकडे हुए है तथा दाहिने हाथ से कमर के समानान्तर वृक्ष को पकडे हुए दर्शाया गया है। इसका बायॉ पैर पीछे मुडकर वृक्ष की मूल पर है।[324]

द्यूत क्रीड़ा

प्राचीन भारत मे पासा फेकने का खेल असामान्य नही था अनेक प्राचीन साहित्यिक रचनाओ में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। द्यूतक्रीडा नागरिकों के मनोरजन का एक लोकप्रिय साधन था। ऋग्वेद के अन्त साक्ष्यो से स्पष्ट है कि यह खेल अत्यन्त प्राचीन काल से ही उपना शिकन्जा फैला रहा था। लेकिन इस खेल के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बहुत अच्छा प्रतीत नही होता। आर्यों के लिए यह इतना विनाशकारी सिद्ध हुआ कि 'कवश एलुश' नामक ऋषि को इसके वहिष्कार के लिए दृढता से आवाज उठानी पडी थी। इस प्राचीन ऋषि के उपदेशो की प्रबलता चौदह पदों वाले उन उत्कृष्ट मन्त्रो से व्यक्त होती है, उन्होने इस विवादास्पद मनोरजक खेल के खोखलेपन व उससे उत्पन्न होने वाले वास्तविक सकट का वर्णन किया है।[325]

किन्तु मृच्छकटिक में एक द्यूत खेलने वाला द्यूत की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हुआ कहता है कि जुआ खेलना मानो सिहासन रहित राज्य प्राप्त करना है।[326] अर्थशास्त्र मे ही द्यूतक्रीडा का बहुशः उल्लेख प्राप्त होता है, इसका नियत्रण राज्य द्वारा होता था।[327]

---

[323] वही, चि0स0 12।
[324] मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स048।
[325] ऋग्वेद, 10 34।
[326] "द्यूत हि नाम पुरूषस्य अहिसासनम् राज्यम्'।
—मच्छकटिक अक–2
[327] अर्थशास्त्र–3 20।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्यो मे द्यूतक्रीडा से सम्बन्धित साक्ष्य मौजूद है जो इस खेल के लोकप्रियता का प्रमाण है, जिससे लोग अपना मनोरजन करते थे। भरहुत की कला मे ललितजातक का चित्राकन करते हुए द्यूतफलक के 36 वर्ग को दर्शाया गया है।[328] सभवत द्यूतफलक शिला की सतह को खोदकर बनाया गया था। दृश्याकन मे द्यूतफलक के छ· वर्गाकार पासे दिखायी पडते है। बगल में एक छोटा बाक्स का अंकन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि खेलने के उपरान्त पासो को इस बाक्स मे रख दिया जाता होगा। इस दृश्य मे एक व्यक्ति पीछे ओट मे छिपा हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। जबकि दो लोग आमने सामने बैठकर द्यूतक्रीडा कर रहे है। बीच मे द्यूतफलक अंकित है।[329]

इसी सदृश द्यूतक्रीडा एव द्यूतफलक का अकन बौद्धगया की कला मे भी प्राप्त होता है यहॉ द्यूतफलक के 64 खाने (वर्ग) बने हुए है, जिनमे आठ वर्ग स्पष्टतः दिखाई पडते है।[330] इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला में इन द्यूतफलको तथा पासो का अकन द्यूतक्रीडा के लोकप्रियता के सक्षम साक्षी है, जिसके द्वारा नागरिक अपना मनोरजन करते थे।

नृत्य एवं संगीत

नृत्य एवं संगीत अत्यन्त प्राचीन काल से ही नागरिकों के आमोद प्रमोद का प्रमुख साधन रहा है। नृत्य एवं वाद्ययन्त्रों के संयोजन को संगीत कहा गया है।[331] प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्यों मे नृत्य एव वाद्ययन्त्रों के सामन्जस्य के साथ नागरक अपना मनोरंजन करते हुए प्रदर्शित है।

समग्र रूप से देखे तो नृत्य–सगीत का सम्बन्ध मात्र मनोरंजन तक ही सीमित नही था जैसा कि सुस्मिता पाण्डेय ने अपने शोधपत्र–'भारतीय संस्कृति मे संगीत–नृत्य परम्परा' में उल्लेख किया है कि "यदि उचित प्रकार से संगीत की उत्पत्ति हो तो वह केवल मनोरंजन मात्र ही नही होगा, परन्तु ध्यान तथा अर्चना भी

---

[328] बरूआ, बी0एम0, भरहुत, चि0स 096।
[329] कनिघम, पूर्वोक्त, चि0फ0स045 चि0स09।
[330] बरूआ, बी0एम0 बौद्धगया चि0स0 66B।

होगी[332]। नृत्य व सगीत के द्वारा देवता प्रसन्न होते है और वे सुख समृद्धि और वैभव को देने वाले हैं। हिन्दू वाङमय की नृत्य व संगीत के महत्व सम्बन्धी यह बहुप्रतिष्ठित मान्यता ही बौद्ध परिवेश मे मुखरित हुई है। नृत्य से केवल 'नटेश्वर' अथवा 'नन्दनन्दन' ही नही, बुद्ध भी प्रसन्न होते है। यही मूलभूत अवधारणा भरहुत और सॉची में भी रेखांकित की गयी प्रतीत होती है। यही कारण है कि बुद्ध की 'अवक्रान्ति' का प्रसग हो, अथवा महाभिनिष्क्रम का, 'संबोधि–प्राप्ति' का हो, अथवा उनके परिनिर्वाण के पश्चात् उनकी शरीर धातु की प्राप्ति के उपलक्ष मे आनन्दोत्सव का, अथवा स्तूप की वन्दना का सन्दर्भ; सभी मे प्रमुदित और उल्लसित देव नाम, अप्सरा, गन्धर्व, नर–नारी, बाल–अबला, भारतवासी और विदेशी अपनी असीम प्रसन्नता, अनन्य श्रद्धा व भक्ति का ज्ञापन नृत्य व सगीत से करते हुए प्रदर्शित किये गये है।[333]

भरहुत की कला मे नृत्य का दृश्य दृश्याकित है जहॉ वैजयन्त प्रासाद का अकन है, इसके नीचे नृत्य संगीत गोष्ठी का आयोजन भगवान बुद्ध के 'चूडा' की प्राप्ति की स्मृति में इन्द्र और अन्य देवो की श्रद्धा व आनन्दाभिब्यक्ति का प्रकटीकरण है। चित्र में बॉयी तरफ चार नर्तकियॉ नृत्य करते हुए दर्शाई गई हैं। दॉयी तरफ चार कलाकार वृन्दावादन मे, एक कलाकार ताल देते हुए, तथा दो अप्सराएं गायनरत है।[334]

भरहुत में ही अन्यत्र जहॉ सट्टक नामक उपरूपक की प्रस्तुति हुई है यहॉ नर्तक एवं वृन्दावन का दृश्य अकित है।[335] इस प्रस्तुति मे बारह अप्सराएं अकित है इसमें चार अप्सराए नृत्य करती हुई दर्शायी गयी है। विद्वानों मे इस दृश्य की पहचान मे पर्याप्त वैमत्स है। कनिंघम ने इसकी पहचान मार की कन्याओ द्वारा तपस्यारत बुद्ध का तप भंग करने का दृश्य बताया है। इसके बिपरीत बरूआ ने इस दृश्य की पहचान बुद्ध के जन्म की भविष्यवाणी (अर्थात् बोधिसत्व द्वारा माँ के गर्भ से

---

331 दे0 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र (मुख्य सम्पादक)–भारतीय कला और सस्कृति, प्रथम सस्करण 1995 इलाहाबाद सग्रहालय इलाहाबाद, (शोधपत्र, सुस्मिता पाण्डेय, भारतीय संस्कृति मे सगीत नृत्य परम्परा) पृ0–88।
332 वही, पृ0–82।
333 मलैया, सुधा, चाक्षुस यज्ञ–प्राचीन भारतीय कला में नृत्य एव सगीत, 1997 बसुधा प्रकाशन भोपाल, पृ0–211।
334 दे0चि0फ0स0–6।
335 दे0चि0फ0स0–13।

उत्पन्न होने की सहमति) के आनन्दोपलक्ष्य मे आयोजित संगीत नृत्य दृश्य से की है।

दायी तरफ नीचे वाद्य मण्डली दृश्याकित है, जहॉ मृदग जिसका केवल उर्ध्वक अकित ही दृष्टव्य है। पणव जिसका सिर्फ अग्रभाग ही दिखाई दे रहा है, जिसे दो कलाकार बजा रहे हैं। दृश्याकन में 'विपंचीवीणा' का भी अकन हुआ है, जिसे दो महिला कलाकार बजाती हुई दिखाई गई है। शेष हाथो से ताल देते हुए उत्टकित है। ठीक इसी मुद्रा मे नृत्य का दृश्यांकन अमरावती की कला में भी हुआ है।[336]

पुन बुद्ध के धातु अवशेष की प्राप्ति के आनन्द मे नर्तन एवं बृदवादन को दृश्यांकित किया गया है। यहॉ गज मस्तकों पर अवस्थित बुद्ध के शरीर–धातु से युक्त स्वर्ण मजूषाएं ले जाया जा रहा है जूलूश के आगे हो रहा बृन्द गान एवं नृत्य का प्रदर्शन इन्हीं महत्वपूर्ण शरीरावशेषो की प्राप्ति के उपलक्ष मे है। इस आधार पर यहॉ यह कहा जा सकता है कि यह दृश्य किसी देव सभा का न होकर राज सभा का है। यह राजसभा बुद्ध के शरीर धातु को प्राप्त करने वाले उन आठ नरेशों में से किसी का होगा।[337]

यहॉ दो नर्तकियॉ नृत्य कर रही है । छ· सदस्यीय वाद्य मण्डली का अकन किया गया है। जिनमे मृदग, वीणा तथा ताली बजाती हुई महिला कलाकार दृश्यांकित है।

विविध वाद्य यन्त्र

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक अवशेषों के अवलोकन से तत्कालीन समाज में प्रचलित विविध प्रकार के वाद्ययन्त्रों के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, जो एकल वाद्य अथवा नृत्य की संगीत या गीत एव संगीत की पार्टियों में वाद्य के रूप में प्रयोग किये जाते थे।

---

[336] मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, चि0स0 6 27, पृ0–227।
[337] वही, पूर्वोक्त,चि0स06 29, पृ0–288।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे चार प्रकार के वाद्य–तत्र, अवनद्ध, घन तथा सुषिर का वर्णन है। तन्त्र वाद्य मे तारो द्वारा स्वर की उत्पत्ति होती है जैसे वीणा, सितार, सरोद। अवनद्ध मे चमडे से मढे हुए ताल वाद्य आते है जैसे मृदग, ढोलक आदि। 'घन' वे है जिनमे चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होता है, जैसे जलतरग, मजीरा, झॉझ, करताल। सुषिर वाद्य फूक से बजाये जाते थे, जैसे वॉसुरी, शहनाई आदि।[338] प्रारम्भिक बौद्ध कला के पुरावशेषो मे इन चारो प्रकार के वाद्य का प्रयोग हुआ है। इन प्रदर्शनों से इन यन्त्रो की लोकप्रियता का पता चलता है।

प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टंकित तन्त्र वाद्यो मे वीणा का उल्लेख किया जा सकता है इनमे दो प्रकार के वीणा का प्रदर्शन हुआ है। भरहुत की कला मे जहॉ सट्टक नामक उपरूपक का अंकन हुआ है, यहॉ चित्र वीणा का अकन हुआ है इसे दो महिला कलाकार बजाती हुई दर्शायी गई है। यह एक धनुषाकार वीणा है जिसमें कई ताल लगे हुए है।[339] भरहुत की कला मे अन्यत्र वीणा का अंकन जहॉ बुद्ध के धातु अवशेष की प्राप्ति के आनन्द मे नर्तन एव बृदगायन का दृश्य उत्टकित किया गया है यहॉ वीणा बजाती हुई महिला कलाकार दृश्यांकित है।[340]

सॉची की कला में छः देवलोकों का अकन करते हुए वीणा को एक महिला कलाकार द्वारा बजाते हुए दर्शाया गया है।[341] यह सप्ततन्त्री वीणा है जो धनुष के आकार का है। इस प्रकार के वीणा के अन्य उदाहरण इन्द्र के भ्रमण दृश्य[342] तथा मार सेना[343] के साथ देखा जा सकता है। नागार्जुनकोण्डा की कला में भी इस प्रकार के वीणा का उदाहरण प्राप्त होता है।

सॉची की कला में बुद्ध की सम्बोधि प्राप्ति के उपलक्ष्य में मुच्छिलिन्द नागराज तथा उसके परिवार व प्रजा द्वारा मनाये जा रहे आनन्दोत्सव का अंकन किया गया

338 दे0 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, (मु0स0) भारतीय कला और सस्कृति, शोधपत्र–सुस्मिता पाण्डेय, भारतीय सस्कृति मे सगीत–नृत्य परम्परा, पृ0–88।
339 दे0चि0फ0स0–13।
340 मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, चि0स0 6 29 पृ0–288।
341 मार्शल, जे0तथा फूशे, ए0 पूर्वोक्त चि0फ0स0–36C1।
342 वही, चि0फ0स0 35b1।
343 वही, चि0फ0स0–29 2।

है।[344] यहॉ छः सदस्यो की नृत्यमण्डली को दृश्याकित किया गया है वाद्य यन्त्रो मे मृदंग, वीणा तथा वासुरी का अकन प्राप्त होता है।

सॉची के स्तूप सख्या एक के 'सुधम्मा सभा' मे चूडा—महोत्सव' का अकन किया गया है, यहॉ नृत्य एव वृदवादन का आयोजन किया गया है। यहॉ एकाकी नृत्य का प्रदर्शन करती हुई अप्सराए शास्त्रीय नृत्य प्रस्तुति के अधिक निकट है।[345] वाद्ययन्त्रो मे मृदंग एवं 'पणव' इत्यादि का अकन हुआ है।

अमरावती की कला मे भी जहॉ मायादेवी के स्वप्न का अकन किया गया है, यहॉ एक ही प्रस्तर के तीन विभिन्न सीमा में पूरे दृश्य का अकन किया गया है। क्रमानुसार दूसरे दृश्य[346] मे नृत्य एव बृदगायन का अंकन हुआ है। ऊपर रथ पर हाथी बैठा है, यानी वह स्वर्ग से ससार की ओर जा रहा है। इसी के आनन्दोत्सव मे यहॉ नृत्य प्रदर्शित है। वाद्य यन्त्रों में वीणा तथा वासुरी तथा अन्य वाद्य यन्त्रो का अंकन हुआ है। सारा वातावरण उल्लास मय है।

अन्यत्र जहॉ श्रावस्ती के नगर द्वार से अस्थिकलश पकडे हुए हस्त्यारूढ प्रसेनजित को दर्शाया गया है नगर के भीतर नृत्य का दृश्य प्रदर्शित है तथा इसके साथ ही विभिन्न वाद्ययन्त्रों का संयोजन करते लोग प्रदर्शित है।[347]

नागार्जुनकोण्डा की कला मे भी नृत्य एवं बृदगान के उदाहरण प्राप्त होते है बुद्ध के जन्मोत्सव का प्रदर्शन करते हुए नृत्य का दृश्य दृश्यांकित है। यहॉ एक महिला कलाकार अपने हाथ में वीणा पकडे हुए प्रदर्शित है।[348]

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की वीणा भी प्रारम्भिक बौद्ध कला में प्राप्त होता है इसकी आकृति आधुनिक 'गिटार' से मिलती है। सॉची मे स्तूप संख्या एक के पूर्वी तोरण द्वार के उत्तरी स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर क्रमानुसार तीसरे निम्न अलंकरण में दो कलाकारों को 'गिटार' प्रकार के वीणा के साथ दर्शाया गया है।

---

[344] दे0मार्शल, जे0तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0—15b(नीचे से पहला अलकरण)।
[345] मलैया सुधा, पूर्वोक्त, चि0स06 42।
[346] दे0चि0फ0स0 चि0फ0स0 27 तथा चि0फ0स0 29 (क्रमानुसार दूसरे दृश्य में)।
[347] शिवराम मूर्ति, 'अमरावती' चि0फ0सं0—49।
[348] कृष्णमूर्ति, के0 नागार्जुनकोण्डा, चि0फ0स0 12 1—2।

इनमें दो खूँटिया लगी है, जिनके द्वारा तार को कसा जाता था। इसकी अनुनाद नाशपाती के आकार का है तथा गर्दन सीधी है। वादक की दाहिने हाथ की अगुलियॉ तार से खेलती हुई प्रतीत होती है, जबकि बॉये हाथ द्वारा ध्वनि नियत्रित किया जा रहा है।[349]

अमरावती की कला में भी इस प्रकार के गिटार का अंकन प्राप्त होता है । मायादेवी के स्वप्न के दृश्याकन वाले फलक मे इस दृश्य से पूर्व जहॉ ऊपर सफेद हाथी का अकन हुआ है, नृत्य के दृश्य मे इस प्रकार की वीणा एक वादक द्वारा बजाते हुए दर्शाया गया है। वादक बाये हाथ से इसके आगे के पतले हिस्से को पकडा हुआ है। जबकि दाहिने हाथ की अंगुलियॉ तार से खेलती हुई प्रतीत होती है।[350]

नागार्जुनकोण्डा की कला मे ठीक इसी प्रकार के गिटार का अंकन जहॉ सिद्धार्थ को अपने राजप्रसाद मे बैठे हुए दर्शाया गया है। सबसे नीचे बैठी एक महिला कलाकार द्वारा इस प्रकार के गिटार को बजाते हुए दर्शाया गया है।[351] दूसरे श्रेणी मे वे वाद्य जिन्हे हाथ से घात प्रतिघात द्वारा बजाया जाता था भरतमुनि ने ऐसे वाद्यो को 'अवनद्ध' कहा है। इन्हें चमडे द्वारा मढा जाता था जैसे–मृदग, ढोल आदि। प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्यो मे मृदग का अंकन वाद्य के रूप मे प्राप्त होता है। भरताचार्य ने मिट्टी से निर्मित तथा दोनो ओर से चमडे से मढे ढाचे वाला वाद्य को मृदंग कहा है। यह चतुर्मुख वाद्य था, जिसके वर्तमान तबले के समान तीन भाग थे (1) हरीतक्याकृति (दोनों मुख व मध्य भाग के समान क्षैतिज रूप से लिटाकर बजाया जाने वाला द्विमुखी' आंकिक) (2) यवाकृति (दोनो मुख समान किन्तु पर मध्यभाग उठा हुआ केवल एक ओर से वादित वाद्य 'उर्ध्वक') (3) गोपुच्छाकृति (दोनों मुख असमान तथा मध्यभाग उठा हुआ केवल एक ओर वादित खडा वाद्य 'आलिग्यक)।

---

[349] दे0चि0फ0स0–23।

[350] दे0चि0फ0स0–29 (मध्य दृश्य में) तथा दे0चि0फ0स0–27।

[351] एलिजाबेथ, रोजेन स्टोन, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–127, 133 (सबसे नीचे बैठी महिला कलाकार द्वारा)।

प्रारम्भिक बौद्ध कला में मृदग अथवा ढोलक का अकन महत्वपूर्ण है। इसका आकार खोखले वेलन के समान होता था जिसके दोनो शिरे चर्म पत्रो द्वारा ढके होते थे इसका उदाहरण भरहुत की कला मे नृत्य के समायोजन में एक महिला कलाकार द्वारा इसे बजाते हुए दर्शाया गया है।[352] पुन. 'सट्टक नामक उपरूपक' जिसको कनिंघम ने इसे मार की कन्याओ द्वारा तपस्या रत बुद्ध का तप भग करने का दृश्य बताया है । यहॉ वृदगान मे नीचे की तरफ अंकित वाद्य मण्डली मे वाद्य के रूप मे 'मृदग' जिसका केवल 'अर्ध्वक' अंकित ही दृष्टव्य है।[353]

इसी प्रकार मृदंग का अंकन भरहुत में बुद्ध के धातु–अवशेष की प्राप्ति के आनन्द मे नर्तन एव वादन का दृश्य उत्टकित है। यहा मृदग को बजाते हुए एक महिला कलाकार को दर्शाया गया है।[354]

सॉची की कला मे भी मृदग का अकन हुआ है मुच्छिलिन्द नागराज एवं उसके परिवार द्वारा बुद्ध की सम्बोधि प्राप्ति के उपलक्ष में मनाये जा रहे आनन्दोत्सव का अंकन करते हुए यहॉ मृदंग का वादन करती स्त्री का अंकन हुआ है जिसमे मृदग का आंकिक व अलिग्यक भाग ही दृष्टव्य है।[355] इसी प्रकार 'सुधम्मा सभा मे चूडा–महोत्सव के अवसर पर नर्तन–वादन के दृश्य में मृदंग बजाती हुई कलाकार का अंकन प्राप्त होता है। कलाकार का बॉया हाथ उर्ध्वक पर है तथा दायॉ 'आकिक' पर।[356]

सॉची की कला में ढोलक का अंकन अनेंक स्थलो पर प्राप्त होता है। जहॉ राजा शुद्धोधन को रथ पर सवार होकर कपिलवस्तु के नगर–द्वार से बाहर निकलते हुए दर्शाया गया है। वहॉ यह विविध वाद्य यन्त्रों के साथ प्रदर्शित है। यहॉ एक नागरिक ढोलक को रस्सी के सहारे बॉयें कन्धे पर लटकाया हुआ है तथा उसे अपने दोनो हाथों से बजा रहा है।[357] इसी प्रकार ढोलक का अंकन अशोक के बोधि वृक्ष की यात्रा का अंकन करते हुए दर्शाया गया है। यहॉ यह कलाकार के बॉयें

---

352 मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–6 13।
353 दे0चि0फ0स0–13।
354 मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, पृ0–229 दे0चि0फ0स0 6 25।
355 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–15b1 (नीचे से पहला दृश्य)।
356 मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0सं0 6 42।
357 दे0चि0फ0स0–23।

कन्धे से लटकता हुआ दर्शाया गया है[358] ढोलक की दूसरी विविधता 'बुद्ध द्वारा श्रावस्ती मे किये गये चमत्कार के साथ दर्शाया गया है। इसमे चर्म पत्रों में छिद्र करके चमडे की बधनी लगी प्रतीत हो रही है।[359]

वाद्य यन्त्रो मे नगाडा का महत्वूपूर्ण स्थान था यह एक अर्द्धगोलीय निर्माण था जिसका ऊपरी शिरा चर्मपत्र द्वारा ढका होता था। आवाज को मधुर बनाने के लिए उसमे चमडे की रस्सी लगी होती थी जिसके द्वारा चर्मपत्र का कसाव अथवा ढीला किया जाता था। सॉची की कला मे स्तूप सख्या एक के पश्चिमी तोरण की ऊपरी बडेरी के पृष्ट तल पर जहॉ मल्ल सरदार बुद्ध के धातु को कुशीनगर ले जाते हुए दृश्याकित है वहॉ नगाडा का अंकन हुआ है। इसमें एक नगाडा सपाट आधारवाला बेलन के आकार का है, जबकि दो गोल आधार वाले है।[360] अर्द्धगोलाकर नगाडे का दूसरा उदाहरण कुशीनगर, जहॉ धातु युद्ध का अकन है, वहॉ गोलीय आधार वाला नगाडे का अंकन प्राप्त होता है, यहॉ इसको दो कलाकार अपने दाहिने कन्धे मे पट्टा द्वारा लटकाये हुए है।[361] इसी प्रकार के नगाडे का दृश्याकन कुशीनगर जहॉ मल्लों द्वारा उत्सव मनाने का दृश्य है इसमे इसे एक कलाकार द्वारा बजाते हुए दर्शाया गया है।[362] पुन. बेलन के आकार वाला नगाडा उदाहरण श्रावस्ती नगर जहॉ प्रसेनजित को नगर द्वार से निकलते हुए दर्शाया गया है वहॉ उनके सामने कलाकारो द्वारा इसे बजाते हुए दर्शाया गया है।[363]

ऐसा लगता है कि सामान्यतया नगाडा का वाद्य के रूप में प्रयोग नृत्य अथवा संगीत के साथ नहीं होता था इसका प्रयोग ज्यादातर सेना अथवा जुलूश के साथ सगमन करने वाली युद्ध–सगीत अथवा सैनिकों के उत्साह बर्द्धन करने, उन्हे युद्ध के लिए प्रेरित करने व उनमें वीर भावना को जागृत करने के लिए अथवा शत्रु के हृदय को विदीर्ण तथा निरूत्साहित करने के लिए इस वाद्य का प्रयोग किया जाता था।

---

358 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–51b।
359 वही, दे0चि0फ0स0–40 3।
360 वही, चि0फ0स0–60 1।
361 दे0चि0फ0स0–26।
362 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–36C1।
363 वही, दे0चि0फ0स0–35b2।

'घन' प्रकार के वाद्य यन्त्रो मे 'डफ' का उल्लेख किया जा सकता है। इसका आकार तश्तरी के समान होता था जिसका एक पार्श्व चर्मपत्र द्वारा ढका होता था। सॉची की कला मे 'अशोक के बोधि वृक्ष की यात्रा' का दृश्याकन करते हुए एक कलाकार द्वारा इस बजाते हुए दर्शाया गया है। इस वाद्य यन्त्र का उदाहरण सॉची[364] के अतिरिक्त भरहुत[365] अमरावती[366] तथा नागार्जुनकोण्डा[367] की कला मे भी प्राप्त होते है।

'सुषिर' वाद्य यन्त्रो मे बॉसुरी तथा शख का उल्लेख किया जा सकता है। ये वाद्य सीधे मुंह से फूक कर बजाये जाते थे। बॉसुरी का अंकन प्रारंभिक बौद्धकला में अनेक स्थलों पर किया गया है। यह एक नलिका के आकार की होती थी, जिसमे खुले छिद्रो से राग तथा लय के अनुसार अगुलियो से हवा रोक कर अथवा खोलकर मधुर आवाज निकालते थे। ये दो प्रकार की होती थीं। एक वह जिसे मुख के दोनो ओष्ठो के बीच रखकर बजाया जाता था।[368] दूसरे प्रकार मे बॉसुरी (वशी) पर मुख को रख कर बजाया जाता था।[369]

भरहुत की कला में बॉसुरी का अंकन सट्टक नामक उपरूपक के प्रस्तुतीकरण में जहॉ नृत्य–संगीत एवं बृदवादन का उत्टंकित है, यहॉ दो स्त्रियॉ इसे बजाती हुई दर्शायी गयी हैं।[370] सॉची की कला में अनेक स्थलों पर वॉसुरी वादन के दृश्य उत्टकित है। जहॉ मल्ल सरदारों द्वारा बुद्ध के धातु को कुशीनगर ले जाते हुए दर्शाया गया है। बॉसुरी को बजाते हुए कलाकार उत्टंकित है।[371] अशोक द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा का अकन हो[372] अथवा श्रावस्ती का वह नगर–द्वार जहॉ प्रसेनजित नगर–द्वार से निकलते हुए दर्शाये गये है, कलाकारों को बॉसुरी बजाते हुए देखा जा सकता है।[373] इसी प्रकार राजा शुद्धोधन को जहॉ कपिलवस्तु

---

364 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, दे0चि0फ0स0–61 3।

365 बरूआ, बी0एम0(भाग तीन) दे0चि0फ0स0–96, चि0स0–148a, दे0चि0फ0स097 चि0स0 148 C कनिघम, पूर्वोक्त, चि0फ0स039 चि0स026।

366 शिवराम मूर्ति, अमरावती, चि0फ0स0 23 चि0स0–2,4,8,9,10,12,13।

367 कृष्णमूर्ति, के0, नागार्जुनकोण्डा' चि0स012 10।

368 बरूआ, बी0एम0भरहुत, चि0स0 148C।

369 मैसी, एफ0सी0सॉची एण्ड इट्स रिमेन्स, चि0फ0स035 चि0स019।

370 दे0चि0फ0स0 13।

371 मार्शल तथा फुशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–61 1।

372 वही, चि0फ0स0–40.3।

373 वही, दे0चि0फ0स0–35 b2।

के नगर–द्वार से रथारूढ होकर निकलते हुए दिखाया गया है रथ के आगे दो कलाकारों द्वारा बॉसुरी बजाते हुए दर्शाया गया है।[374] इसी प्रकार बुद्ध के सम्बोधि प्राप्ति के उपलक्ष मे नागराज, उनके परिवार तथा प्रजा द्वारा मनाये जा रहे आनन्दोत्सव मे स्त्री कलाकारो द्वारा बॉसुरी बजाते हुए देखा जा सकता है।[375]

शंख भी एक महत्वपूर्ण वाद्य था किन्तु इसका प्रयोग गीत सगीत में नही अपितु जुलूस अथवा युद्ध के समय ही हुआ जान पडता है। इसके अतिरिक्त नगाडा, बॉसुरी तथा भेरी भी कुछ ऐसा ही वाद्य था। प्रारम्भिक बौद्ध कला में इन वाद्यो का प्रयोग लगभग इन्ही अवसरो पर हुआ है। सॉची की पूजा के लिए जाते हुए प्रसेनजित की सेना हो,[376] अजातशुका शट्टीजुलुस[377] अथवा परिनिर्वाण के पश्चात् कुशीनगर मे बुद्ध के शरीवशेषों को लाते हुए मल्ल[378] अथवा शरीवशेषो के लिए युद्ध को तत्पर, कुशीनगर का घेराव करती सात दावेदारों की सेना[379], पूर्ण बुद्धत्व की प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध के कपिलवस्तु आगमन का प्रसंग हो अथवा विश्वत्तर के स्वागतार्थ सन्दर्भ सॉची के अनेक दृश्यों जहॉ किसी नरेश की सवारी व उनकी चतुरगिणी सेना को प्रदर्शित किया गया है, शखवादक अथवा बॉसुरी वादक की सख्या अथवा बढोत्तरी को छोड पॉच से लेकर सात सदस्यों की या संगीत मण्डली उसका अभिन्न अग रही है।[380]

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टंकित नागरक एवं नगर स्त्रियॉ विविध प्रकार से एवं विविध वाद्ययन्त्रों से अपना मनोरंजन करते थे, उत्टंकित दृश्यो से तत्कालीन समाज की जीवन्तता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। मनोरंजन एव आमोद प्रमोद के इतने बहुविधि चित्र हमें आज भी आश्चर्यचकित करते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के इस अध्याय मे प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्यों में उत्टंकित विभिन्न नगर तथा नगर–जीवन के दृश्यों के आधार

---

374 दे0चि0फ0स0–23।
375 मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–15b ।
376 वही, दे0चि0फ0स0–34 b1।
377 वही, दे0चि0फ0स0–35 b2।
378 वही, दे0चि0फ0स0–61 1।
379 मार्शल तथा फूशे, चि0फ0स0–40 3।

पर नगर स्थापत्य के विभिन्न अवयवों यथा परिखा, प्राकार, बुर्ज, नगर द्वार, द्वारकोष्ठक, इन्द्रकोश, राजप्रसाद तथा अन्य नागरिक शालाओ का अध्ययन किया गया है। इसकी तुलना यथा स्थान प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित तथा पुरातात्विक उत्खनन से प्रकाश मे आये नगर स्थापत्य के साक्ष्यो से की गयी है।

नगर जीवन के विभिन्न पक्षो के अध्ययन के अन्तर्गत नागरकों तथा नगर स्त्रियो द्वारा धारण किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों तथा केश विन्यास की विभिन्न विधियो एव तत्कालीन नागरक समाज मे प्रचलित मनोरंजन एव आमोद प्रमोद के विभिन्न साधनो का क्रमावार सर्वेक्षण करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

वैसे नगर स्थापत्य एवं नागरिक जीवन के विभिन्न पक्षों के अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त यह निष्कर्षित होता है कि प्रारम्भिक बौद्ध कला में 'नगर–स्थापत्य' के दृश्यांकन मे तत्कालीन शिल्पियो एवं शिल्पाचार्यों ने प्राचीन भारतीय साहित्य के निर्धारित मानदण्डो का अक्षरशः जहॉ तक बन पडा है, पालन करने का प्रयास किया है। जहॉ कहीं भी नगरो को दर्शाया गया है उसमे परिखा, प्रकार, बुर्ज, नगर–द्वार, द्वारकोष्ठक राजप्रसाद आदि नगर–स्थापत्य के वास्तु अगो का विधान किया गया है।

नगर निर्माण मे नगर की सुरक्षा पर जिस तन्मयता से ध्यान केन्द्रित किया गया है। इससे ऐसा लगता है कि तत्कालीन राजनैतिक स्थिति बहुत स्थायित्व को प्राप्त न कर सकी थी, अस्तु नगर सुरक्षा में किसी प्रकार की ढील नगर पर आक्रमण एवं आधिपत्य का कारण हो सकती थी। अस्तु वास्तुचार्यों ने तत्कालीन नगरो के सुरक्षा अगों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया था।

जहॉ तक भवन निर्माण तकनीकि का प्रश्न है निश्चय ही इनके निर्माण में सुन्दरता के साथ–साथ हवा एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था के लिए गावाक्ष (चैत्य तथा आयताकार) आलिन्द, वेदिका युक्त छज्जो इत्यादि का निर्माण किया गया है।

[380] मलैया, सुधा, पूर्वोक्त, पृ0–234।

भवन निर्माण मे भवन की सुन्दरता, स्वाथ्य के प्रति अनुकूलता के अतिरिक्त इसकी मजबूती पर भी विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है।

भवन निर्माण मे स्तम्भो का बहुलाश प्रयोग सिर्फ छत को आलम्बन प्रदान करने के लिए ही नही है अपितु भवन की नीव तथा दीवाल को भी मजबूती प्रदान करने के लिए इसका प्रयोग हुआ है। भवन निर्माण की इस तकनीक की सत्यता का सातत्य आज भी भवन निर्माण में बहुलांश देखने को मिलता है।

OOO

अध्याय पांच
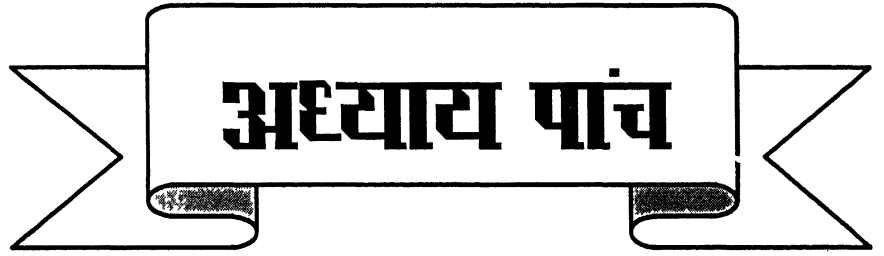
'उपसंहार'

सभ्यता के सोपान नागरिक जीवन के गौरव के चिन्हो से सदा समलकृत रहे है, भारतीय सदर्भ मे यह और आश्चर्यजनक उपलब्धि रही है कि भारतीय संस्कृति की पहली सीमा रेखा ही नगरीय सभ्यता से आरम्भ हुई थी।

किन्तु जब हम प्रारम्भिक बौद्ध कला में दृश्याकित नगरीकरण एव नगर जीवन के साक्ष्यो पर विचार आरम्भ करते है तो नगरों की पहचान की समस्या हमारे सामने आ खडी होती है। नगर की अपनी एक अलग सस्कृति होती है, जो ग्राम से उसे अलग करती है। इस पर कई दृष्टियो से विचार किया गया है; जैसे–बस्ती की सरचना, जनसंख्या का जमाव, पेशे की भिन्नता, रहन–सहन मे परिष्कार इत्यादि ऐसे लक्षण है, जो नगर को एक अलग चरित्र प्रदान करते हैं। विद्वान वी0 गार्डन चाइल्ड[1] ने नगरीय क्रान्ति की विशेषताओ मे कुछ मापदण्ड निर्धारित किया है, जो उनके अनुसार नगर तथा ग्राम को अलग करते है– (1) बस्ती के आकार और जनसख्या का घनत्व (2) जनसख्या की संरचना (3) अधिशेष उत्पाद (4) जनस्मारक कार्य (5) राज करने वाली श्रेणी का विकास (6) लेखन कला का अविर्भाव (7) अकगणित, भू–विज्ञान तथा अन्तरिक्ष विज्ञान का प्रारम्भ (8) उच्च स्मारकीय कार्य (9) लम्बी दूरी का व्यापार (10) राज्य का संगठन।

चाइल्ड के अनुसार ये ऐसे लक्षण हैं जो नगरो मे पाये जाते हैं। किन्तु जहा तक प्रारम्भिक प्राचीन भारतीय नगरो का सम्बन्ध है यहॉ निश्चय ही ये सब विशेषताएं एक साथ नही पाई जा सकती। जैसा कि के0टी0एस0 सराव[2] ने चाइल्ड के उपर्युक्त मत के आलोक मे कहा है कि 'चाइल्ड की मूल कमजोरी यह थी कि वह भूल गया कि प्रारम्भिक नगरो मे ये सब विशेषताएं एक साथ नही पाई जाती। उन्होंने प्रारम्भिक नगरों में बस्ती के आकार और जनसंख्या, व्यवसाय की संरचना, अधिशेष उत्पाद, राज्य करने वाली श्रेणी का विकास और राज्य के संगठन को रखा जा सकता है।

---

1 एडम्स, द अर्बन रिबाल्युशन, टाउन प्लानिंग रिब्यू, भाग–21 (1950) पृ0–3–17।

2 सराव के0टी0एस0, पूर्वोक्त, पृ0–19।

दूसरे स्तर मे जनस्मारक कार्य, लेखन कला का आविर्भाव, अंकगणित, भू विज्ञान तथा अन्तरिक्ष विज्ञान का प्रारम्भ, उच्च स्मारकीय कार्य तथा लम्बी दूरी के व्यापार को रखा जा सकता है। श्री सराव का यह मत ठीक लगता है। वास्तव मे जब नगरो का विकास होता है तो ये सारी चीजे एक साथ नही होती अपितु इनका क्रमश· विकास होता है।

बस्ती के विस्तृत आकार और घनी आबादी नगर के लक्षण माने गये है। भारतीय सन्दर्भ मे जब हम इसका परीक्षण करते है, तो प्राचीन भारतीय साहित्य एव विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरण तथा यदा–कदा पुरातात्विक उत्खनन से भी इसकी पुष्टि होती है। पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में मेगस्थनीज ने उसके विस्तृत होने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार फाह्यान तथा ह्वेनसाग ने भी पाटलिपुत्र को बडे आकार के होने का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त ह्वेनसाग ने भरूकच्छ की राजधानी तथा कान्यकुब्ज नगर के विस्तृत होने का उल्लेख किया है, किन्तु जहा तक इन नगरो के विस्तार का सम्बन्ध है, निश्चय ही इस पर विचार करते समय उस समय के अनुसार सोचना चाहिए न कि आज के सन्दर्भ मे।

जहॉ तक नगर की जनसख्या का सम्बन्ध है; इसका हमे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नही होता है। भारतीय साहित्यिक उल्लेखो, यथा–अर्थशास्त्र मे उल्लिखित विभिन्न दृष्टान्तो; यथा–जनसख्या कार्यालय तथा जनगणना अधिकारी की नियुक्ति, तत्कालीन जनसख्या के प्रति जागरूकता का बोध कराता है। अर्थशास्त्र के अनुसार एक किलेबन्द नगर मे राजमहल के निवासी, पार्षद, पुरोहित और गुरु, सेनानायक और सबसे बढकर सेना के चारो विभाग के सैनिक रहते थे। निश्चय ही इनकी संख्या बहुत अधिक रही होगी। ऐसे ही अप्रत्यक्ष रूप से ही सही मिलिन्दपन्हों, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कुमारपालचरित्, इत्यादि में उल्लेखित विभिन्न दृष्टान्तो से तत्कालीन नगरो में जनाकीर्ण की पुष्टि होती है।

इसी प्रकार पुरातात्विक आधार पर भी नगरों के आकार एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनकी जनसख्या का अनुमान किया जा सकता है। बडी मात्रा में पाये जाने वाले छल्लेदार कुएॅ (रिंग वेल्स) से एक बडी आबादी के संकेतक साक्ष्य माने जा सकते

हैं। इसका प्रयोग एक बडी आबादी को जलापूर्ति के लिए होता रहा होगा, अथवा कभी–कभी सोख्त गड्ढो के रूप में भी इनका प्रयोग हो सकता था। ऐसे अनेक कुएँ प्राचीन भारतीय नगरो, यथा–हस्तिनापुर, रोपड, उज्जैन, मथुरा, नासिक, कौशाम्बी, अयोध्या, राजघाट, चम्पा, बानगढ, अरिकामेडु, लौरियानन्दनगढ इत्यादि, नगरो से पुरातात्विक उत्खनन मे प्राप्त हुए है।

किन्तु आकार एवं आबादी की विशालता मात्र किसी नगर का लक्षण नही है। प्राचीन काल में अनेक ऐसे नगर थे, जो आज के गांव से भी छोटे थे। पुनः आज भी ऐसे गांव है, जिनकी जनसख्या आज के सन्दर्भ मे भी अनेक नगरो तथा कस्बो से अधिक है। इस सम्बन्ध मे शोधार्थी के गृह जनपद गाजीपुर के जमनिया तहसील मे स्थित –'गहमर' गाव का उल्लेख किया जा सकता है। जो भारत ही नहीं अपितु एशिया का सबसे बडा गांव है।

जहॉ तक आबादी का सम्बन्ध है, इसकी विशालता मात्र किसी नगर का लक्षण नहीं है। इसी प्रकार विशाल भवनों तथा अराधना के स्थलों से भी इसको जोडना ठीक नही है। वास्तव मे यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था से अलग एक ऐसी गुणात्मक छलाग है, जिसमे व्यवसायो का विशेषीकरण, उत्पादन मे दक्षता, नये तकनीक का आविष्कार, प्रतीक मुद्रा का प्रचलन, सुव्यवस्थित योजना एव प्रशासनिक तन्त्र का विकास इत्यादि लक्षण पाये जाते है। इसके अतिरिक्त शिल्प एवं उद्योग सम्बन्धी गतिविधियो तथा गैर कृषको की बस्तियां नगर के लक्षण माने जा सकते है।

उल्लेखनीय है कि पुरातात्विक उत्खननों मे अनेक स्थलो से ऐसे शिल्प उत्पाद प्राप्त हुए है, जो स्थल को नगरीय चरित्र प्रदान करते है। इनमें अनेक आवों, चुल्हों, लौह मलों तथा भट्ठियों, सिक्कों तथा सिक्का ढालने के सॉचों, आभूषण तथा इसको ढालने वाला सॉचा, मोहरें, बहुमूल्य पत्थरों से निर्मित मनकें, कांच के सामान, हाथी दांत की बनी वस्तुए, हाथी दात अथवा हड्डी के बने बर्तन, प्रसाधन किश्तियॉ, रोमन बर्तन, उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा (एन0बी0पी0) प्रकार के बर्तन तथा

सोना–चॉदी निर्मित आभूषण इत्यादि, जो स्थल को उच्चतर भौतिक जीवन से सम्बन्धित होने के साक्ष्य प्रस्तुत करते है, नगर की विशेषता है।

ऐसे उच्चतर भौतिक जीवन के सकेतक शिल्पोपकरण की सम्प्राप्ति अनेक प्राचीन भारतीय नगरों से पुरातात्विक उत्खनन मे हुई है। इनमे राजघाट, खैराडीह, शिशुपालगढ, रेढ, नेवासा, टेर, कोण्डापुर, नागार्जुनकोण्डा, सुनेत, कौशाम्बी इत्यादि, नगरो का उल्लेख किया जा सकता है।

पुन· प्राचीन भारतीय साहित्य मे उल्लिखित विभिन्न मापदण्डो के आधार पर भी नगरों की पहचान हो सकती है। सर्वप्रथम नगर को सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपयुक्त भूमि के चुनाव का निर्देश प्राचीन साहित्य में निर्देशित है। इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थल नदी तट था और यदि नदी तट न मिले तो पुर का निर्माण पर्वत के किनारे करने का निर्देश दिया गया है। स्थल का चुनाव नगर सुरक्षा की दृष्टि से नितान्त महत्वपूर्ण था। नदी या पर्वत से नगर को प्राकृतिक सुरक्षा स्वय उपलब्ध हो जाती थी। दूसरी तरफ स्थल के चुनाव मे व्यापारिक गतिविधियो का भी बडा महत्वपूर्ण हाथ था। परिवहन की दृष्टि से अत्यन्त सुविधाजनक होने के कारण नदी अथवा समुद्र तट के कुछ विशेष स्थल इस दृष्टि से सबसे उपयुक्त रहे है। इनमे द्वारका, प्रभास, नागपत्तन, कावेरी पत्तन, मसुलीपत्तन तथा विशाखापत्तन का उल्लेख किया जा सकता है, जो समुद्र तट के किनारे विद्यमान थे। ऐसे नगर जल परिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, जहॉ नौका तथा जल मार्गों द्वारा आसानी से पहुचा जा सकता था।

किन्तु ऐसे स्थल जहां नदियो का अभाव रहा है, जहॉ जलमार्ग से पहुचना सम्भव नही था, स्थल में पडने वाले ऐसे स्थल व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हुये, जहॉ अनेक दिशाओं से अधिक स्थल मार्ग गुजरते थे, जहॉ अधिक सुगमता से पहुचा जा सकता था। ऐसे स्थलों में तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, वाराणसी, बैशाली, गया, राजगृह, पाटलिपुत्र, चम्पा इत्यादि ऐसे नगर थे जिनमें भारत के अनेक राजवंशों की समय–समय पर राजधानियाँ प्रतिष्ठित थी। ये नगर प्रसिद्ध उत्तरापथ पर स्थित थे।

दूसरा महाजनपथ जो पश्चिम मे पाटलि से प्रारम्भ होकर पूर्व मे कौशाम्बी मे आकर उत्तरापथ मे मिलता था। इस पर पाटलि, मथुरा तथा कौशाम्बी नगर स्थित थे। तीसरा महाजनपथ प्रतिष्ठान से प्रारम्भ होकर महिष्मती, उज्जयिनी होते हुए कौशाम्बी मे आकर उत्तरापथ मे मिल जाता था।

स्थल के चुनाव के अतिरिक्त नगर सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यदि प्राकृतिक सुरक्षा यथा–जल, नदी, पर्वत, प्रस्तर समूह, मरूभूमि, अरण्यक आदि जो रक्षा के प्राकृतिक साधन थे, न उपलब्ध हो तो नगर को कृत्रिम साधनो द्वारा यथा–परिखा, प्राकार, गोपुर, अट्टालक, इन्द्रकोष इत्यादि का निर्माण कर नगर की सुरक्षा निश्चित की जाती थी।

शत्रु आक्रमण से नगर को सुरक्षा प्रदान करने के निमित्त नगरों के चतुर्दिक खाई (परिखा) के निर्माण का विधान प्राचीन भारतीय साहित्य मे प्राप्त होता है। परिखा की दीवालो मे दृढता लाने के लिए उनमें प्राय· ईंटो की चुनाई की जाती थी। बडे नगरो मे परिखा की सख्या एक से अधिक होती थी।[3] परिखा को आवागमन से अगम्य बनाने के लिए इसे जल से भर दिया जाता था अथवा नदी मुख से मिला दिया जाता था।[4] पुन· परिखा को शत्रु तैर कर पार न कर पाये इसलिए इसमे घडियाल तथा खतरनाक जलचर छोड देने का विधान प्राचीन भारतीय ग्रथो में प्राप्त होता है।[5] कभी–कभी नगर की सुन्दरता मे अभिवृद्धि हेतु परिखा के जल मे कमल इत्यादि जल पुष्प उगाये जाते थे। अनेक प्राचीन ग्रन्थों यथा–रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, पुराण, जातको इत्यादि से नगरों के चतुर्दिक एक या एक से अधिक परिखाओ के निर्माण का उल्लेख मिलता है।[6]

परिखा के निर्माण के उपरान्त जो मिट्टी निकलती थी उससे 'वप्र' का निर्माण किया जाता था। इसे चौकोर बनाकर हाथियों एवं बैलों द्वारा कुचलवाकर

---

[3] विधेय परिखात्रम्' – समरागणसूत्रधार, पृष्ठ–40।

[4] नारायण, ए0के0 तथा राय, टी0एन0, एक्सकेवेशन्स एट राजघाट, भाग–एक (1976), वाराणसी, पृष्ठ–58, सिह, वी0पी0, लाइफ इन ऐंशयण्ट वाराणसी, पृष्ठ–72, (राजघाट के उत्खनन से ज्ञात होता है कि यहा की परिखा एक तरफ वरुणा नदी तो दूसरी तरफ गगा नदी से जोड दी गयी थी।

[5] अर्थशास्त्र, पृ0–104 (सम्पादक गैरोला)।

[6] राय उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ–24।

भली–भॉति दबा दिया जाता था। वप्र के ऊपर कटीली तथा बिशैली झाडिया लगाकर उसे शत्रु के लिए अगम्य बना दिया जाता था।

वप्र के निर्माण के उपरान्त प्राकार का निर्माण किया जाता था। इसका निर्माण वाह्य शत्रुओ तथा बाढ से नगर तथा नागरिको की सुरक्षा के लिए किया जाता था। नगर प्राकारो से डाकुओं तथा जगली एव भयानक जानवरों से भी लोगो की रक्षा होती थी।[7] नगर प्राकारो की सख्या नगर की सुरक्षा आवश्यकता एवं उसके महत्व पर निर्भर थी। प्राचीन भारतीय साहित्य तथा उत्खनित नगरो के आलोक मे इन्हें तीन प्रकार से निर्मित होने का पता चलता है–

(1) मिट्टी द्वारा बनायी गयी प्राकार (प्रांसु प्राकार)

(2) पकाई हुइ ईंटों से निर्मित प्राकार (ऐण्टक प्राकार)

(3) शिलाखण्डों को जोडकर बनायी गयी प्राकार (प्रस्तर प्राकार)

प्राकार को और अधिक सुरक्षित बनाने के लिए नगर प्राकार के बाहरी भूमि मे शत्रुओ के घुटने को तोड देने वाले खूटे, त्रिशूल, अधेरे (गहरे) गड्ढे, लौह कटक के ढेर, सांप के कांटे, ताडपत्रो के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोंक वाले नुकीले कॉटे, कुत्ते की दाढ के समान लोहे की तीक्ष्ण कीले, बडे–बडे लट्ठे, कीचड से भरे हुए गड्ढे, आग और जहरीले पानी के गड्ढे, आदि बनाने का निर्देश प्राप्त होता है।[8] प्राकार के उपरी भाग पर ताड वृक्ष की जड़ के समान, मृदग बाजे के समान, कपि शीर्ष के सदृश आकृतियो के बनाने का निर्देश इन ग्रंथों में मिलता है।[9]

प्राकार के निर्माण के साथ ही प्रकारो मे बुर्ज तथा इन्द्रकोश का निर्माण किया जाता था, जिसका मूल उद्देश्य नगर सुरक्षा हेतु सुरक्षा प्रहरियों के बैठने की व्यवस्था करना था जो दूर तक नगर की सुरक्षा हेतु, नजर रख सकें। अर्थशास्त्र में इसे "प्राकार अवयव" कहा गया है।

---

[7] रे, अमिता, विलेज, टाउन्स एण्ड सेकुलर विल्डिंग्स इन ऐशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1965, पृष्ठ–64

[8] बहिर्जानुमनीत्रिशूलप्रकारकूमकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रश्रृगाटकश्वदष्ट्रार्गलोपस्कन्दन पादुकाम्बरीषोदचानकै· छन्नपथ कारयेत्– अर्थशास्त्र' सपा0 गैरोला, पृष्ठ–106–07।

नगर मे प्रवेश हेतु प्राकार मे नगर द्वारों का निर्माण किया जाता था, इसे 'गोपुर' कहा जाता था। नगर प्राकार मे सामान्यतया चारो दिशाओं मे एक–एक मुख्य नगर द्वार होता था। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे प्रवेश द्वार भी होते थे जिसे 'प्रतोलि' कहा जाता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र की नगर प्राकार मे 64 द्वार होने का उल्लेख किया है। इन नगर द्वारो तथा प्रतोलि मे कपाट लगे होते थे, जिन्हे रात मे तथा शत्रु आक्रमण के समय बन्द कर दिया जाता था।

नगर प्राकार मे प्रवेश द्वार के अतिरिक्त, स्थान–स्थान पर बुर्ज का निर्माण किया जाता था, जिन्हे प्राचीन ग्रथो में अट्टालक कहा गया है। ये बुर्ज नगर प्राकार के ऊपर एक निश्चित दूरी पर बनाये जाते थे। अट्टालकों पर पहुंचने के लिए सीढियो का निर्माण किया जाता था। इन बुर्जों के ऊपर नगर सुरक्षा के लिए सैनिक तैनात किये जाते थे। दो अट्टालको के बीच एक इन्द्रकोश हुआ करता था। यह एक प्रकार का कमरा होता था जिसमे तीन धनुषधारी पहरेदारो के बैठने की व्यवस्था होती थी। ये सैनिक भी नगर सुरक्षा के लिए तैनात किए जाते थे।

नगर को विभिन्न सुरक्षा के साधनो से युक्त कर, नगर के मध्य राज प्रासाद, राजमार्ग, बाजार तथा अन्य नागरिक शालाओं के निर्माण का विधान प्राचीन भारतीय ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। राज प्रासाद का निर्माण प्रायः नगर के मध्य में किया जाता था अथवा हवाओं की दिशाओं को देखते हुए राज प्रासाद के निर्माण की स्थली चुनी जाती थी।[10] नगर के प्रायोजक पैमाने और सामान्य स्वरूप को देखते हुए अभिविन्यास की समुचित ज्यामितिय आकृतियॉ चुनी जाती थी, और आन्तरिक प्रकार्यात्मक क्षेत्र विभाजन किया जाता था। नगर के मध्य किस भाग मे किसके गृह का निर्माण किया जाए इसके लिए अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, अग्निपुराण, युक्तिकल्पतरु, समरांगणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, मयमत तथा शिल्परत्न इत्यादि, ग्रन्थों मे विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।[11]

---

9 रथचर्यासचार तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्र पृथुशिलासहित शैल कारर्यत्–अर्थशास्त्र, संपा0 गैरोला, पृष्ठ7105

10 कोरोत्स्काय, अ, भारत के नगर, पी0पी0एच0 दिल्ली 1984, पृष्ठ–77।

11 दे0 राय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ–254–261।

नगर मे आवागमन को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए नगरो के बीच राजमार्गों के निर्माण का विधान प्राचीन शिल्पाचार्यों ने किया है। इसकी सख्या नगर के विस्तार के अनुरूप की जाती थी। बडे नगरों मे कई राजमार्ग होते थे, इन्हें पर्याप्त रूप से चौडा बनाया जाता था। ये राजमार्ग एक दूसरे को समकोण पर काटते थे। इस कटान (चौराहा) को प्राचीन ग्रंथों मे चत्वर, कहा गया है। इन चत्वर तथा राजमार्गों के किनारे दूकाने होती थीं, जिसमे नागरिक अपनी आवश्यकता की वस्तु खरीदता था।

नगर निर्माण क्रिया मे नगरो के आकार पर भी पर्याप्त रूप से ध्यान दिया जाता था। प्राचीन ग्रंथो में नगर के सात प्रमाणिक आकार माने गये है।[12] (1) चौकोर (2) आयताकार (3) वृत्ताकार (4) समानान्तर चतुर्भुजाकार (5) अर्द्ध चन्द्राकार अथवा धनुषाकार (6) भुजंगाकार तथा (7) त्रिभुजाकार।

इस प्रकार उपर्युक्त विशेषताएँ किसी स्थल पर प्राप्त होती हैं, तो उसकी पहचान नगर के रूप मे की जा सकती है। यद्यपि यह आवश्यक नही है कि उपर्युक्त सभी विशेषताए एक स्थल पर प्राप्त हो ही। उपर्युक्त साहित्यिक मापदण्ड प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टकित नगरों तथा नगर जीवन के साक्ष्यों के लिए अतीव महत्व रखते है।

जब हम प्राचीन भारत मे नगरीकरण तथा नगर जीवन पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है तो सैन्धव नगरों के पतन तथा उसके पश्चात् एक बार पुन गगाघाटी में उदय के बीच के काल अन्तराल की समस्या हमारे सामने आ खडी होती है।

यद्यपि ऋग्वेद मे पुरो का सन्दर्भ अप्राप्त नही है। ऋग्वेद मे अनेक स्थलों पर पुरो का उल्लेख हुआ है।[13] चाहे इन्द्र द्वारा उन पुरों के विनाश के सन्दर्भ में[14] अथवा इन्द्र से नगरो की रक्षा के लिए किये गये प्रार्थना के सन्दर्भ मे दुर्गों का

---

[12] दे0 राय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ–249, सौन्दराजन, के0वी0, सिटी एण्ड विलेज इन ऐशेण्ट इण्डिया, 1986 संदीप प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ–55, चि0स0 10।

[13] ऋग्वेद, I–43 8।

[14] वही, IV–16 13।

उल्लेख है।[15] इस सहिता मे पुरो का उल्लेख ग्राम से अधिक हुआ है।[16] तथापि इसके आधार पर ऋग्वैदिक सभ्यता को नगरीय सभ्यता नही माना जा सकता।

जहाँ तक ऋग्वेद के उत्तरवर्ती साहित्य का सम्बन्ध है इसमें भी 'पुर' शब्द संदर्भित है, जो परिखा एव प्राकार से परिवेष्ठित नगर का बोधक है। इनमे तैत्तरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण एव शतपथ ब्राह्मण का उल्लेख किया जा सकता है। अन्य नगर विन्यास से सम्बन्धित शब्द जैसे प्राकार, शंखायन सूत्र, वप्र', अथर्ववेद, 'देही' कात्यायन श्रौतसूत्र का सन्दर्भण तत्कालीन नगर सुरक्षा के विभिन्न अवयवों का प्रकटीकरण है।

पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' जिसकी रचना लगभग पाचवी शताब्दी ई0पू0 मे हुई थी, में न सिर्फ ग्राम तथा नगर का उल्लेख है,[17] अपितु नगर, नगर–विन्यास, किला, सुरक्षाभित्ति परिखा, नगर द्वार एव सुरक्षा टावर भी का उल्लेख हुआ है।[18] ऐसा लगता है कि पाणिनि के काल तक आते–आते नगर सुरक्षा के विभिन्न वस्तु अगों का विधिवत विकास हो चुका था। कौटिल्य ने भी परिखा, प्राकार, वप्र, अट्टालक, गोपुर, इन्द्रकोश इत्यादि नगर वस्तु अगो का बहुलाश उल्लेख किया है।

वैदिक साहित्य मे तत्कालीन गगाघाटी मे स्थित अनेक नगरो का उल्लेख हुआ है, जैसे– शतपथ ब्राह्मण में 'आसन्दीवन' नगर का उल्लेख जनमेजय परीक्षित की राजधानी के रूप मे हुआ है इसके अतिरिक्त अन्य परीक्षित कालीन नगर मणार का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण तथा 'करौति' का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में हुआ है। इसके अतिरिक्त काम्पिल्य का तैत्तरीय सहिता मे तथा अयोध्या का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है। प्रारम्भिक पालिग्रथो मे, नगर, महानगर तथा राजधानी की सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त पाणिनि ने

---

15 राय उदयनारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 26।

16 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, फाउण्डेशन्स ऑव इण्डियन कल्चर, जि0 2, पृ0–71 (ऋक्सहिता मे 'ग्राम' नौ बार आया है और 'ग्राम्य' एक बार आता है 'पुर' 58 बार से कम नहीं आता)।

17 राय उदयनारायण, (सम्पादक), रुरल लाइफ एण्ड फोल्क कल्चर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, 1988 (इलाहाबाद)– शोधपत्र रुरल अर्बन डीफरेशीएयन इन द लाइट ऑव पाणिनि–यू0एन0 राय, पृष्ठ–108।

18 अग्रवाल, वी0एस0 'पाणिनि कालीन भारत वर्ष, 1969 वाराणसी, पृष्ठ–137।

हस्तिनापुर, तक्षशिला, फलकपुर, मार्येदपुर, अरिष्टपुर और गौडपुर का उल्लेख किया है।

किन्तु जहाँ तक पुरातात्विक साक्ष्यो का सम्बन्ध है विशेषकर पकाई हुई ईंटो के भवनो का, इस आधार पर हम नगरीकरण का प्रारम्भ 300 ई0पू0 के पहले का स्वीकार नही कर सकते। जहा तक वैदिक साहित्य मे प्रतिबिम्बित भारत का सम्बन्ध है इसका पुरातात्विक उत्खनन मे कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं, इसकी पडताल कर लेना आवश्यक है।

ऋग्वेद के तिथिक्रम से मेल खाने वाली संस्कृतियो में लाल तथा गेरुवर्णी मृद्भाण्डों को रखा जा सकता है। यद्यपि यह भी निर्विवाद नहीं है। सामान्यतया गेरुवर्णी मृद्भाण्ड, ऋग्वेद के समकालीन मानी जाती है, किन्तु इसका भी भौगोलिक रूप से ऋग्वैदिक संस्कृति से बहुत साम्य नही है। क्योंकि गेरुवर्णी मृद्भाण्ड सस्कृति से संबधित लगभग एक सौ स्थलो मे से बहुत कम ही सप्त सैन्धव क्षेत्र मे पडते है जहॉ ऋग्वैदिक सस्कृति का ताना–बाना बुना गया था। अधिकांश ये स्थल गंगा–यमुना दोआब मे केन्द्रित है, यही बात ताम्र पुजो के बारे मे भी कही जा सकती है।

यद्यपि ऋग्वेद के भौगोलिक क्षेत्रों से चित्रित धूसर भृद्भाण्ड प्राप्त हुए है, किन्तु इसका काल ऋग्वेद के अन्तिम शताब्दी का ही माना जा सकता है। इसे यदि ऋग्वैदिक कृति मान भी ले तो इससे कोई स्थायी जीवन के सकेत प्राप्त नहीं होते।

जहाँ तक उत्तर–वैदिक साहित्य के पुरातात्विक पुष्टि का प्रश्न है, सापेक्षिक रूप से कुछ अधिक प्रमाण उपलब्ध है। अपने क्षेत्रीय प्रसार एव तिथिक्रम के आधार पर चित्रित धूसर भृद्भाण्ड सस्कृति तथा उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी भागो में पाये जाने वाले उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा को उत्तर वैदिक संस्कृति के अवशेष होने का हकदार माना गया है।

चित्रित धूसर मृदभाण्ड अपने पूर्ववर्ती संस्कृति से स्थाई जीवन के साक्ष्य प्रस्तुत करती है। इस सस्कृति काल में ही गंगाघाटी में लोहे का प्रयोग आरम्भ

हुआ। यद्यपि प्राप्त पुरावशेष में मुख्यतः युद्ध एव आखेट मे प्रयुक्त होने वाले उपकरण ही सम्मिलित है, कृषि से सम्बन्धित उपकरणो की सम्प्राप्ति विरल है। सीमित मात्रा मे ही सही लौह उपकरणो का प्रयोग एक महान तकनीकी उपलब्धि थी, जो आगे लोगो के जन–जीवन को प्रभावित करने की असीम क्षमता रखती थी। प्राप्त अधिकाश बस्तिया कृषक समूह की बस्ती प्रतीत होती है, जिनमे विभिन्न प्रकार के अनाज तथा दालों के अवशेष महत्वपूर्ण है।

किन्तु जहॉ तक उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड से सम्बन्धित स्थलो का सम्बन्ध है इस स्तर से बडी मात्रा मे लौह तथा कृषि से सम्बन्धित लौह उपकरण प्राप्त हुए है इससे यह कहने में हमे कठिनाई नही है कि उत्तरी काली चमकीला पात्र परम्परा (एन0बी0पी0) के प्रारम्भिक चरण में लोग गंगा के मैदानी इलाके में बसने लगे थे तथा शिल्प एवं कृषि द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने लगे थे। इन्हीं बर्तनो के प्रयोग करने वालो के समय मे गंगाघाटी में नगरीकरण का प्रारम्भ हुआ।

यद्यपि पकाई हुई ईंटो से निर्मित भवन के आधार पर नगरीकरण का प्रारम्भ 300 ई0पू0 के पहले का स्वीकार नही किया जा सकता। किन्तु पकाई हुई ईंटों का अभाव निश्चित रूप से नगरों के अभाव का सूचक नहीं है। अनेक स्थलो से पुरातात्विक उत्खनन मे गृह निर्माण में मिट्टी तथा लकडी का प्रयोग प्रमाणित है इसमे राजघाट तथा सोनपुर उल्लेखनीय है। गंगाघाटी में इस प्रकार के घर प्राचीन नगरो की विशेषता थे।

जहॉ तक पकाई हुई ईंटो का सम्बन्ध है निश्चित रूप से इसका प्रयोग बाद में आरम्भ हुआ, पाटलिपुत्र, वैशाली, उज्जैन, वेसनगर तथा अहिच्छत्र में इसका प्रयोग उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड के द्वितीय चरण में लोकप्रिय हुआ जान पड़ता है। दूसरी तरफ हस्तिनापुर, राजघाट, मथुरा, कौशाम्बी तथा चिराद में इसका प्रयोग और बाद मे शुरू हुआ। इसी प्रकार उत्तरी भारत के बाहर नवादाटोली में पहले पहल पकाई हुई, ईंटो का प्रयोग 400 ई0पू0 के बाद प्रकाश में आया नासिक, नेवासा एवं त्रिपुरी में इसका प्रयोग मौर्योत्तर काल में शुरू हुआ।

इस प्रकार साहित्यिक एव पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर छठी शताब्दी ई0पू0 के आस–पास नगरीय जीवन के प्रारम्भ होने की बात हमे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है। जहां तक पकाई हुई ईंटों से निर्मित भवन का सम्बन्ध है इसके लिए उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्ड का द्वितीय चरण 300 ई0पू0 से 200 ई0 ज्यादा महत्वपूर्ण है।

जब हम नगरीकरण के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वेक्षण प्रारम्भ करते है तो सर्वप्रथम ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था मे हमे आर्य जनजातीय धुमन्तू एव पशुचारी समाज के रूप मे हमारे सामने आते है। पशुपालन उनका प्रमुख व्यवसाय प्रतीत होता है और पशु उनकी सम्पत्ति। वास्तव मे घुमन्तू जीवन के लिए यदि चल सम्पत्ति अपनी ओर आकृष्ट करे तो कोई आश्यर्च नही, क्योकि पशु ऐसी सम्पत्ति थे, जिसे लेकर एक स्थल से दूसरे स्थल तक आसानी से जाया जा सकता था।

जहॉ तक कृषि का सम्बन्ध है इस क्रिया से लोग अनजान तो न थे, किन्तु आर्यों के प्रारम्भिक अर्थव्यवस्था मे कृषि का स्थान पशुपालन की अपेक्षा गौण ही था। यद्यपि कृषि से सम्बन्धित अनेक शब्दों का उल्लेख हुआ है। हल को 'लांगल' या 'सीर' कहते थे, सीर को सीता से जोडा गया है और इससे खेती की वह अवस्था द्योतित थी। जिसमे भूमि की ऊपरी सतह किसी नुकीली डडे से खरोची जाती थी।[19] इसके अतिरिक्त खनित्र (कुदाल) दात्र (दरांत) इत्यादि कृषि मे प्रयुक्त होने वाले औजारों के अतिरिक्त, कृषि करना, जोतना, फसल की कटाई के पश्चात् गट्ठर बनाकर खलिहान में लाना तथा उसकी मडाई करने का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु जहॉ तक अनाज का सम्बन्ध है इसमें ऋक्सहिता में केवल मात्र यव का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसे आज जौ कहा जाता है, पर इसका अर्थ सामान्य अनाज भी हो सकता है।[20]

ऋग्वैदिक काल में जहा तक शिल्प एव उद्योग के विकास का सवाल है यह अपने शैशव रूप में विद्यमान प्रतीत होता है। प्रमुख शिल्पियों में 'तक्षन्' का स्थान

19 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, वैदिक सस्कृति, प्रथम सस्करण 2001, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–51।
20 वही, पृष्ठ–47।

महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त, कर्मकार जो धातु शिल्पी का सामानय नाम था।[21] हिरण्यकार, चर्मण, कुलाल जो मिट्टी के बर्तन बनाता था, बढई, जुलाहा, आदि शिल्पियों का उल्लेख वैदिक वाडमय मे मिलता है। रथ बनाना, तीर बनाना, पत्थर काटना विशिष्ट शिल्प थे। करघा, छेनी, हथौडा, कुल्हाडी आदि औजारो तथा तीर कमान, फरसा, तलवार, बरछा, कवच आदि युद्ध सम्बन्धी हथियारो का वर्णन मिलता है।[22] इस काल में व्यवसाय चयन अपने स्वेच्छा पर था। इसके लिए ऋग्वैदिक अर्थ संरचना अथवा समाज संरचना में अनुवाशिक तत्व अथवा भेदपरक भाव उत्तरदायी नही थे। जहाँ तक क्रय-विक्रय का सम्बन्ध है, यहाँ हम गाय, एवं निष्क जो एक प्रकार का गले का आभूषण था, हम मूल्य के एक निश्चित इकाई के रूप मे प्रचलित पाते है। फिर भी क्रय-विक्रय का माध्यम इस काल मे वस्तु विनिमय ही प्रचलित प्रतीत होता है।

जहाँ तक उत्तर वैदिक कालीन अर्थ सरचना का सम्बन्ध में इस काल तक आते-आते अर्थव्यवस्था मे हमे अपनी पूर्ववर्ती अर्थव्यवस्था की अपेक्षा पेशे एवं रहन-सहन में व्यापक बदलाव के लक्षण दिखाई देने लगते है। ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था में पशुपालन, अर्थव्यवस्था के मूल मे स्थापित था। परन्तु उत्तर वैदिक काल में आकर धीरे-धीरे कृषि उसका स्थान लेने लगी थी, किन्तु पशुपालन अब भी पूर्णतया समाप्त नही हुआ था। पशुपालन अब भी कृषि के साहचर्य के रूप मे अब भी उसके साथ-साथ विद्यमान था।

इस काल तक हल की उपादेयता को पूर्णतया पहचान लिया गया था, हल का व्यापक प्रचलन इस काल मे हुआ जिसमें हड्डी के समतुल्य फाल का प्रयोग किया जाता था। खाद्यान्न के रूप मे 'यव' के अतिरिक्त इस काल मे 'ब्रीही' गेहूँ के अतिरिक्त मूँग, उडद, तिल एवं मॅसूर आदि की खेती का प्रचलन हो गया था।

इस प्रकार इस काल तक आते-आते कृषि के आधार क्षेत्र मे विस्तार हुआ, कृषि ने आर्यों को एक ऐसा उत्पाद प्रदान किया जिसका संग्रह एक लम्बे समय तक

---

21 ब्रह्माणस्पतिरेत स कर्मर इवाधमत्।
देवान पूर्व्ये युगेऽसत. सदजायतः-ऋग्वेद-10-72.2।

22 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ-50

किया जा सकता था। जबकि इसके पूर्ववर्ती उत्पाद दूध, फल, कन्दमूल, मॉस इत्यादि की प्रकृति नश्वर थी। इस प्रकार हम देखते है कि उत्तर वैदिक अर्थव्यवस्था मे कृषि का विकास एक महत्वपूर्ण चरण था जिसमे आगे बहुत कुछ बदल देने की काफी कुछ सम्भावनाए निहित थी और हुआ भी ऐसा।

पशुपालन अब भी समाप्त नहीं हुआ था यह कृषि के साहचर्य के रूप मे अब भी अर्थव्यस्था मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। वास्तव में पशुओं की महत्ता कृषि में असदिग्ध थी। वस्तुत· जुताई से लेकर अन्न की ढुलाई तक पशुओं की आवश्यकता पडती थी। इसलिए पशु आर्यों के लिए श्री एवं सम्पत्ति के प्रतीक माने गये थे। कृषि में इनके प्रयोग ने कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कृषि जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था के केन्द्र मे स्थापित हो रही थी, उसी क्रम मे आर्यो के जीवन पद्धति, रहन–सहन मे स्थायित्व के लक्षण दृष्टिगत हो रहे थे। चूँकि कृषि किसी स्थान विशेष पर ही किया जा सकता था, अस्तु कृषि के लिए स्थायी निवास की आवश्यकता थी। घुमन्तू एव यायावारी जीवन मे कृषि का विकास सम्भव नही था।

कृषि, पशुपालन के साथ ही व्यवसाय में भी वृद्धि आलोचित अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है। धातु के रूप में ऋग्वैदिक अयस् उत्तर वैदिक काल मे श्याम अयस् एव लोहित अयस् के रूप में प्राप्त होने लगता है जिसमे निश्चय ही श्याम अयस् लोहे के लिए प्रयुक्त हुआ है, तांबे के विभिन्न पात्र, सीसे की गोलियॉ जुलाहो द्वारा ताने मे लटकाने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त चांदी के आभूषण, निष्क नामक सोने के आभूषण, कर्णशोभन नामक आभूषणो मे सोना प्रयुक्त होता था। वाजसनेयी संहिता एव तैतरीय ब्राह्मण में अनेक प्रकार के व्यवसाय से सम्बन्धित पुरुषो को 'पुरूषमेधयज्ञ' के समय दी जाने वाली बलि के सम्बन्ध मे उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें व्यवसाय की विविध कोटियॉ दिखाई पडती है, इसमें कुछ का स्वरूप विशुद्ध औद्योगिक जान पड़ता है, जबकि कुछ श्रम विभाजन के आधार पर निर्मित दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बनाए गए थे।

क्रय—विक्रय के माध्यम के रूप मे इस समय तक आते—आते कुछ साकेतिक मुद्राओ के प्रचलन का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है, किन्तु अब भी ऐसा लगता है कि क्रय—विक्रय का प्रधान माध्यम वस्तु विनिमय ही था।

इस प्रकार हम देखते है कि उत्तरवैदिक काल के अन्तिम चरण तक आते—आते अर्थव्यवस्था कृषि एव कृषि अधिशेष के द्वार पर आ खडी हुई थी। शिल्प एव व्यवसाय की सुव्यवस्थित आधारशिला रख दी गयी थी, जिसने आगे कृषि अधिशेष, विकसित औद्योगिक एव व्यवसायिक समाज के लिए सम्भावनाओ का द्वार खोल दिया गया था।

आगे चलकर वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था की आलोच्य कालावधि (लगभग) 600 ई0पू0 से 300 ई0पू0) मे प्रमुख रूप से दस्तकारी, उद्योग, कृषि अधिशेष व्यवसाय एव व्यापार की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। कृषि मे लोहे का प्रयोग निश्चय ही अपनी पूर्ववर्ती तकनीकी की अपेक्षा एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का द्योतक था। मुख्य रूप से गगाघाटी क्षेत्र जहा अत्यधिक वर्षा मे आने वाली तत्कालीन वनस्पतियों एव जगलो की सफाई, कठोर मिट्टी की जुताई के लिए एक कठोर उपकरण की आवश्यकता थी। तॉबे अथवा कॉसे से बने हथियार उतने प्रभावी नही थे जितना लोहे का।

वनस्पतियों की सफाई एवं जगलों की कटाई अथवा आग द्वारा जलाये गये पेडों अथवा वनस्पतियों के गहरे जडो के निस्तारण में लोहे की भूमिका महत्वपूर्ण थी। निश्चय ही लोहे के हथियारो एव फाल के प्रयोग से एक विशाल कृषि से अछूता क्षेत्र कृषि उपभोग के योग्य बनाया जा सकता था, इसके प्रयोग से कृषि भूमि का अधिकतम उपयोग कम श्रमसाध्य था, जो इसके पूर्ववर्ती लकडी पाषाण उपकरणों से सम्भव नहीं था।

इस तरह कृषि में लौह तकनीकी के प्रयोग एवं इसके प्रयोग से उत्पन्न कृषि अधिशेष एवं इस अधिशेष के किसी न किसी रूप में हथियाकर एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जिसकी आवश्यकता मात्र भोजन तक ही सीमित नहीं थी। उसके रहन—सहन में अनेक प्रकार के शिल्प एवं तत्निर्मित वस्तुओं की मांग थी और इस

माग ने जहा एक ओर शिल्प एव उद्योग मे लगे शिल्पियों के पोषण के लिए आधार उपलब्ध कराया तो दूसरी तरफ शिल्पिय उत्पाद की गुणवत्ता मे सुधार की प्रेरणा प्रदान की, परिणाम स्वरूप व्यापार मे वृद्धि तो अपरिहार्य ही था।

यद्यपि तत्कालीन वेदोत्तरकालीन अर्थ संरचना मे विदेशी व्यापार का योगदान लगभग नगण्य ही था जैसा कि के0टी0एस0 सराव ने उल्लेख किया है। हॉ आन्तरिक व्यापार से इन्कार नही किया जा सकता। व्यापार के कारण नगरो का उदय हुआ अथवा नगरों के कारण व्यापार का, यह विवाद का विषय हो सकता है, किन्तु व्यापार और नगर का अन्तर सम्बन्ध जरूर था और एक बार जब व्यापार चलने लगा तो यह प्रारम्भिक केन्द्रो के लिए बरदान साबित हुआ। लगभग इसी समय प्रतीक मुद्राओ का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसने व्यापार को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इन सारी प्रगति के बावजूद नगरीकरण मे राज्यों अथवा महाजनपदों की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी। लगभग इसी समय पहले से विस्तृत उत्तर वैदिक राजत्व को और अधिक विस्तृत करने वाले गणतन्त्रात्मक एवं राजतन्त्रात्मक महाजनपदो के रूप में राज्यो का अभ्युदय हम पाते है। इन महाजनपदो ने भी नगरीकरण को प्रोत्साहित करने में अपनी भूमिका निभाई अंगुत्तरनिकाय मे इन सोलह महाजनपदों का उल्लेख हम पाते हैं, जो इस समय मौजूद थे इनमे– (1) काशी (2) कोसल (3) अंग (4) मगध (5) वज्जि (6) मल्ल (7) चेंदि (8) वत्स (9) कुरु (10) पाचाल (11) मत्स्य (12) शूरसेन (13) अस्सक (14) अवन्ति (15) गान्धार (16) कम्बोज।

इस प्रकार राजकीय परिस्थितियों के कारण प्रत्येक जनपद ने अपनी राजधानी आवश्यकता के अनुरूप किसी विशेष सुरक्षित स्थान पर बनाई तथा इसे परिखा एव प्राकार से परिवेष्ठित अनेक नगरों और दुर्गों को जन्म दिया था।

इस प्रकार लोहे के प्रयोग से वेदोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में आयी तकनीकी दक्षता, कृषि अधिशेष, व्यापार एवं वाणिज्य मे उन्नति, राजनैतिक विकास एवं लगभग इसी समय जनपदों एवं महाजनपदों के उदय का नगरों के उदय से कोई एक कारण महत्वपूर्ण न भी रहा हो तो हम इन सभी में एक अन्तर सम्बन्ध की

कल्पना तो कर ही सकते है और इन्ही विभिन्न कारणो के सजात एव उनके परिणाम ने नगरीकरण को प्रोत्साहित किया जिसकी चरम परिणति गंगाघाटी मे नगरो के उदय के रूप में हुई।

जहॉ तक प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्यांकित नगरीकरण एव नगर जीवन को सन्दर्भित करने वाले साक्ष्यो का सम्बन्ध है, इनमें भरहुत, सॉची, अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा में निर्मित स्तूप एवं उन पर उत्कीर्ण दृश्यांकन तत्युगीन नगरीकरण एवं नगर जीवन सम्बन्धी साक्ष्यो के अकनार्थ अतीव महत्व रखते है।

यद्यपि इनके निर्माण का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन जनता को बौद्ध धर्म तथा इससे जुडे कथानकों, सिद्धान्तो से जनता को परिचित करना ही था। तथापि इन कलात्मक पुरावशेषो के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उद्देश्य गौण हो गया और कलाकार जीवन के चित्रण मे इतना संलग्न हो गया कि उसे जनता के नैतिक उन्नयन का कोई विशेष ध्यान नही रहा। ए0के0 कुमार स्वामी का यह कथन नितान्त महत्वपूर्ण जान पडता है कि 'इन चित्रों का प्रधान केन्द्र बिन्दु न तो आध्यात्मिक है और न ही आचारवादी', बल्कि यह सम्पूर्ण तथा मानव जीवन से सम्बन्धित है।

ये दृश्य न केवल बौद्ध धर्म के धार्मिक भावनाओं और विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं अपितु तत्कालीन वेशभूषा, परिधान, आभूषण तथा शिष्टाचार सम्बन्धी व्यवहार को भी उद्घाटित करते है। इन दृश्यों से हम तत्कालीन भारत के जनसाधारण के मानस और आदतो के सम्बन्ध में हम एक अन्तर्दृष्टि पाते है।

इन प्रारम्भिक बौद्ध कलात्मक अवशेषो में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न नगरों तथा नगर जीवन के अनेक पक्षों यथा—नगर—विन्यास, भवन—विन्यास, वेश—विन्यास, केश—विन्यास, राज प्रासाद योजना आभूषण एवं मनोरंजन के साधनों का खुलकर अंकन हुआ है।

उत्टंकित दृश्यों के अवलोकन से तत्कालीन नगर सन्निवेश के प्रमुख अंग परिखा, प्राकार, बुर्ज (अट्टालक), नगर—द्वार, द्वार कोष्ठक, इन्द्रकोश, राजमार्ग, राज

प्रासाद एव बाजार का अकन महत्वपूर्ण है। वाह्य शत्रुओ से नगर तथा नागरिको की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है इनमें परिखा प्राकार तथा प्राकार अवयव का उल्लेख किया जा सकता है।

नगर को वाह्य शत्रुओ से सुरक्षित करने हेतु नगर के चतुर्दिक परिखा का निर्माण किया गया है। परिखा को अगम्य बनाने के लिए इनमें जल भर दिया जाता था। जल मे कमल, कुमुदनी इत्यादि का रोपण नगर सुन्दरता की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। उत्टकित नगरो को देखने से परिखा के उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी जान पडता है, आवश्यकता होने पर परिखा के जल से नगर की एक बडी जनसख्या को जल की आपूर्ति की जा सकती थी[23] अथवा नगर की गन्दगी बहाई जा सकती थी।

परिखा के निर्माण के पश्चात् परिखा से लगा हुआ नगर–प्राकार का निर्माण किया जाता था। प्राकार के उदाहरण कलात्मक साक्ष्यो के अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खननों द्वारा अहिच्छत्र, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वैशाली, राजगीर, नवराजगीर, उज्जैन, राजघाट, पाटलिपुत्र, मथुरा, चम्पा आदि नगरो के साथ सुरक्षा प्राकार बने होने का प्रमाण प्राप्त होते है। प्राकार का निर्माण वाह्य शत्रुओं एवं नदी की बाढ से नगर एव नागरिकों की सुरक्षा के लिए बनाई जाती थी। नगर प्राकार से डाकुओ तथा जंगली एव भयानक जानवरो से भी लोगो की रक्षा होती थी।[24] ये प्राकारे तीन तरह की होती थी– (1) प्रासु प्राकार (2) ऐण्टक प्राकार (3) प्रस्तर प्रकार।

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे प्रासु प्राकार के उदाहरण प्राप्त नही होते, किन्तु ऐण्टक प्राकार[25] तथा प्रस्तर प्राकार[26] का अकन हुआ है। कलात्मक साक्ष्यो के अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खनन मे भी अनेक नगरों के साथ प्राकार होने का प्रमाण प्राप्त होता है इनमें मथुरा (प्रांशु प्राकार), राजगृह (प्रस्तर प्राकार), राजघाट (इण्टका

---

23 मार्शल, जे0 तथा फूशे, ए0, पूर्वोक्त, चि0फ0स0–31, 40 2।

24 रे, अमिता, विलेज टाउन एण्ड सेकुलर विल्डिग इन ऐशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1964, पृष्ठ–64।

25 मार्शल जे0 तथा फूशे, दि मान्युमेंट्स ऑव साची, (3 खण्ड) चि0फ0स0 31, कुमार स्वामी, के0ए0, पूर्वोक्त चि0फ0स0 124, चि0स0 9, राय उदय नारायण, प्राचन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, चि0फ0 स01 आकृति–1।

26 वही, पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0 61.1 कृष्णमूर्ति, के, मैटिरीयल कल्चर ऑव साची, चि फ0 स0 35ए, राय उदय नारायण पूर्वोक्त, चि0 फ0 स0–7।

प्राकार) के अतिरिक्त श्रावस्ती, वैशाली, उज्जैन, राजघाट, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र, चम्पा आदि नगरों के चतुर्दिक प्राकार बने होने का पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त होते है।

प्राकार मे बुर्जों के निर्माण के बारे मे प्रारम्भिक बौद्ध कला से दृष्टान्त प्राप्त होते है। सॉची की कला मे 'कुशी नगर', 'जेतुत्तर नगर' के नगर प्राकार में बुर्ज होने का प्रमाण प्राप्त है। बुर्ज का निर्माण नगर सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। बुर्ज के शीर्ष पर सुरक्षा सैनिकों के बैठने की व्यवस्था रहती थी।

नगर प्राकार में नगर में प्रवेश के लिए चारो दिशाओ में प्रवेश द्वार (गोपुर) का निर्माण किया जाता था। जैसा कि प्रारम्भिक बौद्ध कला में दृश्यांकित नगरों से स्पष्ट है, ये द्वार काफी चौडा होते थे जिनमें कपाट लगे होते थे। रात्रि के समय अथवा शत्रु आक्रमण होने पर इन्हे बन्द कर दिया जाता था।

नगर द्वार के ऊपर द्वार कोष्ठक का निर्माण किया जाता था, इसका निर्माण नगर द्वार के ठीक ऊपर किया जाता था, इसमें सुरक्षा प्रहरियो के बैठने की व्यवस्था रहती थी। द्वार कोष्ठक को एक से लेकर तीन[27] मजिल तक बनाया जाता था। इनकी छत वेलनाकार वेसर शैली मे निर्मित होती थी। कभी–कभी इसकी छत समतल भी बनाई जाती थी, किन्तु समतल छत के उदाहरण बहुत ही कम प्राप्त होते है।

नगर विन्यास मे राज प्रासाद का निर्माण महत्वपूर्ण था। प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्यांकित नगरो में राज प्रासाद का अंकन हुआ है। राज प्रासाद का निर्माण प्राय· नगर के मध्य मे किया जाता था तथा अन्य नागरिक शालाओं का निर्माण मार्गों के किनारे किया जाता था प्राय राज प्रासाद तथा नागरिक शालाएं कई मंजिलों की बनाई जाती थी। साहित्यिक साक्ष्यों में एक से लेकर नौ मंजिल तक के प्रासाद के बारे में सूचना मिलती है।[28]

---

27 दे0चि0फ0सं0 21, मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त चि0फ0सं0–34 बी–1, कुमार स्वामी, ए0के0 पूर्वोक्त दे0चि0 फ0 स0 124 चि0 स0–10

28 जातक, I, 58, 89, 304; IV, 105, 378–379, VI 382।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्यो मे द्विभूमिक, त्रिभूमिक एव चतुर्भूमिक प्रासादो का अकन दृष्टिगोचर होता है।[29] कभी–कभी राजप्रासादो के चतुर्दिक द्वारयुक्त प्राकारों का निर्माण किया जाता था। जो वेदिका की तरह दृष्टिगत होती थी। इन राज प्रासादो के प्राकार द्वार भी काफी चौडे तथा ऊँचे बनाये जाते थे। वे इतने चौडे तथा ऊँचे होते थे कि उनमें से गजारोही भी आ जा सकते थे। जैसा कि भरहुत की कला मे दृश्याकित बैजयंत राज प्रासाद के प्राकार द्वार से एक गजारोही को बाहर निकलते हुए उत्टकित किया गया है।[30]

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित विविध प्रासादों एव नागरिक शालाओ के सम्यक् अध्ययन के पश्चात् तत्कालीन प्रासादों की निम्नलिखित अंगीभूत विशेषताए निष्कर्षित होती है–

(1) प्राय· नगरों के मध्य में प्रासाद का निर्माण किया जाता था।

(2) राज प्रासाद के चतुर्दिक एक प्राकार का निर्माण किया जाता था। जिसमे प्रवेश के लिए एक विशाल द्वार होता था। यह प्रासाद प्राकार महल को दोहरी सुरक्षा प्रदान करता था।

(3) राज प्रासाद तथा नागरिक शालाएं कई मंजिलों की बनाई जाती थी।

(4) राज प्रासाद एवं नागरिक शालाओं के निर्माण में स्तम्भो का प्रयोग किया जाता था। इसके भूमितल में स्तम्भ युक्त मण्डप होता था। भूमितल के स्तम्भों पर प्रथमतल इसके ऊपर (द्वितीय तल) तथा सबसे ऊपर स्तम्भो पर त्रितल (तृतीयतल) आधारित होते थे। इन स्तम्भो के प्रयोग का उद्देश्य न सिर्फ विभिन्न तलों को आधार प्रदान करना था, अपितु इनके निर्माण का उद्देश्य नीव से लेकर छत तक प्रासाद को ठोस मजबूती प्रदान करना भी था। भवन निर्माण की उनकी तकनीकी योग्यता कितनी ऊँचाई पर पहुंच चुकी थी, इस तथ्य का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आज भी इस प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग भवन निर्माण में बहुलांश किया जाता है।

---

[29] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0 स0 12, 50ए तथा 63।

(5) प्रासाद के सबसे ऊपरी तल पर बडे–बडे मण्डप बने होते थे, जिनके सामने खुला स्थान होता था। किन्ही प्रासादो के ऊपरी तल पर तीन तरफ विशाल मण्डल का निर्माण किया जाता था तथा सामने की ओर बीच मे आगन की तरह खुला स्थान होता था।[31]

(6) भवनो के सामने प्राय· आलिन्द का निर्माण किया जाता था जिसके सामने वेदिका का निर्माण होता था।

(7) भवन के सबसे ऊपरी छत पर चारो तरफ से वेदिका का निर्माण किया जाता था। इन वेदिकाओं के निर्माण मे काष्ठ शिल्प की अनुकृति साफ झलकती है।[32]

(8) राज प्रसादों एवं अन्य नागरिक शालाओ के ऊपरी तलों मे गावाक्षों का अंकन दृष्टिगोचर होता है ये चैत्य प्रकार के गावाक्ष है। कही–कही अपवाद स्वरूप आयताकार गावाक्ष का भी निर्माण किया जाता था।[33] इन चैत्य गावाक्षों के सामने मेहराबदार, इनके किनारे आगे के तरफ निकले हुए दर्शाये गये है। कभी–कभी इन गावाक्षो के मध्य जाली जैसी आकृति प्राप्त होती है।[34]

(9) छत प्रायः गज पृष्ठाकार वेसर शैली में बनाई जाती थी, किन्तु कही–कही अपवाद स्वरूप समतल छत के उदाहरण भी प्राप्त होते है।[35]

(10) प्रासाद के ऊपरी तल पर पहुंचने के लिए सोपान का निर्माण किया जाता था।

---

30 बरूआ, बी0एम0, चि0 17 डी, 41।

31 दे चि0 फ0स0 26 (वायी तरफ निर्मित प्रसाद की उपरी मजिल) माशर्ल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0 स0–61 2।

32 दे0 चि0 फ0 स0 21 (क्रमानुसार नीचे से दूसरा दृश्य मे निर्मित भवन की वेदिकाए), चि0 फ0स0 24 (भवन की वेदिकाएं)।

33 दे0 चि0फ0 स0–30, राय, अनामिका, अमरावती, चि0फ0स0 98।

34 राय, अनामिका, अमरावती स्तूप, भाग एक चि0फ0स0 185 (यहां तीन गवाक्षो का अंकन हुआ है जो चैत्य प्रकार के है दो छोटे गवाक्ष नीचे बनाये गये हैं जिनके मध्य जाली जैसी आकृति निर्मित है। इनके ऊपर मध्य मे एक बडा गवाक्ष का अंकन है इसके मध्य भी ठीक इसी प्रकार की जाली का अकन है।

35 दे0 चि0फ0सं0–20 (सबसे उपर दाहिनी तरफ निर्मित नागरिक शाला की छत, चि0फ0सं0–22 (मध्य मे निर्मित आलिन्द की छत), चि0फ0स0–21 (दाहिनी तरफ निर्मित भवन के द्वितीय तल पर वायी तरफ निर्मित छत), चि0फ0स0 18, (दाहिनी तरफ निर्मित द्वार कोष्ठक की छत)।

राजा प्रसाद के निर्माण के साथ–साथ नगरो मे राजमार्गों का भी निर्माण किया जाता था ये राज मार्ग पर्याप्त चौडे बनाए जाते थे। नगरो में बाजार भी होते थे जहां नागरिक अपनी आवश्यकता की वस्तुएं खरीदते थे।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्य नगर विन्यास के अतिरिक्त नागरिको एव नगर स्त्रियो के वेश विन्यास पर भी पर्याप्त प्रकाश डालते है। आलोच्य कलात्मक साक्ष्यो के वेश विन्यास एव अलकरण की विवेचना के क्रम मे उचित परिधान एव अनुकूल आभूषणो के वहुश उपयोग एव प्रचलन के पर्याप्त साक्ष्य मौजूद है।

जहाँ तक वस्त्र एव परिधान का सम्बन्ध है इनमे अन्तरीय अथवा अधोवस्त्र, उत्तरीय कायबन्ध तथा शीर्ष पर पगडी (उष्णीष) का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें अन्तरीय अथवा अधोवस्त्र का प्रयोग शरीर के कमर के नीचे के भाग को ढकने के लिए किया जाता था। यह एक सादा वस्त्र होता था जिसको कमर मे लपेट कर पहना जाता था। इसका एक छोर दोनों जघों के बीच से पीछे लेब्जाकर लाग के रूप में खोस दिया जाता था। लोग अपनी रूचि के अनुसार अधोवस्त्र को टखनो या घुटनों तक अथवा घुटनो के ऊपर केवल जंघों तक ही पहनते थे।

स्त्रियां भी नाभि के नीचे के शरीरांग को ढकने के लिए अन्तरीय (साडी) का प्रयोग करती थी। वस्तुतः साडी की वही हैसियत थी जो पुरुषों के लिए धोती की। प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टंकित स्त्रियॉ साडी को प्राय. कमर के नीचे घुटनों तक अथवा कहीं–कहीं टखनों तक पहने हुए दर्शायी गयी हैं। प्रायः स्त्रियॉ साडी को कमर के चतुर्दिक लपेट कर उसके एक छोर को दोनों जंघों के बीच से पीछे लाकर कच्छ बांध दिया जाता था, किन्तु दूसरा छोर आगे नाभि के नीचे खोस दिया जाता था।

पुरुषों और स्त्रियॉ दोनो अपने धोती तथा साडी को सुदृढ़ रखने के लिए कायबंध का प्रयोग करते थे। यह एक पतला कपडा होता था जिसे कमर के चतुर्दिक धोती अथवा साडी के ऊपर बांध दिया जाता था। ऐसा लगता है कि कायवध के प्रयोग का उद्देश्य साडी अथवा धोती के कसाव को मजबूती प्रदान

करना था। किन्तु इसके अतिरिक्त इसका अलकरण के लिए भी प्रयोग जान पडता है, इसके निर्माण मे प्रयुक्त पटका लहरियादार होता था।[36] जिसमे मनके अथवा मोती पिरोये जाते थे।[37] कभी–कभी इन पटकों को कमरबन्ध मे खोस दिया जाता था, जो दोनों पैरों के बीच लटकता रहता था।[38]

अपने शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिए प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टकित नागरिक एवं नगर स्त्रिया (पट अथवा शाल) का प्रयोग करती थी । यह प्राय· शरीर के ऊपरी हिस्से पर ओढ जाने वाला वस्त्र था। लोग अपनी रूचि के अनुसार पट अथवा शाल का उपयोग विविध प्रकार से करते थे। पुरूषो की तरह स्त्रियां भी उत्तरीय का प्रयोग करती थी। ये प्राय. शाल अथवा चादर को पीठ की ओर फैलाकर दोनो कधो पर रख दिया जाता था। किन्तु यहॉ उल्लेखनीय है कि सामान्यतया उत्तरीय का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता था। इसे लोग अवसर विशेष पर ही करते थे अन्यथा शरीर का ऊपरी हिस्सा सामान्यतया खुला ही रखा जाता था।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के कलात्मक साक्ष्य नागरिको के शीश पर वृहदाकार पगडी (उष्णीष) तथा नगर स्त्रियों द्वारा शीर्ष पर ओढनी धारणा किये हुए दिखाया गया है। इस समय तत्कालीन नागरिकों के शीश पर अत्यन्त आकर्षक एव विभिन्न प्रकार की वृहदाकार पगडी दिखाई देती है। इसे प्रायः लोग शीश के चतुर्दिक एक लम्बे पटकों कई तहों में लपेटकर इसप्रकार से बांधते थे कि उनके शीश के मध्य अथवा किनारे अथवा शीर्ष पर फुल्ले (लट्टू) की आकृति बन जाती थी। लोग अपनी सामर्थ्य अथवा रुचि के अनुसार सादी[39] अथवा कामदार अलकृत[40] पगडियां धारण करते थे। कुछ धनी एवं समृद्ध लोगों की पगडियॉ आभूषणों से अलंकृत हुआ करती थी। पगडिया की विविधता एव उनकी आकर्षक आकृतियो को देखकर इनके प्रति लोगों की रुचि एवं चयन के विशेष सजगता का बोध होता है।

---

36 बरूआ, बी0एम0 चि0स0–73।
37 वही, चि0स0 –72।
38 वही, चि0सं0–72, 73, 74, 75 76 (स्त्रियो द्वारा), 58, 60, 61,62, 63, 64, 65 (पुरूषों द्वारा)
39 मोती चंद, 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0–66, चि0सं0–29।
40 वही, पृ0 66, चि0सं0 25, 36 और 43।

स्त्रियॉ अपने शीर्ष पर ओढनी धारण करती थी, ये ओढनिया सादी तथा कामदार दोनो तरह की होती थी। ओढनिया को स्त्रिया प्राय· माथे पर रखती थी जो पीछे कभी–कभी कमर तक लटकती रहती थी।

इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध कला मे उत्टंकित नगर तथा नगर–जीवन के दृश्यो के अवलोकन से यह निष्कर्षित होता है कि सामान्यतः स्त्री और पुरुष चार प्रकार के वस्त्रो का प्रयोग करते थे।

(1) अन्तरीय (धोती अथवा साडी)

(2) कायबंधन (उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अलावा इसको धारण करने का उद्देश्य अलकरण भी प्रतीत होता है)

(3) उत्तरीय (पट अथवा शाल) इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता था।

(4) शिरोवस्त्र (पगडी अथवा ओढनी)।

इन चार वस्त्रो के अतिरिक्त प्रारम्भिक बौद्ध कला मे कही–कही कोट तथा विभिन्न प्रकार के टोपियो का अंकन प्राप्त होता है। इस प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग निश्चय ही विदेशी नागरिको द्वारा धारण किया जाता था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन समय मे कुछ विदेशी भी आकार भारतीय नगरो में रहने लगे थे, वे निश्चय ही गांवों की अपेक्षा नगरों में रहना अधिक पसंद करते रहे होंगे।

दूसरी तरफ नागरिकों एवं नगर स्त्रियों द्वारा क्रमश· शरीर का उपरी भाग को अनावृत्त ही दर्शाया गया है। इसका कारण क्या था? सम्भवतः तत्कालीन पर्यावरण एवं समसामयिक मौसम की गर्मी का प्रभाव रहा होगा जिसके कारण नागरिको एवं नगर स्त्रियों द्वारा शरीर के पूरे भाग पर कम वस्त्रों को दर्शाया गया है। इन दृश्यो को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन नगरों में पर्दा जैसी कोई चीज नहीं थी। .केवल मात्र एक उदाहरण अवगुंठन का प्राप्त होता है यह सम्भवतः विदेशी स्त्री है।

वस्तुत: वस्त्रो के कमी को आभूषण के बहुलाश प्रयोग के द्वारा पूर्ति किया गया जान पडता है। अलकरण के विवेचन के क्रम मे शरीर के विभिन्न अगो पर आभूषणो के बहुश: प्रयोग एवं चलन के प्रमाण प्राप्त होते है। इन आभूषणो मे माथे पर धारण किये जाने वाले विभिन्न आभूषण एक अथवा अनेक लडियो से निर्मित हार, कठी, हाथ मे चूडियॉ, कगन, बाजूबन्ध, कटिप्रदेश की अनेक प्रकार की मेखलाए तथा पैर मे धारण किए जाने वाले आभूषणो का उल्लेख किया जा सकता है। तत्कालीन कला में विशेष कर अमरावती की कला में मोतियों से निर्मित आभूषणो की भरमार दिखाई देती है। सम्भवतः इस समय इसकी अधिकता रोम के साथ हो रहे भारत के व्यापार के कारण था।

तत्कालीन कलात्मक साक्ष्यों के अवलोकन के पश्चात् यह विदित होता है कि इस समय स्त्रियॉ पुरुषों की अपेक्षा अधिक आभूषण धारण करती थीं।[41] जैसे माथे, कटि तथा पैरों के आभूषण पर प्रायः स्त्रियों का एकाधिकार प्रतीत होता है। उत्टकित दृश्याकनो मे नागरिको को इन विशिष्ट शरीरागों पर किसी प्रकार का आभूषण पहने हुए नही दर्शाया गया है। इससे यह निष्कर्षित होता है कि इन शरीरांगों पर आभूषण धारण करने की अभिरुचि पुरुष वर्ग मे नहीं थी।

इन आभूषणों के विविध प्रकारो को देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन नागरिक समाज में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण बहुत अधिक था। निश्चय ही अलकारों के निर्माण में एक कुशल एवं दक्ष कलाकार की आवश्यकता थी। इन आभूषणो को देख कर तत्कालीन नगरों में शिल्प के समुन्नत अवस्था का अनुमान किया जा सकता है।

जहॉ तक इनके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री का सम्बन्ध है, देखने से ये आभूषण एक जैसे प्रतीत होते है, किन्तु निश्चय ही इनके निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री में अन्तर रहा होगा। उच्चवर्गीय लोगों के आभूषणों में स्वर्ण, हीरे, जवाहरात, मोती विभिन्न प्रकार के रत्नों सोने तथा चॉदी का प्रयोग किया जाता रहा

---

[41] कनिघम, ए० द स्तूप ऑव भरहुत, पृष्ठट–33।

होगा जबकि निम्न वर्ग के लोगो के आभूषण मनकों, हाथी दॉत, विविध पत्थरो तथा टेराकोटा इत्यादि से बनाये जाते रहे होंगे।

प्रारम्भिक बौद्ध कला के अनुशीलन से ऐसा लगता है कि तत्कालीन नागरिक एव नगर स्त्रियॉ केवल आभूषणो के प्रति ही आकर्षित नहीं थे अपितु अपने को और अधिक सुन्दर बनाने के लिए वे अपने बालो को विभिन्न प्रकार से प्रसाधित एव सज्जित करते थे। नागरिकों के केश विन्यास की सुन्दर झाकी प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगर दृश्यों मे उपलब्ध है। कलात्मक साक्ष्यों के अवलोकन से स्त्रियो के केश विन्यास की निम्नलिखित शैलियो से हम अवगत होते है–

(1) प्राय स्त्रियों के लम्बे बाल होते थे जिसे वे पीठ पर लटका कर कुण्डली वाली गांठे बाध देती थी।

(2) कुछ स्त्रियॉ बालो को पीछे की ओर सॅवार कर पीठ लहराता हुआ खुला छोड देती थी।

(3) कभी–कभी बालो के शीर्ष पर एकत्र करके उसे दो जुडे बनाकर दिया जाता था। सामान्यतया इस प्रकार के केश विन्यास में बॉयी ओर का जूडा बडा तथा दाहिनी ओर का छोटा हुआ करता था।

(4) कुछ स्त्रिया बाल को सॅवार कर गर्दन के नीचे उनको एक अथवा दो चोटियों में गूॅथ देती थी। इस प्रकार बाल संवारने की प्रथा आज भी उत्तर भारत में लडकियों मे आम रूप से प्रचलित हैं।

(5) कुछ स्त्रियॉ बालों को शीर्ष पर एकत्र करके उन्हे गाठदार बना देती थी। उसे व्यवस्थित रखने के लिए पट्टे से बाध दिया जाता था।

(6) कभी–कभी बाल को सवार कर मोर पंख के आकार का बना दिया जाता था।

स्त्रियों के समान बाल को सवारने की नानाविधि नागरिकों में भी दृष्टिगत होती है–

(1) पुरूष भी लम्बे बाल रखते थे जो पीछे गर्दन की तरफ लटकता रहता था।

(2) कभी—कभी पुरुष अपने बाल को आगे से पीछे की तरफ करके मुडावदार और घूघराला कर लेते थे।

(3) कभी—कभी बाल को शीर्ष पर एकत्र करके उसे अण्डे के आकार का बना दिया जाता था। यह सामान्यतया बच्चो मे लोकप्रिय था।

(4) कभी—कभी पुरूष के केश शीर्ष के मध्य से विभाजित करके दोनो तरफ कनपट्टियों एवं गालो पर फैले हुए एवं भरभरे ढंग से सवरे हुए दृष्टिगत होते है।

इस प्रकार तत्कालीन नगरों मे विविध प्रकार के केश विन्यास की विधि प्रचलित थी निश्चय ही केश को प्रसाधित करने मे तत्कालीन नागरिक तेल इत्यादि का प्रयोग करते रहे होंगे।

प्रारम्भिक बौद्ध कला मे दृश्याकित नगर दृश्यो के अवलोकन से मनोरजन के विविध प्रकारों से तत्कालीन समाज की जीवन्तता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इनमे जल क्रीडा, उद्यान क्रीडा, द्यूतक्रीडा नृत्य एव संगीत तथा विविध प्रकार के वाद्य यन्त्रों के विषय मे जानकारी प्राप्त होती है।

प्राय: नागरिकों के मनोविनोद के लिए नगरों मे जलाशय बने होते थे जिसमे प्राय नागरिक अपना मनोरंजन करते थे। इसमे स्नान करना, तैरना, नाव खेना इत्यादि के द्वारा अपना मनोरजन करते थे। जलक्रीडा का ही एक अंग पद्यमतडाक क्रीडा हुआ करता था। जिसमे कमल, कुमुदनी से खिले तालाब में लोग मनोरजन के लिए जाते थे। यह क्रीडा राजाओं और रानियों में विशेष लोकप्रिय जान पडता है। इसमें ये लोग हाथियों पर बैठकर तडागों मे जाकर स्नान, तरण एवं पद्म पुष्पो को तोडकर प्रसन्न होते थे।[42]

---

[42] मार्शल तथा फूशे, पूर्वोक्त, चि0फ0सं0 79, 102।

उद्यान क्रीडा भी मनोरजन का एक लोकप्रिय साधन था प्राय. नागरिकों के मनोविनोद के लिए नगरो मे उद्यान लगाये जाते थे, जिसमें नागरिक मनो विनोद के निमित्त जाया करते थे। इसमे पुष्प चयन एवं शालभन्जिका विशेष रूप से लोकप्रिय था। युवतिया उद्यान मे जाकर वृक्षो से पुष्पों को तोडकर उससे अपने को अलकृत कर प्रफुल्लित होती थी। इसमे कदम्ब अथवा अन्य वृक्षो से पुष्पो का चयन किया जाता था। सॉची की कला में एक स्त्री पाटलि वृक्ष से पुष्प तोडते हुए अकित है। 'अवदान शतक' तथा 'निदान कथा' से भी शालभजिका उत्सव मनाने का मनोरम विवरण प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त दोहद क्रीडा भी तत्कालीन नागरिकों के मनोरजन का एक साधन था। यह क्रीडा स्त्रियों में विशेष रूप से लोकप्रिय प्रतीत होती है। इस क्रीडा में सुन्दरियॉ वृक्षों के पास जाती थी और उनका अलिगन करके अथवा उन पर पदाघात करके, उन पर अपने सुकोमल मुख से मधु की कुल्या करके या उनके नीचे नृत्य करके उन्हें पुष्पित होने का आह्वान करती थी। प्रारम्भिक बौद्ध कला के पुरावशेषो मे दोहद क्रीडा के विविध रूपो का अंकन मिलता है।

द्यूत क्रीडा भी तत्कालीन नागरिकों के मनोरंजन का एक प्रमुख साधन प्रतीत होता है। प्रारम्भिक बौद्ध कला के पुरावशेषो में इस क्रीडा के संकेतक साक्ष्य मौजूद है, इसमे एक फलक होता था जिस पर कतारो में वर्गाकार खाने बने होते थे। 'पासा' जो वर्गाकार होता था, को फेंक कर इस खेल को खेला जाता था जैसा कि भरहुत तथा बोध गया के प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टकित दृश्यो से स्पष्ट है।

जहॉ तक नृत्य एव संगीत के द्वारा मनोरजन का सवाल है प्रारम्भिक बौद्ध कला में उत्टकित दृश्यांकनों मे नृत्य एव वाद्य यत्रों के समान रूप के साथ नागरिक अपना मनोरंजन करते हुए प्रदर्शित हैं। भरहुत, सॉची, अमरावती तथा नागार्जुन कोण्डा की कला में उत्कीर्णित संगीत नृत्य सम्बन्धी अनेक दृश्यों से तत्कालीन सांस्कृतिक संस्थाएँ तथा इन कलाओं के प्रति अत्यधिक जागरूक व संवेदनशील समाज का वृत्त चित्र के समान प्रतिबिम्बित हुए हैं।

नृत्य का सम्बन्ध केवल मात्र मनोरंजन तक की सीमित नहीं था जैसा कि सुस्मिता पाण्डेय का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि "यदि उचित प्रकार से सगीत की उत्पत्ति हो तो वह केवल मनोरजन मात्र ही नही होगा, अपितु ध्यान तथा अर्चना भी होगा।[43] यही कारण है कि प्रारम्भिक बौद्ध कला मे नृत्य का आयोजन न सिर्फ आनन्दोत्सव मे हुआ" अपितु चाहे बुद्ध की 'अवक्रान्ति' प्रसग हो अथवा 'महाभिनिष्क्रमण' सम्बोधि प्राप्ति हो अथवा स्तूप की वन्दना का सन्दर्भ सभी मे देवनाग, अप्सरा, गन्धर्व, नरनारी, बाल, अवला, भारतवासी और विदेशी सभी अपनी असीम प्रसन्नता, अनन्य श्रद्धा व भक्ति का ज्ञापन नृत्य व सगीत से करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं।

इस नृत्य के साथ विविध वाद्य यन्त्रो का उत्कीर्णन तत्कालीन बौद्ध कला मे हुआ है जो एकल वाद्य अथवा नृत्य की सगीत या गीत एव सगीत की पार्टियो मे वाद्य के रूप मे प्रयोग किये जाते थे। इन वाद्य यन्त्रो मे वीणा, गिटार, ढोलक, मृदग, नगाडा, डफ, वासुरी तथा शख का उल्लेख किया जा सकता है।

इस प्रकार तत्कालीन नागरिक नृत्य एव विविध वाद्य यन्त्रों के संयोजन के साथ अपना मनोरजन करते थे उत्टंकित दृश्यों से तत्कालीन समाज की जीवन्तता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

OOO

[43] पाण्डेय गोविन्दचन्द्र (मु0 सम्पादक) भारतीय कला और संस्कृति प्रथम संस्करण, 1995, इलाहाबाद, शोध पत्र 'भारतीय संस्कृति मे सगीत–नृत्य परम्परा सुस्मिता पाण्डेय, पृष्ठ–82।

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) मूलभूत संस्कृत, पालि तथा प्राकृत आदि ग्रन्थ

1 अग्निपुराण — सम्पादक–हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्राणालय, पुण्याख्यपत्तन, शालिवाहन, शकाब्द, 1922।

2. अथर्ववेद — सम्पादक – रघुबीर, लाहौर – 1936–41।

3 अर्थशास्त्र — सम्पादक – यौली, प्रकाशक – मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1923।

4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् — सम्पादक–शारदारजन रे, प्रकाशक – दी सिटी बुक सोसायटी, कलकत्ता, 1908।

5. अमरकोश — सम्पादक–पण्डित शिवदत्त, प्रकाशक, निर्णय सागर मुद्राणालय बम्बई, 1929।

6 आश्वलायन गृहसूत्र — सम्पादक–महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस त्रिवेन्द्रम, 1923।

7. अष्टाध्यायी . सम्पादक–सतीश चन्द्र बसु, बनारस, 1897।

8. कामसूत्र — सम्पादक – पी० वी० काणे, तृतीय सस्करण, बम्बई, 1929।

9. कथासरित्सागर — सम्पादक–पण्डित दुर्गाप्रसाद, निर्णय सागर, यन्त्रणालय, बम्बई, 1948।

10. गौतम धर्म सूत्र : सम्पादक–हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम यन्त्रणालय, पुण्याख्यपत्तन, 1910।

11. दिव्यावदान : सम्पादक– ई० बी० कावेल, कैम्ब्रिज, 1886।

12. नवसाहसकचरितम् . सम्पादक – प० वामन शास्त्री, प्रकाशक – गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुक डिपो, बम्बई, 1815।

13 बृहत्सहिता सम्पादक–सुधाकर द्विवेदी, बनारस, 1895।

14 ब्रह्माण्डपुराण . श्री वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906।

15 ब्रह्मपुराण : क्षेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1906।

16 ब्रह्मवैवर्तपुराण श्री वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

17. बौधायन धर्मसूत्र . सम्पादक – श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, 1907।

18 बुद्ध चरितम् · कावेल, आक्सफोर्ड, 1893।

19 मत्सपुराण · सम्पादक – हरिनारायण आप्टे, प्रकाशक – आनन्दाश्रम, मुद्राणालय– पुण्याख्यापत्तन, 1907।

20 मयमत : सम्पादक – गणपति शास्त्री, प्रकाशक–गवर्नमेण्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्, 1919।

21. महाभारत · सम्पादक – विष्णुसुकथकर, 1940।

22. महाभाष्य · सम्पादक – कीलहार्न, द्वितीय संस्करण, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल प्रेस, बम्बई।

23 मार्कण्डेयपुराण श्री वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

24 मालविकाग्निमित्रम् सम्पादक – एस० कृष्णराव, मद्रास, 1930।

25. मानसार · सम्पादक – डॉ० प्र० कु० आचार्य, प्रकाशक – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

26. मिलिन्दपन्हो · सम्पादक – ट्रेकनर, लन्दन, 1880।

27. मृच्छकटिक : सम्पादक – आर० डी० करमारकर, द्वितीय संस्करण, 1950।

28. युक्तिकल्पतरू : सम्पादक – पं० ईश्वर चन्द्र शास्त्री, ओरियण्टल सिरीज, कलकत्ता 1917।

29 रामायण . सम्पादक – टी० आर० कृष्णाचार्य, प्रकाशक – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1905।

30. ललितविस्तार सम्पादक – आर० एल० मित्र, कलकत्ता, 1877।

31 वायुपुराण सम्पादक–राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, 1880।

32 विष्णुधर्मेत्तरपुराण प्रकाशक – क्षेमराज कृष्ण प्रेस, बम्बई, 1934।

33 विष्णुपुराण श्री वेकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई।

34 स्कन्दपुराण प्रकाशक–क्षेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1909।

35 समरांगणसूत्रधार . सम्पादक – गणपति शास्त्री, प्रकाशक – बडौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी, 1924।

36 ऋग्वेद : सायण की टीका सहित, 5 खण्ड, वैदिक सशोधन मण्डल, पूना, 1933–51।

(ख) अनूदित ग्रन्थ

1. ऐतरिय ब्राह्मण : सम्पादक एवं अनुवादक मार्टिन हॉग, 2 भाग, लन्दन 1863।

2. जातक . इ० वी० कावेल, कैम्ब्रिज, 1905।

3. मत्सपुराण . भाग–1 (सेक्रेड बुक्स ऑव द हिन्दूज, भाग–17, अनुवादक–ए० तालुकेदार ऑव अवध, प्रकाशक–दी पाणिनि ऑफिस, भुवनेश्वरी आश्रम, बहादुरगज, प्रयाग, 1916)।

4. मत्सपुराण · भाग–2 (सेक्रेड बुक्स ऑव द हिन्दूज, भाग – 20, अनुवादक– ए० तालुकेदार ऑव अवध, प्रकाशक– दी पाणिनि आफिस, भुवनेश्वरी आश्रम बहादुरगंज, प्रयाग, 1917)।

5 मिलिन्दपन्हो · सेक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट, भाग–35, अनुवादक–रिज डेविड्स प्रकाशक – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1890।

6 शुक्रनीतिसार अनुवादक– विनयकुमार सरकार, सम्पादक–बी० डी० बसु, प्रकाशक–दी पाणिनि अफिस, भुवनेश्वरी आश्रम बहादुरगज, प्रयाग, 1914।

(ग) आधुनिक लेखकों के ग्रन्थ

1 अग्रवाल वी० एस० पाणिनि कालीन भारतवर्ष द्वितीय सस्करण वाराणसी, 1969। भारतीय कला वाराणसी, द्वि० सं० 1977 (पु० मु०)। 1995 (सं० डॉ० पृथ्वी कुमार अग्रवाल) पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।

2 अग्निहोत्री, डॉ० प्रभुदयाल पतंजलि कालीन भारत, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

3. उपाध्याय, डॉ० वासुदेव · प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर (बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी द्वितीय सस्करण, 1989, पटना।)

4 एलिजाबेथ रोजेन स्टोन द आर्ट आव नागार्जुनकोण्डा (प्र०सं०) दिल्ली 1994।

5. कनिंघम, ए० . स्तूप ऑव भरहुत, लन्दन 1879 (हिन्दी अनुवाद भरहुत स्तूप डॉ० तुलसी राम शर्मा) वाराणसी, 1975।

6 काला, एस० सी० : भरहुत वेदिका, इलाहाबाद, 1951।

7. कुमार स्वामी, ए० के० : हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965। अर्ली इण्डियन आर्किटेक्चर पैलेस, इस्टर्न आर्ट, जिल्द, 3, 1931। अर्ली

इण्डियन अकिटेक्चर, सिटिज एण्ड सिटी गेट्स, इस्टर्न आर्ट जिल्द–2, 1930।

8. क्रेमरिश, एस० — द आर्ट ऑव इण्डिया, लदन, 1954।

इण्डियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1981 (प्र० भा० स०)

हेरिटेज ऑव इण्डियन सीरीज (आक्सफोर्ड 1933)।

9 कृष्णमूर्ति के० — नागार्जुनकोण्डा, ए कल्चरल स्टडी, कन्सेप्ट पब्लिसिग कम्पनी, दिल्ली, 1977।

हेयर स्टाइल इन एन्शयेन्ट इण्डियन आर्ट, दिल्ली सदीप प्रकाशन, 1982।

मैटिरियल कल्चर ऑव सॉची, 1983 सदीप प्रकाशन दिल्ली।

10 कृष्णदेव तथा मिश्रा, विजयकान्त : वैशाली एक्सक्वेशस (1950) वैशाली, 1961।

11 कृष्णा राव, बी० बी० · अर्ली हिस्ट्री ऑव द आन्ध्रा कन्ट्री (मद्रास, 1914)।

12 गांगूली, ओ० सी० — इण्डियन आर्किटेक्चर, कलकत्ता, 1928।

13 गोस्वामी, ओ० · द स्टोरी ऑव इण्डियन म्यूजिक (बम्बई, 1961)

14. ग्रूनवेडेल, ए० · बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, लन्दन, 1901 (पु० मु०), वाराणसी, 1974।

15. घोष, ए० : द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला, 1973।

16 घोष, एन०एन० . ऐन अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1935। भारत का प्राचीन इतिहास (अनु०) इलाहाबाद, 1951

17 घूर्ये, जी०एस० इण्डियन कास्ट्यूम, (भारतीय वेशभूषा) बम्बई, 1951

18 जिमर, एच० . दि आर्ट ऑव इण्डियन, एशिया, इट्स माइथॉलॉजी ऐड ट्रासफारमेशस, दो खण्डो मे (पैथिअन बुक्स, न्यूयार्क, 1955)

19 ठाकुर, विजय कुमार अर्वनाइजेशन इन ऐन्शेण्ट इण्डिया, अभिनव पब्लिकेशन, दिल्ली, 1989।

20 डगलस, बैरेट . स्कल्पचर्स फ्राम अमरावती इन द ब्रिटिश, म्यूजियम, (लन्दन, 1954)

21 डे, सी०आर० द म्यूजिक एण्ड म्यूजिकल इन्सट्रूमेन्टस ऑव साउथ इण्डिया एण्ड द दकन (लन्दन 1891)।

22 डेविड्स, रिज बुद्धिस्ट इण्डिया, (9वा संस्करण), वाराणसी, 1970।

23. दत्त नलिनाक्ष अर्ली मोनोस्टिक बुद्धिज्म (दो खण्डो मे), कलकत्ता, 1941, 1945।

24 दत्त, बी०बी० टाउन प्लानिग इन ऐशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1925।

25. दास, ए०सी० : ऋग्वैदिक कल्चर कलकत्ता, 1927।

26 धवालिकर, एम०के० : सॉची–ए कल्चरल स्टडी, येरवा, 1965।

27. पाण्डेय गोविन्द चन्द्र : वैदिक संस्कृति, प्रथम संस्करण–2001 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।,

(मुख्य स०) भारतीय कला और सस्कृति, प्रथम संस्करण, 1995, इलाहाबाद।

© इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद

28 पुरी, बी०एन० — सिटीज ऑव एन्शेण्ट इण्डिया, मेरठ, 1966।

29 फाब्री, सी०एल० — एक्सकेवेन्स एटे नागार्जुनकोण्डा, एनुअल रिपार्ट आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, 1930–34 खण्ड–1 (दिल्ली, 1936)

30 फूशे, ए० — द विगनिग्स ऑव बुद्धिस्ट आर्ट एण्ड अदर एसेज, (एल०ए० थामस और एफ० डब्ल्यू० थामस द्वारा अनुदित) पेरिस, 1917।

31 बर्गेस, जे० : द ग्रेट स्तूप ऐट सॉची कानाखेडा, जे०आर० ए०एस०, 1902।

· नोट्स ऑव अमरावती स्कल्पचर्स (पु०मु०) वाराणसी, 1972।

बुद्धिस्ट स्तूप ऑव अमरावती ऐंड जग्य्पेट लन्दन, 1987।

32 बरूआ, बी०एम० : भरहुत (3 खण्डों मे) कलकत्ता, 1934 (पु०मु०) पटना, 1979।

33. ब्राउन, पर्सी · इण्डियन आर्किटेक्चर : बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू द्वितीय एवं परिवर्धित संस्करण, बम्बई, 1942।

34. बेकोफर, एल० : अर्ली इण्डियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1973 (प्र०भा०सं०)।

35. बैरेट, डी० : स्कल्पचर्स फ्राम अमरावती इन द ब्रिटिश म्यूजियम कलकत्ता, 1926।

36 मलैया, सुधा · चाक्षुस यज्ञ – प्राचीन भारतीय कला मे नृत्य एव संगीत–1997 वसुधा प्रकाशन, भोपाल।

37 मार्शल, जे० मोहन जोदडो एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन, लन्दन, 1931 (3 खण्ड)

. ए गाइड टू सॉची, दिल्ली 1955।

38 मार्शल जे० तथा फूशे, ए० द मान्युमेण्ट्स ऑव सॉची (3 खण्ड) 1940।

39 मिश्र, जी०एस०पी० प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1983, पृ० 77।

40 मिश्र, जयशकर . प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास तृतीय सशो० सस्करण, पटना, 1983।

41 मिश्र, रमानाथ भारतीय मूर्तिकला, दिल्ली, 1978। भरहुत मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, 1971।

42 मिश्र, लालमणी · भारतीय सगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1973।

43. मिश्र, सच्चिदानन्द, · प्राचीन भारत मे ग्राम और ग्राम्य जीवन 1984, पूर्वा सध्या, गोरखपुर।

44 मुखर्जी राधाकमल : भारतीय संस्कृति एवं कला, राजपाल एण्ड सन्स, देलही 1959।

: द शोसल फंगसन ऑव आर्ट, बम्बई 1948।

45 मोक्रिण्डल, जे०डब्लू · ऐशेण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइव्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन (लन्दन, 1877)।

46. मेसी० एफ०सी० : सॉची एण्ड इट्स रिमेन्स 1892। (पु०मु०) 1972

47 मेहता, आर०एन० — प्रि बुद्धिस्ट इण्डिया–ए पॉलिटिकल एडमिनीस्ट्रेटिव, इकोनामिक सोशल एव ज्योग्राफिकल सर्वे ऑव ऐशेन्ट इण्डिया बेस्ड मेनली आन द जातका स्टोरिज बम्बई 1939।

48. मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, इलाहाबाद, 1950।

49 रामाचन्द्रन, टी०एन० — नागार्जुनकोण्डा, 1938, मेम्वायर्स ऑव द आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया न० 71, (दिल्ली 1938)।

50 राय, अनामिका — अमरावती स्तूप· ए क्रिटिकल कम्पेरिजन ऑव इपिग्राफिक आर्टिटेक्चरल एण्ड स्कल्पचरल एविडेन्स, अगम कला प्रकाशन, दिल्ली, 1994 (प्रथम संस्करण)

51 राय, उदय नरायण . प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (द्वि०स०) 1994।

शालभजिका इन द आर्ट, फिलासफी एण्ड लिटरेचर, 1979 (प्र०सं०) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

भारतीय लोक परम्परा में दोहद, 1997 (प्रथम संस्करण) तत्वार्थ प्रकाशन, इलाहाबाद।

52. राव, पी०आर० रामचन्द्र · द आर्ट ऑव नागार्जुन कोण्डा, मद्रास रचना, 1956।

53. रे, निहार रंजन : मौर्य एण्ड पोस्ट मौर्य आर्ट, दिल्ली, 1960।

54. ला, बी०सी० : इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, लन्दन, 1941।

55 लैगहर्स्ट ए०एच० — द बुद्धिस्ट एण्टीक्यूटिज ऑव नागार्जुनकोण्डा मद्रास प्रेसीडेन्सी, एम०ऐ०एस०आई० न०–54 दिल्ली 1938।

56. सरकार, एच० — स्टडीज इन अर्ली बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया, दिल्ली, 1966।

सम आस्पेक्ट्स ऑव बुद्धिस्ट मान्युमेण्टस ऐट नागार्जुनकोण्डा, ए०, आ० अक 19, 1960।

57. सरकार, एच०एण्ड० मिश्रा, बी०एन ० — नागार्जुनकोण्डा (कलकत्ता 1966)

58. सरस्वती, डी०सी० · द एज ऑव इण्डियन स्कल्पचर कलकत्ता 1957

59 सराव, के०टी०एस० · अर्बन सेन्टर्स एण्ड अर्बनाइजेशन ऐज रीफलेक्टेड इन द पलि विनय एण्ड सुत्त पिटकाज, 1990 (प्रथम संस्करण) दिल्ली।

60. सिंह, भगवान — हडप्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य तृतीय सस्करण, 1997 (दिल्ली)।

61. सिंह, बी०पी० . लाइफ इन ऐशेंट वाराणसीः इन एकाउन्ट बेस्ड अन आर्कियोलाजिकल एविडेस, 1985 दिल्ली।

62. सौन्दराजन, के०वी० . मैकेनिक्स ऑव सिटी एण्ड विलेज इन एन्शेन्ट इण्डिया, दिल्ली 1986।

63. शर्मा, जी०आर० : एक्सकेवेसन्स एट कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1949–50 (1969)।

64. शर्मा, रामशरण . प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक सरचनाएँ, नई दिल्ली (1992)। पु०मु० 1993।

प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, (द्वितीय सस्करण) 1993, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, वि० विद्यालय।

65. शिवराम मूर्ति, सी० . इण्डियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1961। अमरावती, स्कल्पचर्स इन द मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूजियम, मद्रास, 1942 (पु० मु०) 1965।

66 हेवेल, ई०वी० इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेण्टिग 1908 तृतीय संस्करण, नई दिल्ली, 1980 (पु०मु०)

(घ) पुरातत्व–सामग्री

1. इण्डस सिविलाइजेशन सर मार्टिमर ह्वीलर, प्रकाशक कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1953।

2 एक्सकेवेशंस ऐट कौशाम्बी · जी०आर० शर्मा, 1949–50 इलाहाबाद (1969)।

3 एक्सकेवेशस ऐट तक्षशिला, ए०एस०आई० 1915 · 16 पृ०1–39

4 एक्सकेवेशस ऐट पाटलिपुत्र, ए०एस०आई० 1912 : 13 पृ० 53–87।

5 एक्सकेवेशस ऐट राजघाट ए०के० नारायण और टी० एन० राय–I–1976, II –1977

6 एक्सकेवेशस ऐट भीटा, ए०एस०आई० 1911 : 12 पृ० 29–95।

7 एक्सकेवेशंस ऐट वैशाली . कृष्णकान्त और विजयकान्त मिश्र, 1950 वैशाली, 1961।

8. एक्सकेवेशस ऐट श्रावस्ती के०के० सिन्हा, 1959, वाराणसी (1967)

(ङ) पुरातत्व–सामग्री

1. टाउन प्लैनिग एण्ड हाउस विल्डिंग एन ऐशेट इण्डिया, इण्यिन हिस्टारिलकल क्वार्टर्ली, के० रंगचारी, 1927, दिसम्बर, 1951।

2 प्राचीन भारत मे नगर निर्माण कला, यू०एन०राय का अनुसधान लेख, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, 1958।

3 सिटी अर्किटेक्चर, यू०एन० राय, उत्तर भारती, जिन्द–8, सं०–2 अगस्त, 1961

4. सिटी आर्किटेक्चर ऐण्ड प्लैनिग इन शुंग, एज, यू०एन० राय का अनुसधान लेख, शुग आर्ट, इलाहाबाद म्यूजियम, इलाहाबाद, 1991।
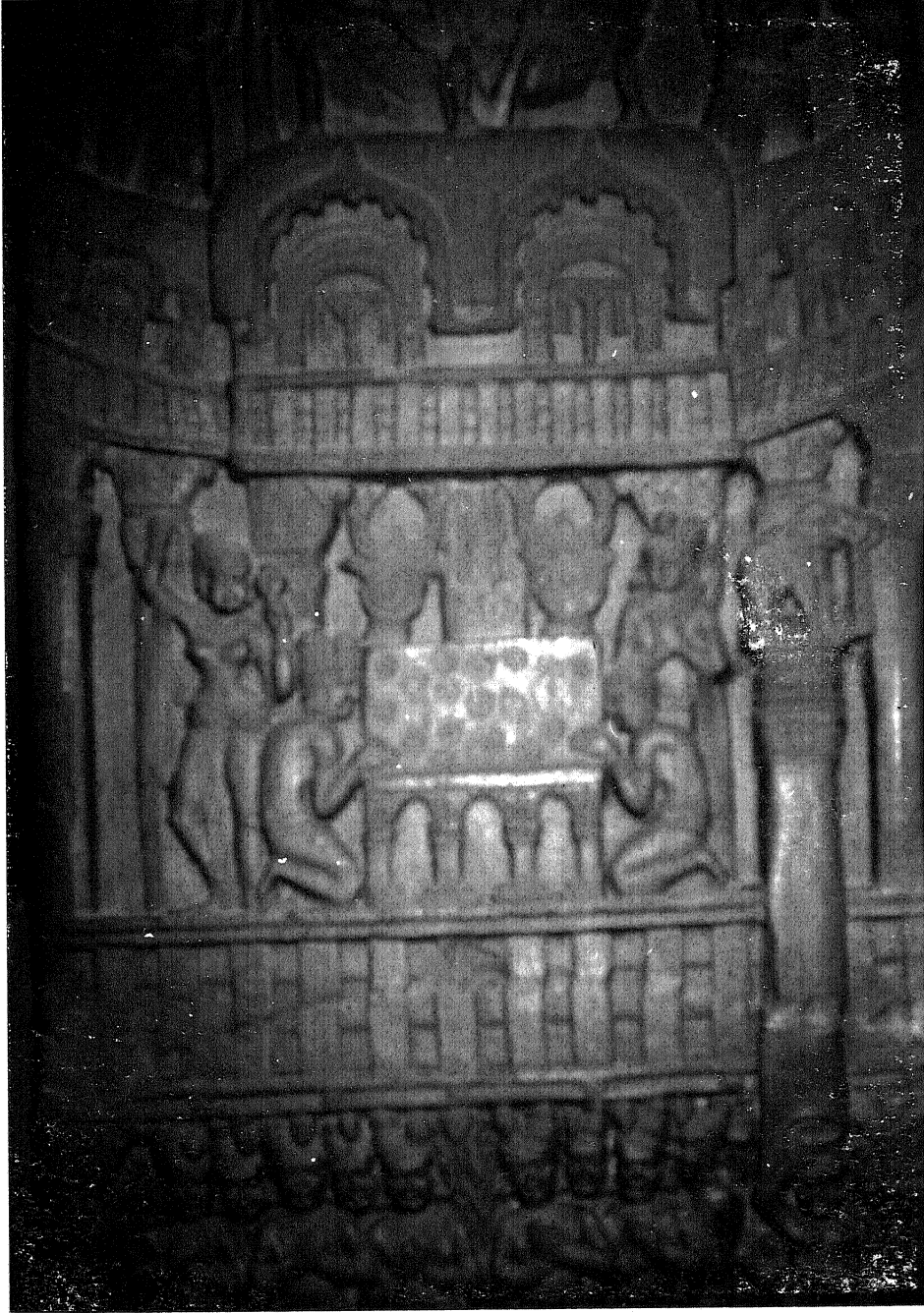
चि०फ०सं० 2. भरहुत स्तूप, प्रसेनजित स्तम्भ, दृश्य (कोलकाता संग्रहालय)
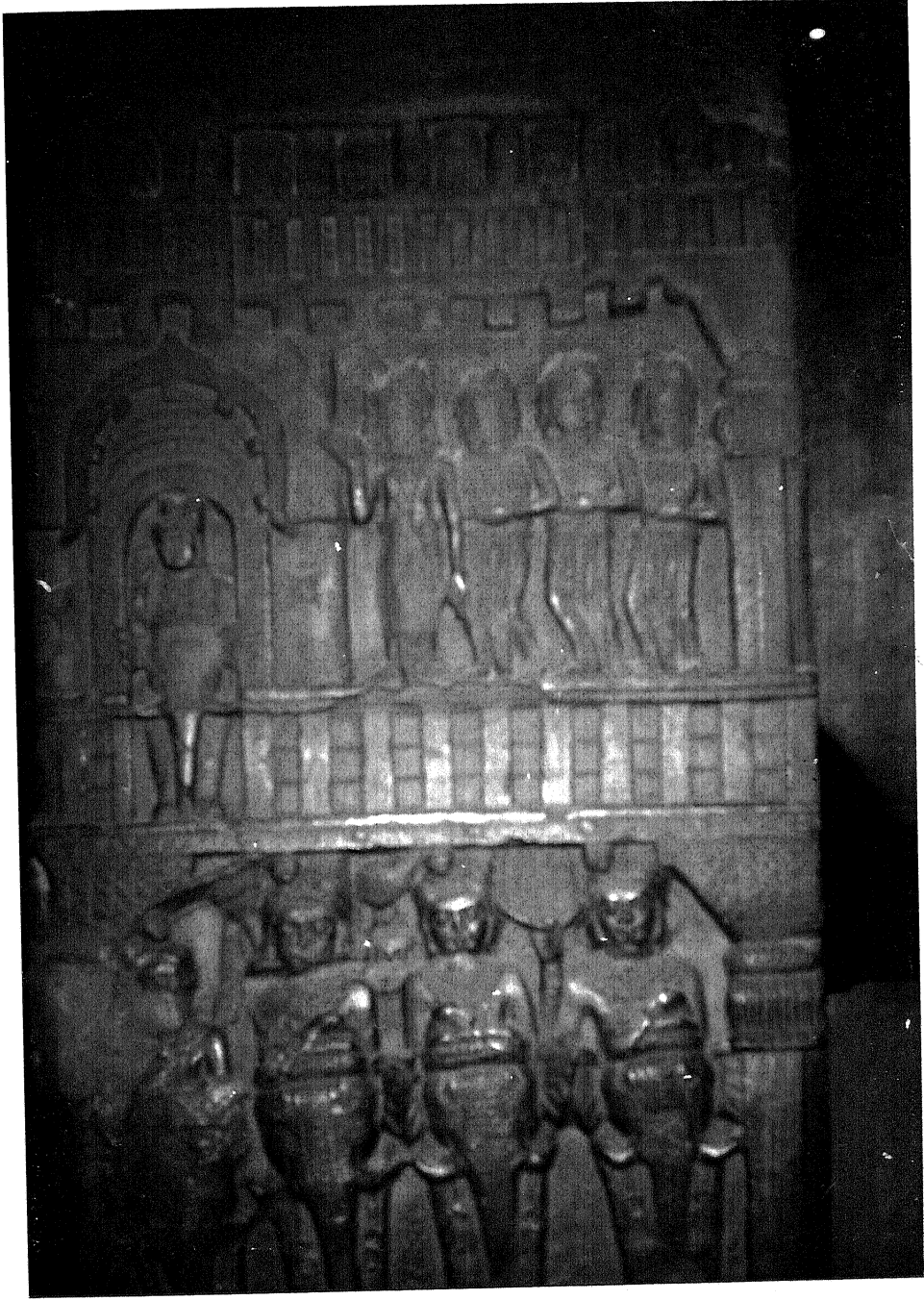
चि०फ०सं० 3. भरहुत स्तूप, ब्रह्मदेव स्तम्भ, (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 4. भरहुत स्तूप के रेलिंग स्तम्भ–फलक पर अंकित माया देवी का स्वप्न दृश्य, (कोलकाता संग्रहालय सं० 93)।

चि०फ०सं० 5. भरहुत स्तूप, रेलिंग स्तम्भ के ऊपरी अर्द्धभाग में अलंकृत चित्रण
(कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 6. भरहुत स्तूप रेलिंग स्तम्भ पर अंकित वैजयंत प्रासाद तथा नृत्य दृश्य
(कोलकाता संग्रहालय, सं० 182)

चि०फ०सं० 7. भरहुत स्तूप, वोधिवृक्ष की ओर जाने वाले रास्ते पर पवित्र अलंकरण (?) (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 8. भरहुत स्तूप, बुद्ध का रत्न चक्र, (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 9. भरहुत स्तूप, जेतवन का क्रय दृश्य, (कोलकाता संग्रहालय)
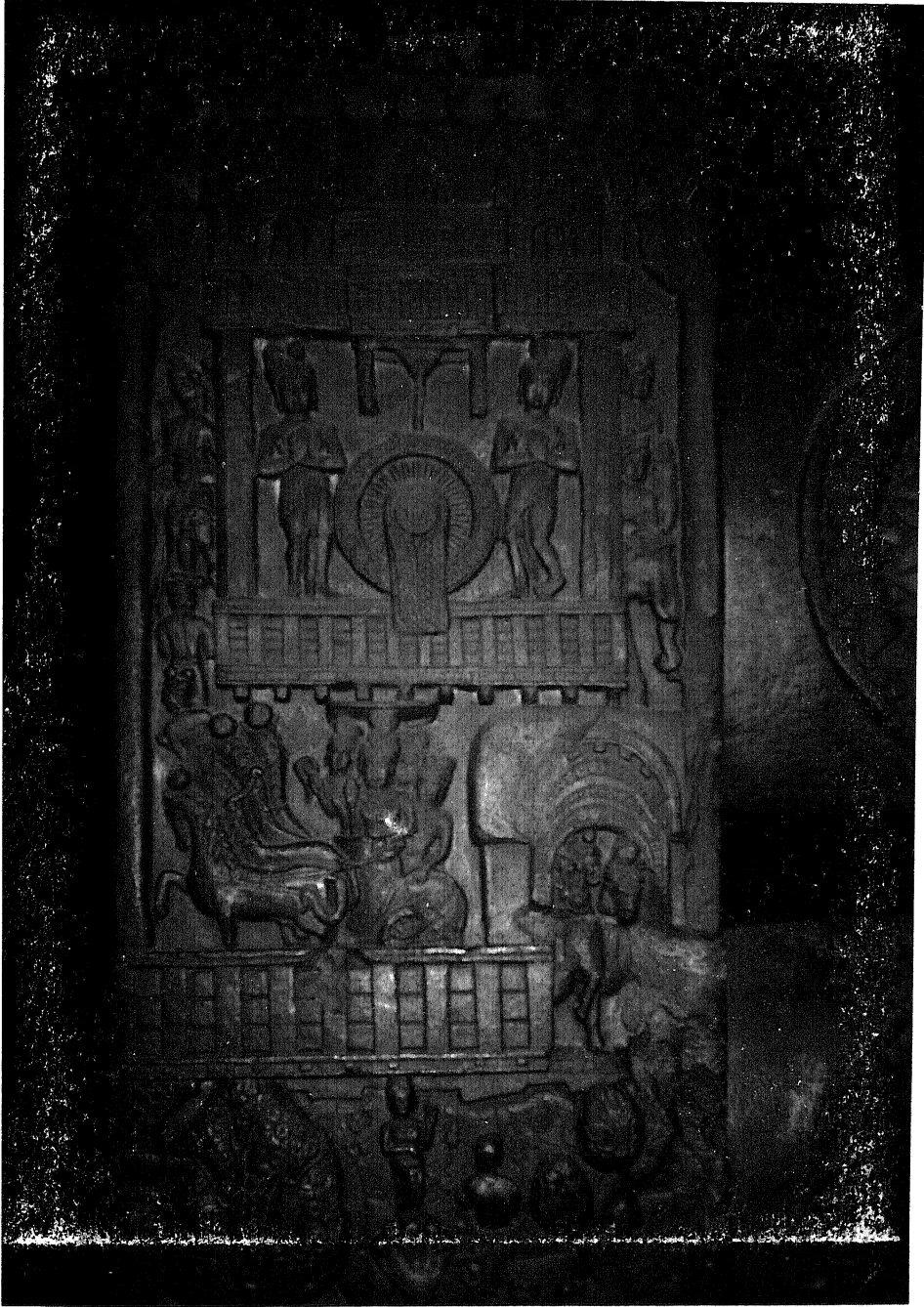
चि०फ०सं० 10. भरहुत स्तूप के प्रसेनजित स्तम्भ पर अंकित दृश्य (कोलकाता संग्रहालय)
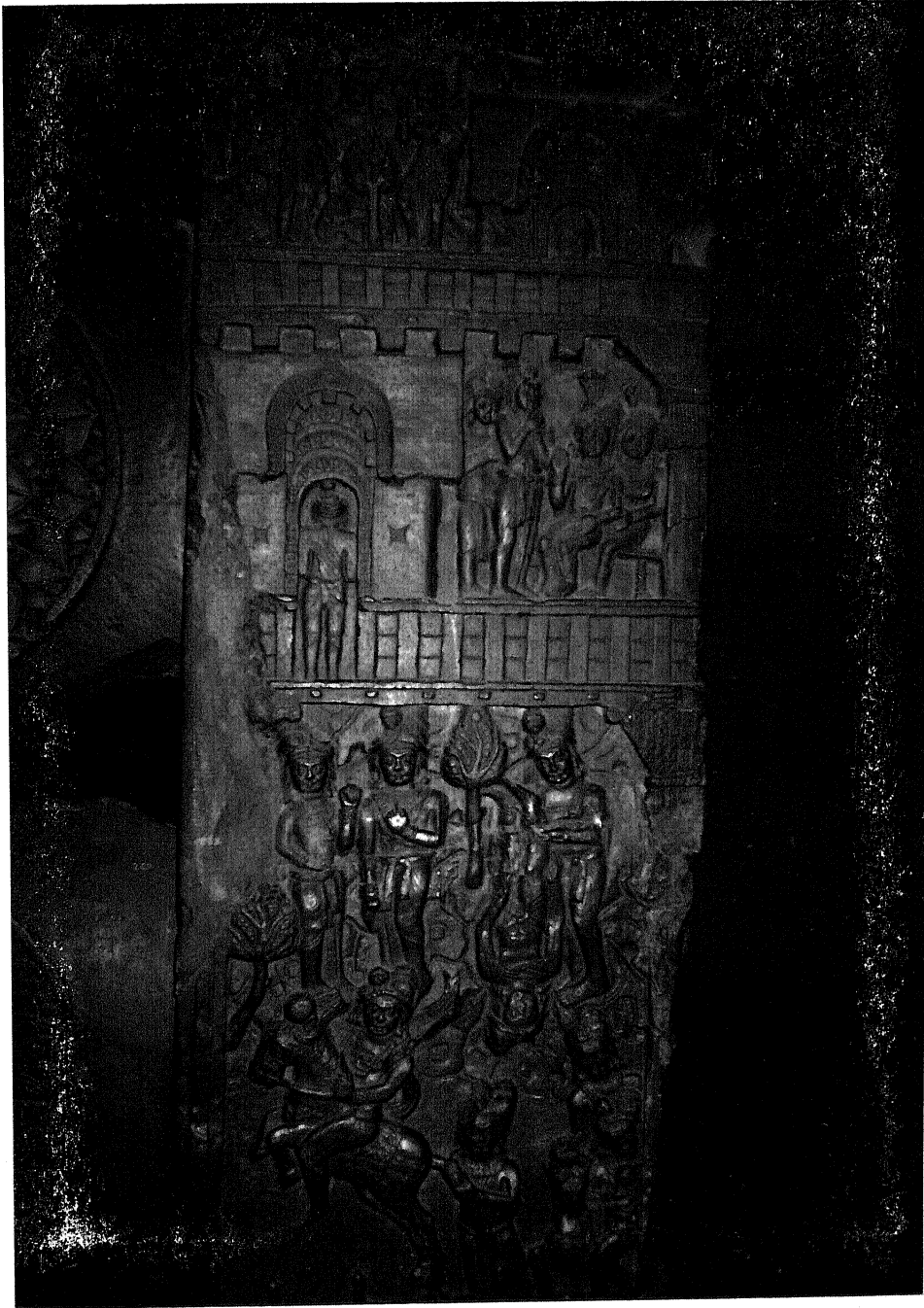
चि०फ०सं० 11. भरहुत स्तूप, विदरपंडित जातक का दृश्यांकन (कोलकाता संग्रहालय)
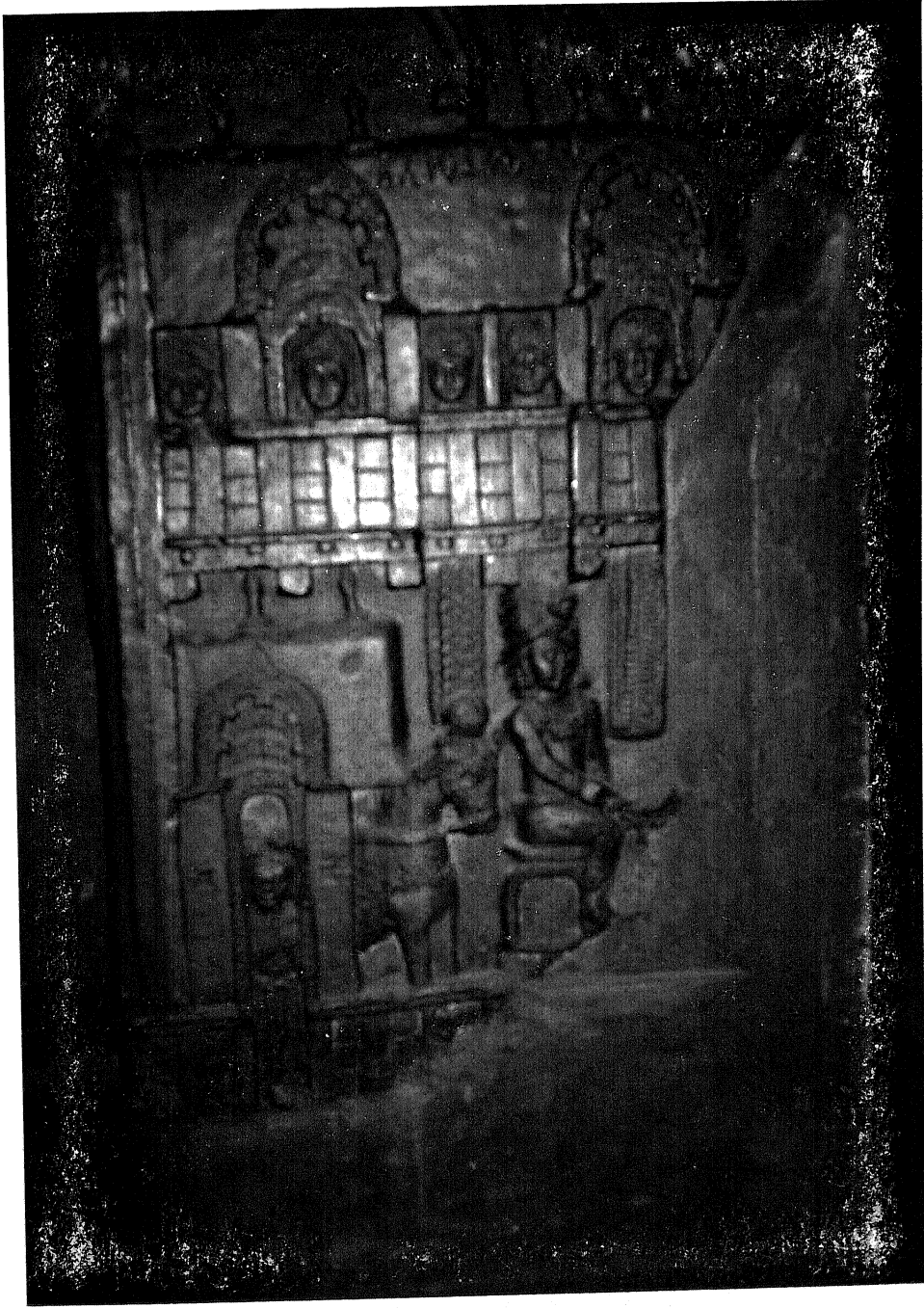
चि०फ०सं० 12. भरहुत स्तूप, विदुरपंडित जातकः कुरू राजा धनंजय का राजप्रासाद
(कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 13. भरहुत स्तूप, नृत्य एवं वादन का दृश्य, © अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चि०फ०सं० 14. भरहुत स्तूप की मुंडेर (कोपिंग) पर अंकित जातक दृश्य (इलाहाबाद संग्रहालय, परावशेष सं० 46)

चि०फ०सं० 15. भरहुत स्तूप के उष्णीष पर अंकित दृश्य (इलाहाबाद संग्रहालय पुरावशेष सं०44)

चि०फ०सं० 16. साँची स्तूप, शालभंजिका, (कोलकाता संग्रहालय)
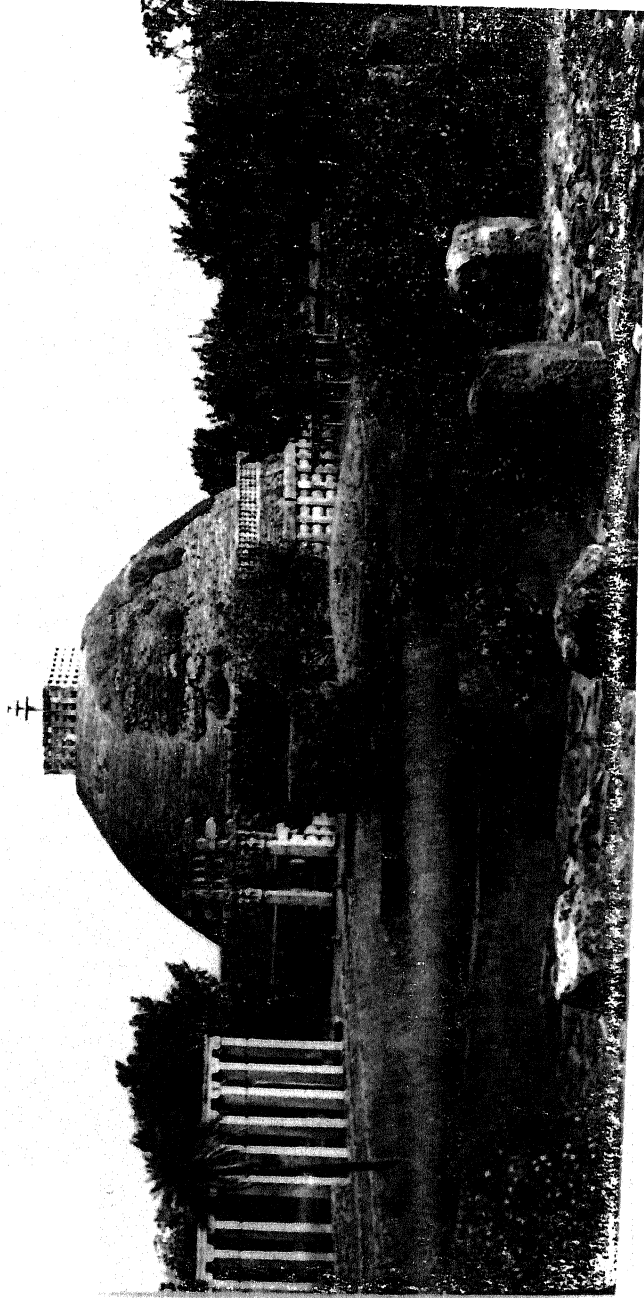
चि०फ०सं० 17. सॉची स्तूप संख्या–1, दक्षिणी तोरण द्वार तथा मन्दिर सं०–18 © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
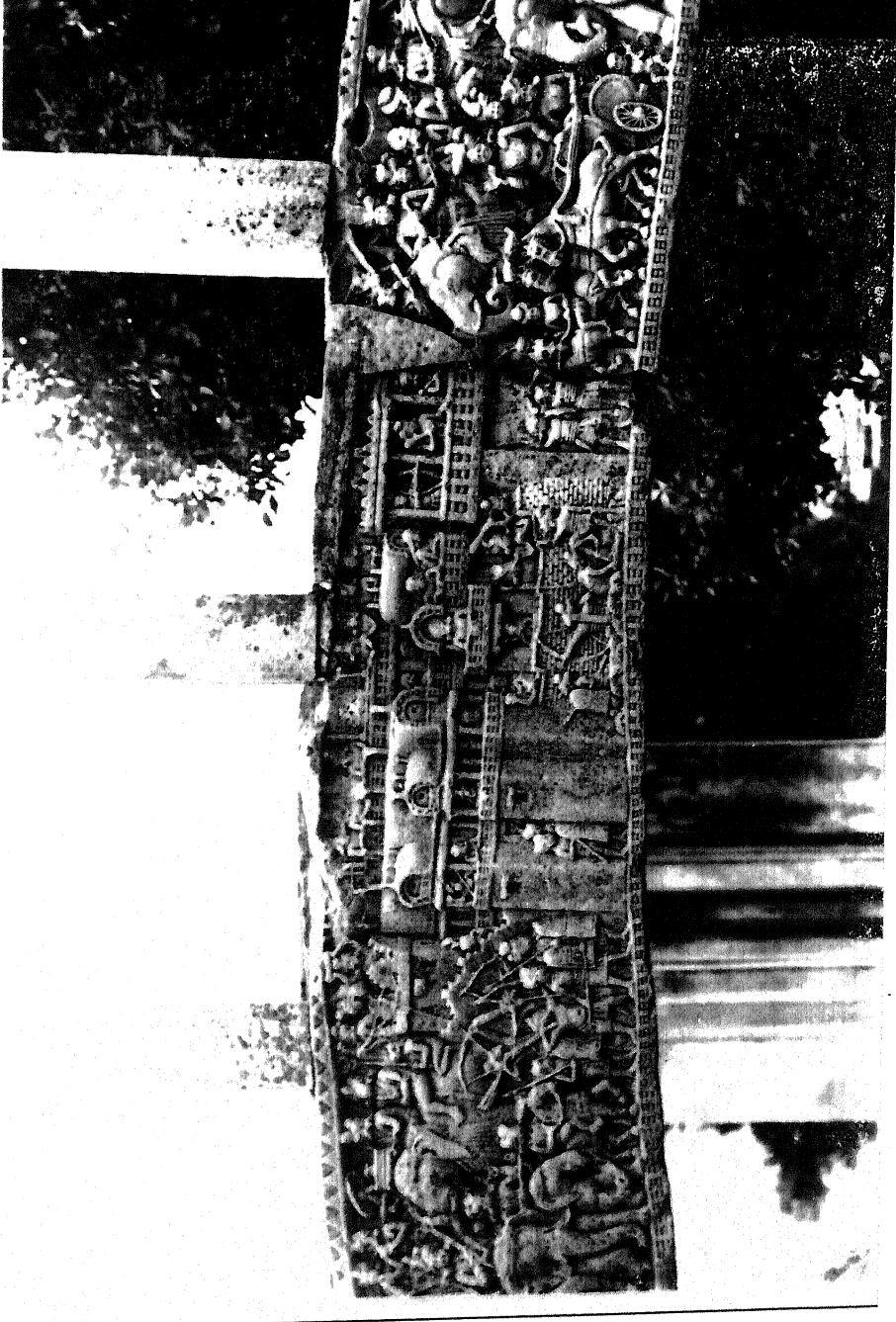
चि०फ०सं० 18. सॉची स्तूप संख्या–1, दक्षिणी तोरण, निचली बड़ेरी पृष्ठतल, कुशीनगर का धतु युद्ध दृश्यांकन © अमेरिका इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चि०फ०सं० 19. सॉची स्तूप संख्या–1 दक्षिणी तोरण, निचली बड़ेरी पृष्ठतल कुशीनगर का वर्हिमुख, धातु युद्ध © अमेरिकन इन्स्टीटयट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
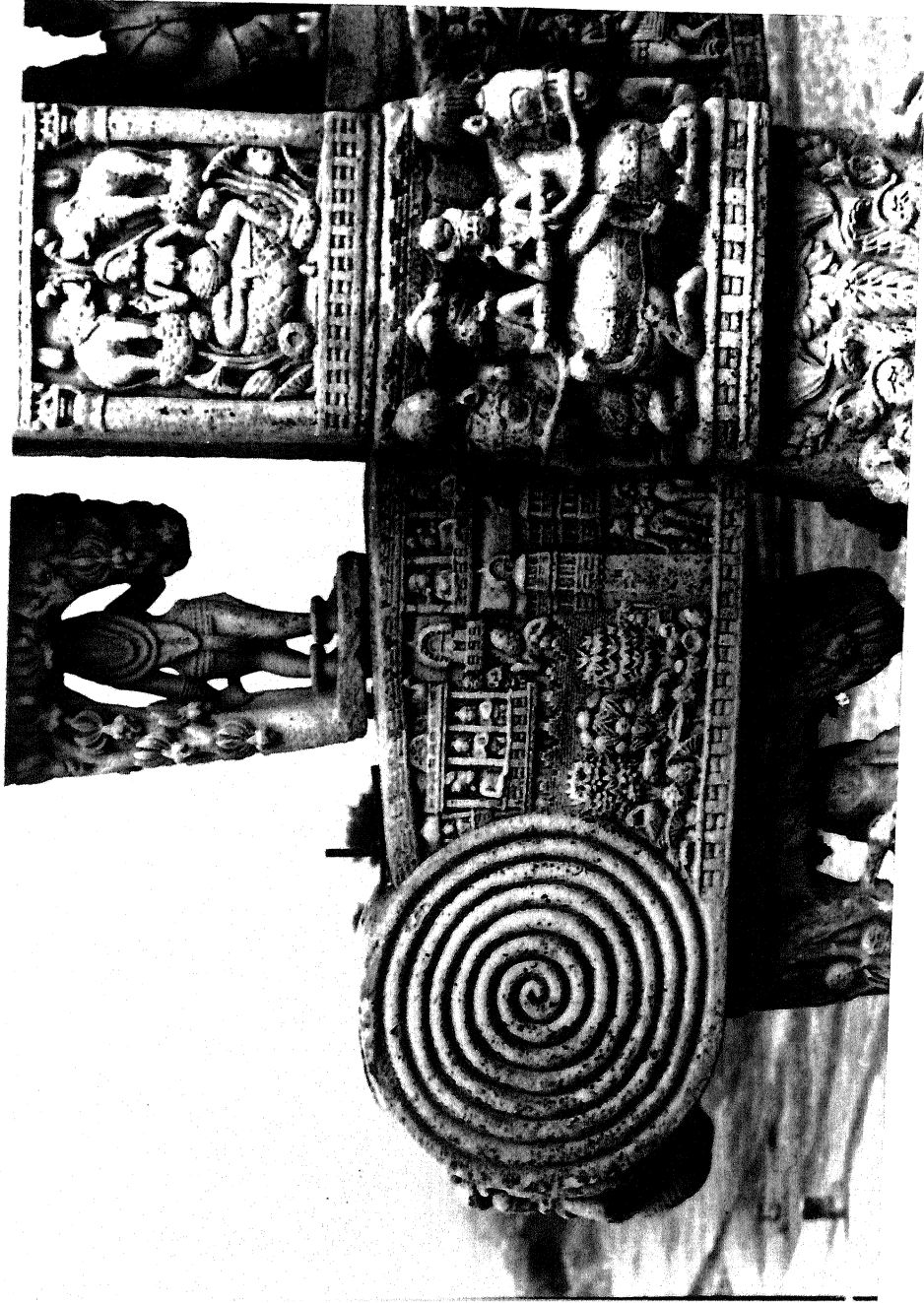
चि०फ०सं० 20. साँची स्तूप संख्या–1 उत्तरी तोरण, द्वार, पृष्ठभाग मध्यवर्ती बड़ेरी वामपार्श्व जतत्तर नगर का अंकन © अमेरिकन इन्स्टीट्यट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
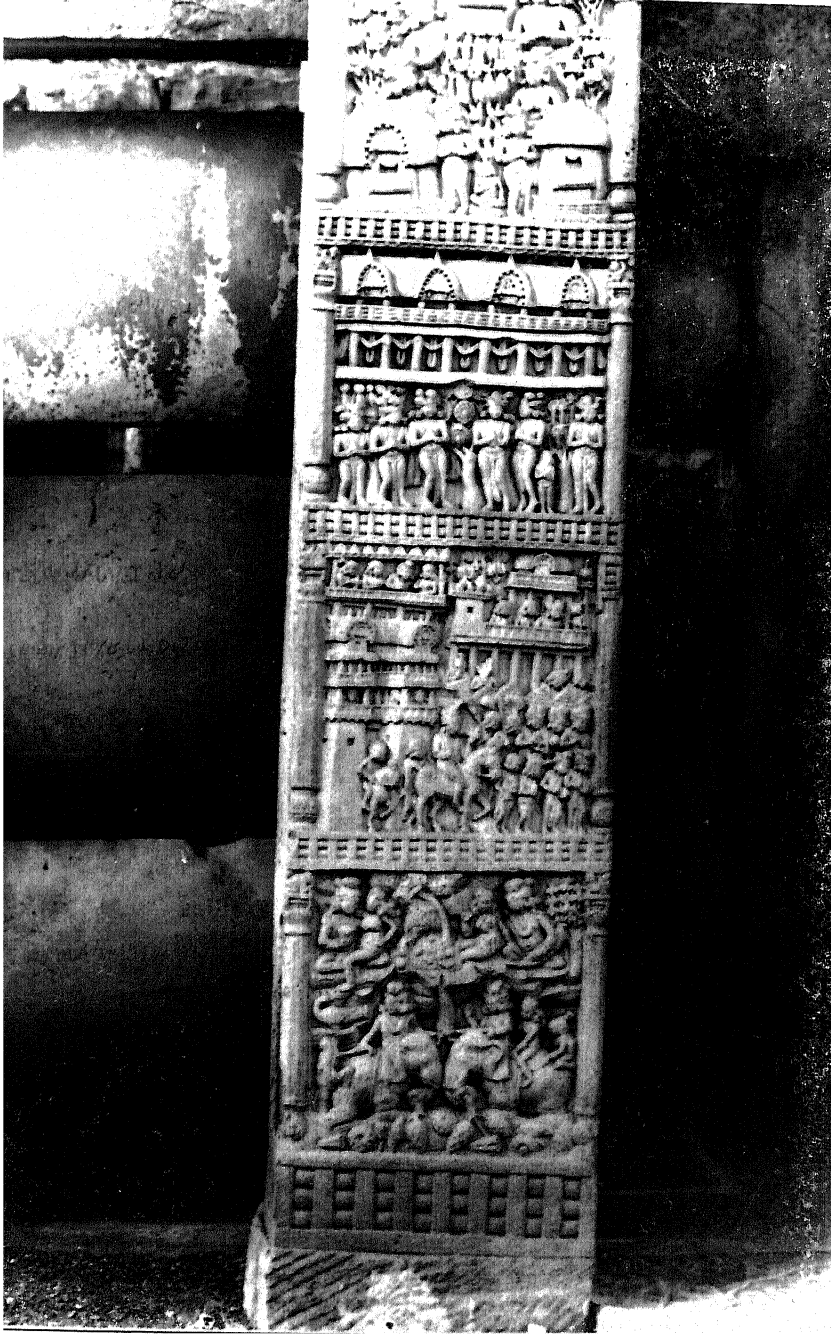
चि०फ०सं० 21. साँची स्तूप संख्या–1 उत्तरी तोरण द्वार, मुख्य भाग पूर्वी स्तम्भ © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
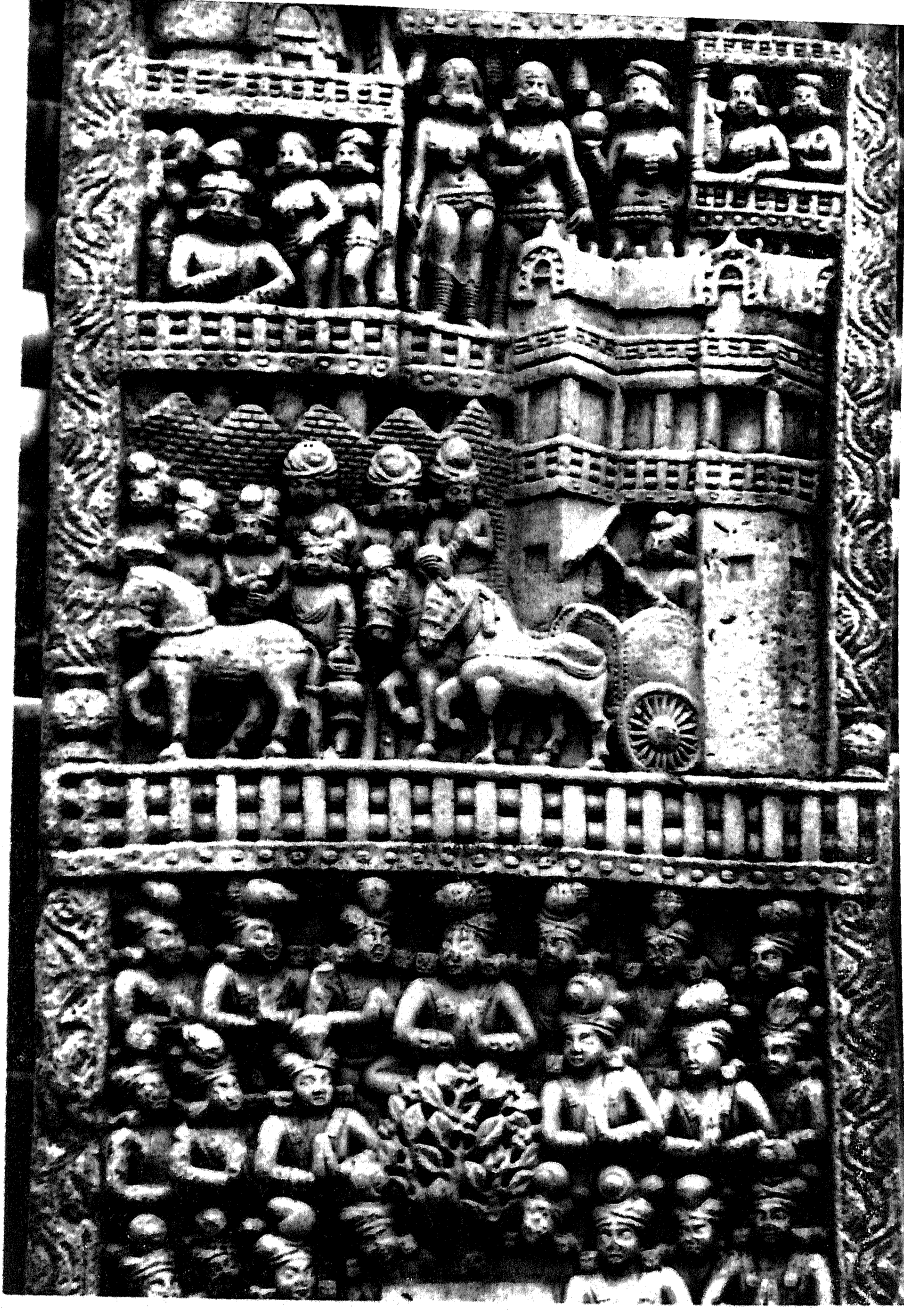
चि०फ०सं० 22. साँची स्तूप संख्या–1 उत्तरी तोरण, मुख्य भाग पश्चिम स्तम्भ कपिलवस्तु का वर्हिमुख © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
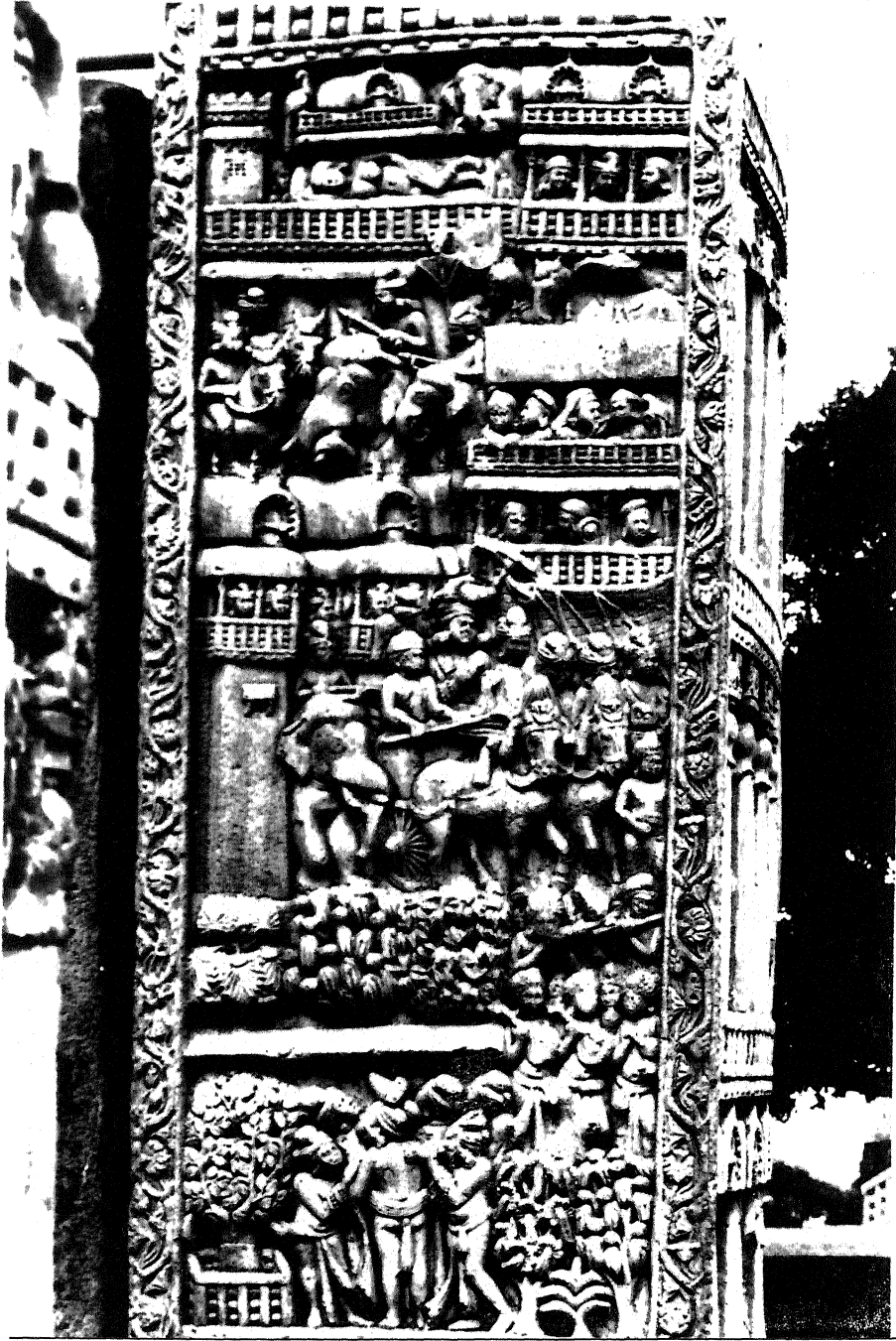
चि०फ०सं० 23. साँची स्तूप संख्या–1 पूर्वी तोरण द्वार, उत्तरी स्तम्भ दक्षिणी भाग कपिलवस्तु का अंकन © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चे०फ०सं० 24. साँची स्तूप संख्या–1 पूर्वी तोरण द्वार, उत्तरी स्तम्भ दक्षिणी भाग सबसे ऊपर माया देवी का स्वप्न, नीचे कपिलवस्तु नगर का वर्हिमुख।
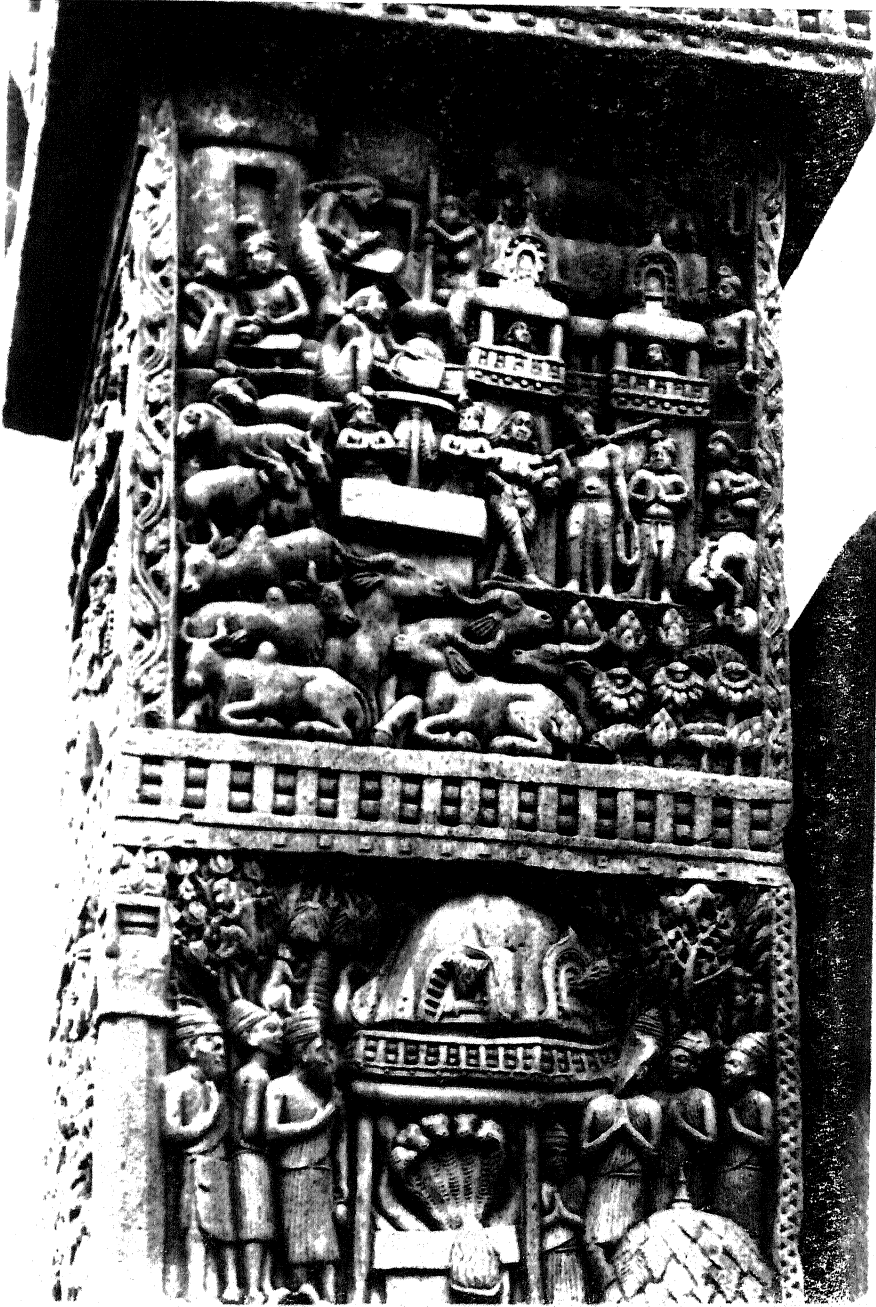
चि०फ०सं० 25. साँची स्तूप संख्या–1 उरवेला गाँव, पूर्वी तोरण द्वार, दक्षिणी पार्श्व स्तम्भ का उत्तरी भाग © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।
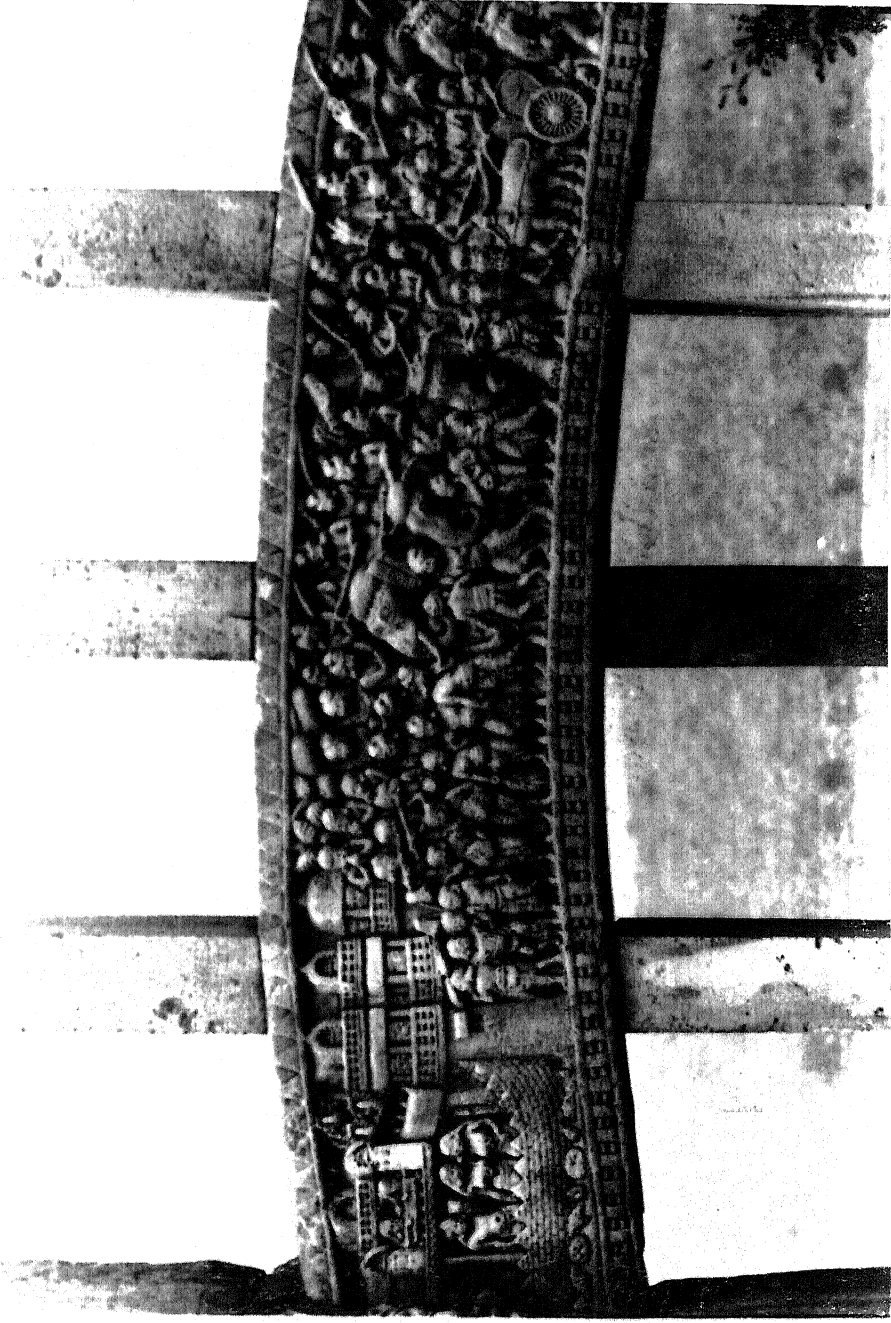
चि०फ०सं० 26. सॉची स्तूप संख्या–1 पश्चिमी तोरण द्वार, पृष्ठतल मध्यवर्ती बड़ेरी कुशीनगर का धातु युद्ध © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चि०फ०सं० 27. नृत्य तथा वाद्य दृश्य, अमरावती, (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 28. मायादेवी का स्वप्न, अमरावती, (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 29. तुषित स्वर्ग में बैठे बुद्ध, नृत्य एवं वाद्य का दृश्य तथा मायादेवी का स्वप्न, (कोलकाता संग्रहालय)

चि०फ०सं० 30. नलगिरि हास्ति दमन दृश्य, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चि०फ०सं० 31. बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।

चि०फ०सं० 32. प्रासाद का चित्रण, अमरावती, © अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, गुड़गाँव।